बिहार पुस्तकालय-संघ के तत्त्वावधान में—

पुस्तकालय

संपादक

राय मथुराप्रसाद

रामदयाल पाण्डेय

भोलानाथ 'विमल'

दो शब्द

भारत में पुस्तकालय-आन्दोलन अभी शैशवावस्था में है। दिन-प्रतिदिन भारतीय ग्रामों और शहरों में नये पुस्तकालय स्थापित होते रहते हैं। खुशी की बात है कि हममें इस बात का उत्साह तो आया है, परन्तु पुस्तकालय-संचालन कैसे किया जाय, इस ज्ञान की बड़ी कमी है। और यह शुरू में स्वाभाविक भी है। इसकी पूर्ति असल में तो अनुभव से ही होगी, किन्तु पुस्तकालय-शास्त्र के साहित्य से भी काफी सहायता मिलेगी। हिन्दी में इस विषय पर एक भी सुन्दर पुस्तक नहीं थी। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर हमने प्रस्तुत पुस्तक को उपस्थित किया है। इसलिए इस पुस्तक का प्रयोजन नये और विशेषकर ग्रामीण पुस्तकालयाध्यक्षों को प्राथमिक ज्ञान प्रदान करना है।

जिन विद्वान् लेखकों ने इस कार्य में सहयोग दिया है, उनके प्रति हम आभार प्रकट करते हैं, चूँकि उनकी सहायता के विना इसे इस रूप में लाना असंभव था। विशेषकर श्री शि० रा० रंगनाथन का जो निश्चय ही, भारत में इस विषय के सबसे बड़े अधिकारी विद्वान हैं।

यदि यह पुस्तक पाठकों को उपयोगी और लाभदायक लगी तो आशा है, हम श्रीरंगनाथन का नवीन ग्रन्थ 'पुस्तकालय-संचालन' आपकी सेवा में प्रस्तुत करेंगे। पुस्तकालय-शास्त्र पर प्रकाशित होने वाली सभी पुस्तकें बिहार-पुस्ताकलय-संघ के तत्त्वावधान में प्रकाशित हुआ करेंगी।

—प्रकाशक

विषय-सूची

——:o:——

उनको

जो पुस्तकालय-द्वारा जनता

की

सेवा कर रहे हैं

पुस्तकालय की उपयोगिता और महत्ता

प्रोफेसर शि० रा० रंगनाथन, एम० ए०

आज यह मान लिया गया है कि पुस्तकालय प्रौढ़ों की शिक्षा का प्रमुख साधन है। इसकी वास्तविकता का पूर्ण परिज्ञान करने के लिए सर्वप्रथम शिक्षा का रूप स्पष्ट करना आवश्यक है।

शिक्षा का अर्थ न तो केवल यही है कि अक्षरों का ज्ञान प्राप्त कर लिया जाय और न यही कि बहुत-सी बातों को याद करके या रटकर स्मरण-शक्ति को बोझिल बना दिया जाय। यदि कोई यह सोचे कि परीक्षाओं की विकट पहाड़ियों को लाँघना ही शिक्षा है, तो वह नितान्त मूर्खता होगी।

सच पूछिए तो शिक्षा का अर्थ अत्यन्त व्यापक है। इसमें शरीर को समर्थ बनाया जाता है, स्मरण-शक्ति को अधिक सम्पन्न किया जाता है, बुद्धि का विकास करके उसे तीक्ष्ण बनाया जाता है, भावनाओं को उदात्त बनाया और उनका नियन्त्रण किया जाता है, और सबसे बढ़कर यह है कि आत्मा को पूर्ण उन्नति का अवसर दिया जाता है। इनमें से एक या दो का होना ही शिक्षा नहीं कहा जा सकता, बल्कि इन सबका समन्वय ही शिक्षा का वास्तविक स्वरूप है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी गति, अपने ढंग और अपनी योग्यता के अनुसार अपने व्यक्तित्व को अधिकतम उन्नतिशील विकास करने का अवसर पा सके, इसीका नाम शिक्षा है। यह एक जीवनपर्यन्त व्याप्त रहने वाला व्यापार है जो पालने में शुरू हो जाता है, और मृत्युशय्या तक जारी रहता है।

नियमित विद्यालय

मनुष्य का जीवन लम्बा होता है। उस लम्बे जीवन में निरन्तर व्याप्त रहनेवाले इस विकास की सृष्टि नियमित विद्यालय केवल कुछ ही समय तक कर सकते हैं। बड़ी विचित्र बात तो यह है कि विद्यालयों से विद्यार्थी

उसी समय अलग कर दिये जाते हैं जब उन्हें सहायता की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। इसका एक कारण तो यह है कि विद्यार्थी की आन्तरिक प्रेरणा उसे नियमित विद्यालय के कठोर नियंत्रण से मुक्त होने को विवश करती है, और दूसरा कारण सामाजिक अर्थशास्त्र की यह माँग है कि विद्यार्थी दिन के श्रेष्ठतम भाग में किसी-न-किसी उद्योग में व्यस्त रहे।

प्रत्येक मनुष्य की शिक्षा-सम्बन्धी आवश्यकताएँ भिन्न होती हैं। उन्हें विद्यालय और उसके शिक्षक पूर्ण नहीं कर सकते, यह सही है। मनुष्य को, जीवन-यात्रा के लिए, अनेक विषयों का ज्ञान चाहिये। यह कदापि सम्भव नहीं कि उन सब विषयों को दिमाग में पहले से ही बलात् भर दिया जाय। इतना ही नहीं, बहुत बातें तो ऐसी हो सकती हैं जो भविष्य में प्रकट होने-वाली हों और उनकी जानकारी किसी व्यक्तिविशेष को, अपने भविष्य के लिए, आवश्यक सिद्ध हो। जिन बातों का आज कोई अस्तित्व ही नहीं है, उन्हें हम जान ही कैसे सकते हैं?

विद्यालय अधिक से अधिक इतना ही कर सकते हैं कि अपने छात्र को भविष्य में प्रकट होनेवाली बातों को समझने की तथा उनसे लाभ उठाने की कला में दक्ष कर दें। वह, अपनी बुद्धि-कुशलता से उन बातों को जानकर, अपनी मानसिक शक्ति को अधिक सम्पन्न बना सकता है।

नियमित विद्यालय अपने छात्रों को एक निश्चित समय तक ही रख सकते हैं। उसके बाद उन्हें उनको अवश्य ही विदा करना पड़ेगा। उतने थोड़े समय में ही उन छात्रों की बुद्धि का विकास अपनी चरम सीमातक पहुँच सके, यह किसी प्रकार सम्भव नहीं। विद्यालय छोड़ने के पश्चात् ही सच्ची उन्नति हो सकती है। उसके लिए छात्र को स्वयं विचार करने की अनिवार्य आवश्यकता है। अपने से श्रेष्ठ और अधिक सुसंस्कृत लोगों के मस्तिष्क किस प्रकार विकसित होते हैं, इसका परिज्ञान तथा अनुकरण किये बिना उस व्यक्ति की उन्नति सम्भव नहीं है। अपने बौद्धिक विकास के लिए महा-पुरुषों के बौद्धिक विकास का सहारा लेना अनिवार्य है। उन महापुरुषों से उसका सम्पर्क स्थापित होना चाहिये। किन्तु सम्भव है कि वे महापुरुष

या तो अत्यन्त दूर देशों में रहते हों, या बहुत पहले ही स्वर्गवासी हो चुके हों।

वर्तमान युग में विश्वविख्यात गणितज्ञ श्रीरामानुजन् को यूरोप का सहारा लेना पड़ा। पदार्थशास्त्र के आचार्य श्री चन्द्रशेखर ने अमेरिकन सामायिक पत्रों से सहायता ली। भारतीय-शास्त्रों के मर्मज्ञ श्रीकुप्पुस्वामी शास्त्री ने अतीत के गर्भ से अनन्त रत्नों को ढूँढ़ निकाला।

यह माना कि उपर्युक्त उदाहरण लोकोत्तर बुद्धि-सम्पन्न व्यक्तियों के हैं। किन्तु, हममें से प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, विद्यालय छोड़ने के पश्चात् विशिष्ट स्वाध्याय के लिए इसी प्रकार दूसरों की प्रेरणा तथा सहायता की आवश्कता पड़ती है।

इसके अतिरिक्त, किसी व्यक्ति-विशेष की बुद्धि अपनी चरम उन्नत अवस्था को पहुँच कर भी यदि स्वदेश के और विदेश के समान महापुरुषों के सम्पर्क में न रह सकी तो वह कुण्ठित हो जायगी, या क्षीण होती चली जायगी। उसे निरन्तर उन्नत होने के लिए अपनी अनुरूप बुद्धि से बराबर संघर्ष करते रहना पड़ेगा।

नियमित विद्यालय अपनी इस कमी का अनुभव करने लगे हैं। अब वे यह मानने लगे हैं कि छात्र अपने भावी जीवन में स्वयं आत्मशिक्षण करने के योग्य बना दिये जायँ, यही उनका प्रधान कर्तव्य है। वे छात्र इतने समर्थ बन जायँ कि आवश्यकतानुसार ऐसे साधनों के द्वारा सहायता प्राप्त करते रहें जो समय-समय पर इच्छित ज्ञान प्रस्तुत कर सकें और इस प्रकार बाहरी स्मृति के रूप में कार्य कर सकें। इस तरह, वे साधन अतीत के गर्भ में विलीन या सुदूर देशों में रहनेवाले समस्त विद्वानों के ज्ञान-समुद्र के निकट उन छात्रों को पहुँचा सकें। वह ज्ञानराशि भी इस प्रकार प्रस्तुत की जानी चाहिये कि वे छात्र उन्हीं ज्ञान-रत्नों को ग्रहण करें जो उनके ज्ञान से सामंजस्य रखते हों, और परिणामस्वरूप, स्वयं चेतना पाकर, तीक्ष्णतर और सक्रिय बन सकते हों।

पुस्तकालय का प्रमुख कार्य

आज पुस्तकालय का प्रमुख प्रयोजन यही है कि वे जाति के प्रौढ़ों के जीवन-व्यापी आत्मशिक्षण के लिए उपर्युक्त प्रकार के साधन बनें। किन्तु उन्हीं पुस्तकालयों का गौण प्रयोजन मानसिक विनोद तथा भावी पीढ़ियों के लिए पुस्तकों का संरक्षण भी हो सकता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस नवीन प्रमुख प्रयोजन ने, पुस्तकालयों को वस्तुतः शिक्षा का सक्रिय साधन बनाने के लिए, उनका समस्त स्वरों में कायाकल्प कर दिया है। कदाचित् ही कोई विषय या विभाग ऐसा बचा हो जिसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन न किया गया हो।

आज पुस्तकालय कुछ विभिन्न प्रकार की ही मुद्रित सामग्री एकत्रित करता है। उस सामग्री के व्यवस्थित और सक्रम रखने का ढंग कुछ और ही हो गया है। उसके वर्णन और प्रदर्शन की प्रणाली अब पहले जैसी नहीं है। यहाँ तक कि भवन, फरनीचर तथा समय बचानेवाले यान्त्रिक साधनों का आविष्कार इस प्रकार किया गया है कि पाठकों की समुचित सेवा की जा सके। इसके अतिरिक्त वहाँ प्रचार-सामग्रियों को एकत्र किया जाता है तथा उनमें अपेक्षित परिवर्तन भी किया जाता है जिससे पाठक आकृष्ट होते रहें और स्थायी बने रहें। सबसे बड़ी बात तो यह है कि मनुष्य की सेवाओं की आवश्यकता अनिवार्य रूप से मानी जाने लगी है। ये मनुष्य पाठकों को शिक्षा नहीं देते, बल्कि उनके अनुकूल तथा उचित पुस्तकों से उनका (पाठकों का) सम्पर्क स्थापित कराना ही उनका प्रधान कर्तव्य है। वे प्रत्येक पाठक की व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार और मानसिक स्वर के अनुरूप यथार्थ और समर्थ व्यक्तिगत सेवा करते हैं। इन पुस्तकालयों ने आज ऐसे अन्वेषी पुस्तकाध्यक्षों (लाइब्रेरियनों) का एक दल बड़ी तत्परता के साथ तैयार किया है। उन्हें चुनते हुए इस बात का पूर्ण ध्यान रक्खा जाता है कि उनकी शिक्षा उच्च कोटि की हो, उनका स्वभाव अत्यन्त मधुर तथा विनम्र हो और वे अपने काम में पूरे दक्ष तथा व्यवहारकुशल हों। आज यह समझना कि पुस्तकालय केवल मनोविनोद के क्षेत्र हैं और जानकारी के केन्द्र हैं, नितान्त मूर्खता-पूर्ण होगा।

पुस्तकालय की सीमाएँ

यद्यपि पुस्तकालय आज प्रौढ़-शिक्षा का एक साधन बन गया है, तथापि वह इस क्षेत्र में एकमात्र साधन कदापि नहीं बन सकता। इसके इस सीमित क्षेत्र का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें प्रौढ़-शिक्षा के स्वरूप का सूक्ष्म परीक्षण करना पड़ेगा।

समाज में ऊँची श्रेणी के लोग अधिकांशतः स्वावलम्बी रहते हैं। वे अपने जीवन में बड़ी सावधानी के साथ नित्य के अनुभव एकत्र किया करते हैं। उनके लिए आधुनिक पुस्तकालयों के सन्दर्भग्रंथ या सहायक ग्रंथ ही उपयोगी हैं। नए-नए अनुसन्धानों और अन्वेषणों से सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तकें ही उनकी ज्ञान-राशि को बढ़ाती हैं। उनके विषय में यह कहना उचित हो सकता है कि ग्रन्थालय प्रौढ़-शिक्षा के पर्याप्त साधन हैं।

इस वर्ग के भी ऊपर श्रीरामकृष्ण, वैज्ञानिक रमण, आनन्दमयी, अरविन्द और साँई बाबा जैसे लोकोत्तर महात्मा होते हैं जो संसार में कदाचित् ही प्रकट होते हैं। वे प्रकाश के साक्षात् अवतार होते हैं। उनमें अपनी मौलिक प्रतिभा होती है जिसके सहारे वे नए-नए ज्ञान-विज्ञान की सृष्टि करते हैं। अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए वे पुस्तकालयों पर ही निर्भर नहीं रहते।

किन्तु, प्रौढ़-शिक्षा का साधारण अर्थ यह माना जाता है कि समाज के निम्नवर्गीय प्रौढ़ों का भावी शिक्षण अथवा ज्ञानवर्द्धन किया जाय। इसीका नाम प्रौढ़-शिक्षा है। पुस्तकालयों द्वारा ही वे पूर्ण रूप से स्वयं अपना आत्मशिक्षण कदापि नहीं कर सकते। इसके लिए यह सर्वथा आवश्यक है कि उनके लिए प्रौढ़-विद्यालय स्थापित किये जायँ जहाँ वे छुट्टी के घंटों में आवश्यक शिक्षा पा सकें। ऐसे विद्यालयों में वैसे ही अध्यापक नियुक्त हों जो प्रौढ़ों के मनोविज्ञान तथा शिक्षण में दक्ष हों। ऐसे विद्यालयों की व्यवस्था करने का भार शिक्षा-विभाग पर होता है, पुस्तकालय-विभाग पर नहीं। यदि एक ही नियम के द्वारा प्रौढ़-विद्यालय तथा पुस्तकालय, दोनों की व्यवस्था करने का प्रयत्न किया गया तो दोनों के उद्देश्य नष्ट हो जायँगे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि शिक्षा-कानून के द्वारा देश के पुस्तकालय-

साधनों का पूर्ण उपयोग किया जाना चाहिये, और उसी प्रकार पुस्तकालय-कानून के द्वारा भी प्रौढ़-विद्यालयों को विशेष सहायता देते हुए पुस्तकालयों की व्यवस्था की जानी चाहिये। समस्त लोक-पुस्तकालयों ने आज इसी उद्देश्य से विस्तार नामक एक नये विभाग का संगठन और संचालन किया है। मद्रास-सरकार ने १९४६ में 'हैण्डबुक अव रेफेरेन्स फार दि यूस अव आई०डब्ल्यू. सी.सी. ऑफिसर्स' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया है। उसमें मैंने अवकाशकालीन शिक्षा' (एडूकेशन फौर लीजर) शीर्षक से कुछ अपनी भेंट समर्पित की है। उसके ग्रंथ नामक पाँचवें अध्याय में तथा प्रौढ़-शिक्षा नामक चौथे अध्याय में पुस्तकालयों के प्रौढ़ विद्यालयों के साथ गाढ़े सहयोग का विस्तृत चित्र उपलब्ध हो सकता है।

निरक्षरों की सेवा

पुस्तकालय के प्रसार-कार्य में इसका भी समावेश है कि निरक्षर प्रौढ़ों को पुस्तक पढ़कर सुनाई जाय। हमने १९२९ से १९३९ तक मद्रास में चिकित्सालय-पुस्तकालय-सेवा-विभाग का संघटन किया था। उसके अनुसार जेनरल-अस्पताल में निरक्षर रोगियों को पुस्तकें पढ़कर सुनाई जाती थी। इसका बड़ा आदर किया गया था। अभी १९४५ में मैं केरल-प्रान्त में भ्रमण करने गया था। वहाँ मैंने गाँवों में इस प्रणाली को अबतक प्रचलित देखा। मैंने कुछ निरक्षर श्रोताओं से इस सम्बन्ध में बातचीत की। इससे यह मालूम हुआ कि वे इस कार्य की उपयोगिता का खूब ही अनुभव करते हैं। रूस में निरक्षरता का अन्त होने के पहले, १९१७ से १९३७ तक, इस प्रणाली का भरपूर उपयोग किया गया था।

रूस के निरक्षरों को केवल पठन-प्रणाली के द्वारा ही सहायता नहीं पहुँचाई गई थी, बल्कि इसके लिए अनेक ढंग काम में लाये गए थे। उनके लिए दीवारों पर चिपकाये हुए चित्रमय समाचारपत्रों का प्रदर्शन किया गया। रद्दी किए हुए समाचारपत्रों से तथा पत्रिकाओं से काटकर निकाले हुए चित्र सादी जिल्दों में इस प्रकार क्रमशः चिपका दिये जाते थे कि उनसे

एक विषय अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता था। इस प्रकार की सादी जिल्दें उनमें बाँटी जाती थीं।

उदाहरणार्थ, एक सादी जिल्द जापानी जीवन का चित्र उपस्थित करती, तो दूसरी यह बतलाती कि विभिन्न देशों में खेती-बारी के सम्बन्ध में कैसे-कैसे नए ढंग प्रयोग में लाये जाते हैं। किसी दूसरी जिल्द में ग्रामीण जनता के प्रिय किसी ग्राम-उद्योग की चर्चा होती।

इसके अतिरिक्त संगीत और नाटकों के प्रदर्शन आदि के द्वारा भी पुस्तकालय निरक्षरों की सहायता करते थे। पुस्तकालयों का उद्देश्य केवल यही था कि किसी न किसी प्रकार निरक्षरों की सेवा की जाय, और इसके लिए वे सब प्रकार के उचित साधनों का सहारा लेते थे।

निरक्षरता-निवारण

इस प्रकार की विस्तार-सेवाओं द्वारा निरक्षरों में एक प्रकार का कुतूहल उत्पन्न हो जाता था। फलतः, यह स्वाभाविक ही था कि उनमें एक प्रकार की जिज्ञासा जागरित हो उठती। अब उनमें यह भावना प्रबल हो उठती कि दूसरा व्यक्ति उन्हें इन सब बातों को समझाए, उसकी अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि वे स्वयं पढ़ना सीख लें।

इस इच्छा के जागरित होने के लिए और निरक्षर श्रमिक को पुनः-पुनः पुस्तकालय में बुलाने के लिए यह आवश्यक है कि जो ग्रन्थ उन्हें पढ़कर सुनाये जाएँ अथवा जो चित्र-ग्रन्थ उनमें बाँटे जाएँ वे उनके दैनिक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हों। दैनिक जीवन से हमारा तात्पर्य उनके व्यवसाय, उद्योग, नागरिक तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयों से है जिनके जाने बिना उनका जीवन भलीभाँति चल ही नहीं सकता।

यदि वे ग्रन्थ केवल नैतिक या बौद्धिक विषय के हों और इस प्रकार लिखे गए हों कि वे उसका सिर-पैर कुछ सीधा कर ही न सकते हों तथा उनका उन विषयों से कभी परिचय ही न हुआ हो, तो उन ग्रन्थों से हमारे उद्देश्य की सिद्धि कदापि नहीं हो सकती। जब इस प्रकार के उपाय उनके सच्चे जीवन की तह तक पहुँचने में समर्थ हों और वे उनमें मुद्रित

साधनों द्वारा स्वयं जानकारी प्राप्त करने की इच्छा जगा सकें तब उस इच्छा को उचित अवसर पर नियमित करने की अत्यन्त आवश्यकता है। उस समय उन्हें स्वयं पढ़ना और लिखना सिखाना चाहिए।

रूस ने इस कार्य को बड़ी तत्परता के साथ किया। निरक्षतानिवारण के लिए जन-सेवा की भावना से ओत-प्रोत उत्साही सज्जनों ने 'लोकल क्लब स्थापित किये थे। केवल २० वर्षों में ही निरक्षरता फी सदी ६५ से घट कर १५ फी सदी हो गई। लेनिनग्राद और मास्को जैसे कुछ स्थानों में तो इसका सर्वथा लोप ही हो गया।

यह उचित है कि हम इस सम्बन्ध में कुछ आँकड़ों को उपस्थित करें। १९३५ में, साक्षरता की प्रेरणा को नियन्त्रित करने के लिए स्थापित साक्षरता-विद्यालयों में ५० लाख निरक्षर शिक्षा पाते थे। उस समय एक लाख विद्यालय ऐसे भी थे जो अर्द्धसाक्षरों के लिए चलाये जाते थे और जहाँ प्रायः ४० लाख बालिग शिक्षा पाते थे। किन्तु, यह उन्नति अत्यन्त अपर्याप्त मानी गई। ५० वर्ष से कम उम्र वाले लोगों में निरक्षरता का पूर्ण निवारण करने के लिए खास उपाय काम में लाये गए थे और विशेष कानून पास किये गए थे। सरकारी प्रेसों को इन विद्यालयों में पढ़ाने के लिए देश की विभिन्न भासाओं में तीन करोड़ पाठय पुस्तकें छापने का आदेश दिया गया था।

सामूहिक निरक्षरता को दूर करने के लिए पुस्तकालयों में क्या शक्ति है, इसे रूस ने दिखला दिया है। हमारी मातृभूमि को एकदम इस कार्य में लग जाना चाहिये। लोक-पुस्तकालयों की प्रत्येक स्थान में स्थापना की जानी चाहिये। वे पुस्तकालय निरक्षरों की सेवा करें और उन्हें ऐसी शिक्षा दें तथा इस प्रकार की जानकारी प्राप्त कराएँ कि वे अपने-अपने क्षेत्रों में निपुण कार्यकर्ता बन जायँ और अपने समाज के सुयोग्य सदस्य बन सकें। जब उचित समय आए तो उन्हें उचित सहायता द्वारा साक्षर बना दिया जाय।

पुस्तकालयों में दृश्य-शिक्षण

सब प्रकार के पुस्तकालयों में शिक्षा की दृश्य-सहायताएँ प्रमुख स्थान पाने के योग्य हैं। इनमें चित्र, चार्ट तथा मानचित्र आदि शामिल हैं। वर्तमान समय के चलचित्र (सिनेमा) तथा प्राचीन समय के छाया-खेलों की भी गिनती इसी श्रेणी में की जायगी। इनसे न केवल निरक्षर बल्कि साक्षर भी अद्भुत लाभ उठा सकते हैं। यहाँ तक कि हम भी, जो वर्षों पहले पढ़ना सीख चुके हैं, स्वभावतः चित्रों को प्रथम पद देते हैं। क्या यह सत्य नहीं है? जब फेरीवाला साप्ताहिक पत्र को खिड़की के अन्दर फेंकता है, आप उसे उठा लेते हैं। आप पहले क्या करते हैं? क्या आप पहले पाठ्य-सामग्री देखते हैं अथवा चित्र, व्यंग्यचित्र तथा चार्ट इत्यादि? आप दूसरे ही पक्ष को पहले देखते हैं। इसका क्या कारण है? इसका कारण यह है कि चित्रों के पढ़ने में अक्षरों को पढ़ने की अपेक्षा कम श्रम लगता है। इसके मूल में जातिगत स्वभाव और परंपरा भी हैं। अक्षरों के पढ़ने का प्रयास आधुनिक है, किन्तु चित्रों को पढ़ने का अभ्यास मनुष्य को तभी से है जबसे उसने देखने की शक्ति पाई। जब साक्षरों की यह दशा है तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि निरक्षरों की शिक्षा में दृश्य साधन बहुत बड़ी मात्रा में सहायता पहुँचा सकते हैं।

मुझे बर्मिंघम के एक अनुभव का स्मरण आ रहा है। आज से प्रायः पचीस वर्ष पहले, मैं इंग्लैंड के अनेक नगरों में विद्यालयों का निरीक्षण और बालकों के कार्यों की परीक्षा कर रहा था। बर्मिंघम के बालकों के भूगोल-सम्बन्धी पूर्ण, विशद और असाधारण ज्ञान को देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मेरे मार्गदर्शक नगर के एक बहुत बड़े शिक्षाधिकारी थे। मैं उनसे इस सम्बन्ध में प्रश्न पूछे विना न रह सका। उन्होंने बतलाया कि बर्मिंघम के बालकों का वह असाधारण गुण बर्मिंघम-लोक-पुस्तकालय द्वारा की गई चित्र-प्रदर्शन-योजनाओं का फल था। वहाँ के पुस्तकाध्यक्ष ने बताया कि बर्मिंघम के एक नागरिक ने कैमरे के साथ भूप्रदक्षिणा की थी। उसने अनेक देशों के दृश्य, भवन तथा लोगों के चित्रों का बहुत बड़ा संग्रह किया था। उसके पास ऐसे चित्र हजारों की

संख्या में थे। उत्साही पुस्तकाध्यक्ष ने उसे इस बात पर राजी कर लिया कि वह उन्हें उस लोक-पुस्तकालय की भेंट कर दे। इन चित्रों को आलमारियों में यथाक्रम सजा दिया गया था। वहाँ के विद्यालयों को इतनी सुविधा प्रदान की गई थी कि वे समय-समय पर अपने भूगोल के पाठों को सजीव बनाने के लिए उन चित्रों के संग्रहों को मँगाएँ। मैंने देखा कि मेरा मद्रास नगर प्रायः दो दर्जन मनोरंजक चित्रों द्वारा प्रदर्शित किया गया था।

किन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि चित्र पुस्तकों की तरह सरलता से सुलभ नहीं होते। परन्तु जिन देशों में राज्य ने सामूहिक शिक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया है, वहाँ पुस्तकालयों के गाढ़े सहयोग के द्वारा प्रदर्शनालय तथा कला-भवन बहुत बड़ी संख्या में स्थापित किए जा रहे हैं। वर्त्तमान शताब्दी के आरम्भ में जर्मनी में उनकी संख्या बहुत बड़ी थी। यदि हम पुन: इसका उदाहरण लें तो निम्नलिखित आँकड़े हमें मिलेंगे। १९१७ के पहले यूक्रेन में केवल १४ प्रदर्शनालय थे, किन्तु वे बढ़कर १९३५ में १२० हो गये थे। ट्रांसकाकेशस में प्रदर्शनालयों की संख्या २५ से ४८ हो गई थी। उजबकिस्तान में २ से १५ तथा टरमेनिस्तान में १ से ७ हो गई थी। यदि पूरे रूस का समष्टिरूप से विचार किया जाय तो प्रदर्शनालयों की संख्या १०० से बढ़कर ७६८ हो गई थी, जिनमें आधे से अधिक खास-खास प्रदेशों के सम्बन्ध में थे और बाकी विभिन्न विषयों से सम्बद्ध थे, जैसे—कला, ५६; उद्योग, ५६; इतिहास, ९८; स्वास्थ्य तथा सफाई ४४; निसर्ग-शास्त्र ४२; धर्म, २७; पदार्थ-विद्या, १८; शिक्षा, ८; इत्यादि, इत्यादि।

यह आवश्यक है कि प्रत्येक नगर-पुस्तकालय तथा प्रत्येक चलता-फिरता पुस्तकालय प्रकाश-विस्तारक-यन्त्र (प्रोजेक्टर) से सुसज्जित हो। लैंटर्न-स्लाइड तथा सिनेमा-रीलें भी समय-समय पर प्रदर्शित की जानी चाहिये। प्रान्त के केन्द्रीय पुस्तकालय को उनका बहुत बड़ा संग्रह करना चाहिये और समय-समय पर उनमें वृद्धि करते रहना चाहिये तथा विभिन्न स्थानीय और जंगम पुस्तकालयों में भेजते रहना चाहिये।

पुस्तकालय : राष्ट्रनिर्माणकारी संस्था

स्वतन्त्र भारत को पुस्तकालय का उपयोग एक राष्ट्रनिर्माणकारी संस्था के रूप में करना पड़ेगा।

ब्रिटिश सरकार ने १५ अगस्त को भारत को उपनिवेश पद दे दिया और जून १९४८ तक उसे पूर्ण स्वतंत्र पद दे देने की घोषणा की है। उसके पूर्व आलस्य, अधःपतन तथा पराधीनता हो सकती है। अब स्वतन्त्रता की ज्योति की जगमगाहट, जागृति की लहर और अपने-अपने कर्तव्यों की जिम्मेदारी का अनुभव, सभी कुछ संभव है। पिछले ५० वर्षों से भारत स्वतंत्रता की दिशा में दृढ़ता से बढ़ा चला आ रहा है। किन्तु अब पुनरुत्थान तथा अपने पद की सुरक्षा के लिए भारत को पहले से कहीं अधिक उद्योग करना चाहिये। स्वतंत्रता को लाने के लिए भारत को जिस प्रकार का उद्योग करना पड़ा है उसी प्रकार का उद्योग करते रहने से अब काम नहीं चल सकता। भारतीयों के जीवन को सफल बनाने के लिए अब कुछ और ही ढंग के उद्योग की आवश्यकता है।

पराधीनता के बन्धनों को तोड़ने के लिए निःशस्त्र भारत को अपनी भावना प्रधान प्रेरणा का ही एकमात्र सहारा था। जिस असीम शक्ति के द्वारा भारत ने विगत ५० वर्षों में अपना पुनर्निर्माण किया है वह शक्ति कहाँ से आई? उस शक्ति–स्रोत का उद्‌गम-स्थान केवल भावनाएँ थीं; वे भावनाएँ जो कि जातीय गौरव की विद्युत्‌शक्ति, नेतृत्व और श्रद्धा से आविर्भूत हैं। उन भावनाओं को जगाने के लिए, विशेष कर जनशक्ति को जागरित करने के लिए; छपे शब्दों की अपेक्षा बोलने की अधिक आवश्यकता थी। लोगों में निहित गुप्त शक्ति को शीघ्रता और वेग के साथ जगाना था। और, उसके जगानेवाले कौन थे? उसके जगानेवाले थे ज्योति-पूर्ण नेत्र, सजीव वाणी, प्रभावशाली व्यक्तित्व जो शब्दों के अर्थ को सूक्ष्मता के साथ विस्तृत करने को तथा परिवर्तित करने की क्षमता रखते थे। तात्पर्य यह है कि जनता के सामने साक्षात् उपस्थित होनेवाले शक्तिशाली व्यक्तित्व के समर्थ प्रभाव की नितान्त अपेक्षा थी।

इसके अतिरिक्त उस समय उतना ही पर्याप्त था, और सच पूछा जाय तो उतना ही आवश्यक था। कारण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति जागरित हो उठ बैठे और अन्य किसी बात का विचार न करते हुए प्राण-पण से पूर्ण चेष्टा करे, इस बात की अत्यन्त आवश्यकता थी। यहाँ तक कि कभी-कभी विद्यार्थियों तक को कहा जाता था कि वे अपनी शिक्षा-संस्थाओं से बाहर निकल और दूसरों से कन्धा मिलाकर देश की स्वतंत्रता के युद्ध में भाग लें।

किन्तु, अब हमें बड़े-बड़े विधायक कार्य करने हैं। उनके लिए हमें उस प्रकार की भावुक शक्ति से कोई लाभ नहीं हो सकता। विचार-पूर्ण और निरन्तर पुष्ट की जानेवाली मानसिक शक्ति से ही हम भविष्य की परिस्थितियों का सामना कर सकते हैं। यह सत्य है कि वह मानसिक शक्ति की एक भिन्न प्रकार की भावना पर अवलम्बित होनी चाहिये। वह भावना कौन-सी है? वह भावना यही है कि हममें सत्य के प्रति प्रेम हो। विस्तृत ज्ञान की इच्छा हो तथा अधिक व्यापक बुद्धि की हविस हो। इस भावना का परिणाम तत्काल नहीं, बल्कि कुछ समय बाद प्रकाशित होता है। भारत के पुनर्निर्माण के लिए इस भावना की अनिवार्य आवश्यकता है। किन्तु यह भावना-स्रोत भी यदि प्रचलित, लौकिक और क्षणिक भावनाओं का द्वार मात्र बना रहा तो अवश्य ही सूख जायगा। इसके जीवित रखने का केवल यही उपाय है कि हम स्थिर रूप में तथाकथित, शुद्ध मानसिक उद्योग करते रहें।

इस उद्योग की सिद्धि के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक की साक्षात् उपस्थिति से प्राप्त होने वाले ज्ञान को ग्रन्थों में निहित साररूप विचार द्वारा अधिक पुष्ट बनाया जाय। बात यह है कि प्रेरणामयी भावना को जागरित करनेवाले व्यक्ति की अपेक्षा मानसिक उन्नति के साधक व्यक्ति अधिक दुर्लभ होते हैं। यही कारण है कि अनेक लोगों के लिए केवल ग्रन्थ ही एकमात्र साधन रहते हैं। भारत की उन्नति के लिए जिन साधनों का उपयोग किया जाय उनमें एक साधन यह भी हो कि जनता को ग्रन्थों से स्वयं सहायता प्राप्त करने के योग्य बना दिया जाय।

ग्रन्थ स्वभावतः ही इतने अधिक कृत्रिम होते हैं कि कुछ अलौकिक महापुरुषों को छोड़कर न तो वे स्वयं पाठकों को अपनी ओर आकृष्ट करने की क्षमता रखते हैं और न वे पाठक ही स्वयं उनके विषयों को समझ सकते हैं। अतएव यह स्पष्ट है कि ग्रन्थों की व्यवस्था आवश्यक तो अनिवार्य रूप से है, किन्तु हमारे उद्देश्य की सिद्धि के लिए वही पर्याप्त नहीं है।

इसलिए सफलता का साधक पुस्तकालय है, जहाँ इसी कार्य में दक्ष कर्मचारी योग्य पाठक और योग्य ग्रन्थ के बीच, व्यक्तिगतरूप में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करा सकें। अतः जनता के जीवन को सफल बनाने के लिए स्वतन्त्र भारत को श्रेष्ठ कर्मचारियों से युक्त लोक-पुस्तकालयों के एक अत्यन्त घने जाल को बिछाने की आवश्यकता है। वे पुस्तकालय ऐसे हों कि प्रत्येक श्रेणी के, प्रत्येक भाषा के, प्रत्येक प्रकार की कला, शिल्प, मौलिक विज्ञान, सामाजिक शास्त्र तथा प्रत्येक प्रकार के वर्तमान विचार को व्यक्त करनेवाले ग्रन्थों की निःशुल्क सेवा प्रस्तुत कर सकें। वह सेवा भी ऐसी होनी चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह कहीं भी रहता हो और किसी भी व्यवसाय में लगा हो, अपना अभीष्ट ग्रन्थ विना किसी कष्ट के पा सके। इस प्रकार की व्यापक सेवा करने में समर्थ पुस्तकालय-व्यवस्था केवल नियमित और सरकारी आधार पर ही अवलम्बित रह सकती है।

पुस्तकालय : अनुसन्धान-केन्द्र

विचार ही मानव-उन्नति के उद्गम-स्थान हैं। किसी भी विचार के विस्तार तथा पोषण के लिए उसके जन्मदाता को ग्रहणकर्त्ताओं तथा प्रचारकों के आत्म-विकास पर अवलम्बित रहना पड़ता है। यह आत्मविकास अन्वेषण-कार्यों से पुष्ट किया जाना चाहिये और वह अन्वेषण भी अभ्युदयशील विचारों और पुस्तकों की सहायता से प्राप्त जानकारी के द्वारा पुष्ट किया जाना चाहिये। यही ग्रन्थालयों की उपयोगिता है। उनका यह कार्य है की वे समस्त लिखित विचारों का संग्रह करें और उन्हें इस प्रकार संग्रथित करें कि प्रत्येक अन्वेषक उस संग्रह के उस विशिष्ट भाग से लाभ उठा सके जिसकी उसे सबसे अधिक आवश्यकता हो।

भारतीय जीवन के पुनरुत्थान तथा पुनःसंघटन के लिए युद्ध-काल ने कुछ योजनाओं को बलात् उपस्थित किया है। इस प्रकार की समस्त योजनाओं का यह एक आवश्यक अंग होना चाहिये कि वे मानसिक पोषण के मार्ग से आरम्भ हों जिससे सभी लोगों की जीवन-शक्ति उच्च स्तर पर पहुँच जाय। इस प्रकार की किसी भी योजना के कार्यान्वित किये जाने में उस योजना के आवश्यक बौद्धिक गुण-दोष का विचार अवश्य किया जाना चाहिये। इतना ही नहीं, जनता में इस प्रकार की आवश्यक बुद्धि का विकास होना चाहिये कि वह उत्पादन, यातायात तथा परिवर्तन के स्तरों में, विस्तार के साथ, उन योजनाओं का विकास कर सके।

यह बुद्धि अवश्य ही विशिष्ट प्रकार की होती है और ऐसी नहीं होती कि मनुष्यों में स्वभावसिद्ध हो अथवा विना इच्छा के उत्पन्न हो। इसमें पदार्थ-विद्या का तथा यंत्रादिकों के पूर्ण ज्ञान, समय-समय पर उसके विस्तार की अपेक्षा होती है। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि मौलिक शास्त्रों में निरन्तर अन्वेषण होता रहे। इन कार्यों की सिद्धि के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि प्रत्येक प्रकार के ज्ञान का संग्रह किया जाय और वह भी उतनी शीघ्रता के साथ जितनी शीघ्रता से वह ज्ञान उत्पन्न हो। इस प्रकार के संग्रह के लिए आधुनिक साधन केवल पुस्तकालय ही है।

आज दस्तकारी का स्थान मशीन ने ले लिया है। जल-बिजली का विकास तथा उसके परिणाम-स्वरूप उस शक्ति के गाँवों में भी पहुँचाये जाने का फल यह हुआ है कि तथाकथित ग्रामोद्योगों में भी मशीनों का प्रयोग होने लगा है। मशीन-द्वारा उत्पादन बढ़ाने के लिए जिस बुद्धि की आवश्यकता है वह केवल हस्तकौशल ही नहीं है। आज यह आवश्यक हो गया है कि पर्याप्त विचार किया जाय और एक के विचारों से दूसरे के विचारों को अधिक सम्पन्न बनाया जाय। इसीके परिणामस्वरूप विचारों के विकास अथवा अन्वेषण की भी पर्याप्त आवश्यकता है। केवल कृषि-उद्योग ही नहीं, अपितु वर्तमान समस्त उद्योगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह अपेक्षित है कि वस्तुओं का न केवल बाहरी विज्ञान ही जाना जाय, बल्कि, उनके रासायनिक पहलुओं का भी अधिकारपूर्ण ज्ञान रक्खा जाय। केवल

परम्परागत ज्ञान सर्वथा अपर्याप्त सिद्ध होता है। समस्त सम्बद्ध विषयों का अनुसन्धान तथा विकास दोनों ही अपेक्षित हैं, और उनके लिए अन्वेषण को छोड़कर अन्य कोई उपाय ही नहीं है।

आज ये बातें सारे संसार में दिखलाई पड़ रही हैं। भारतवर्ष भी इनको अपनाये बिना रह नहीं सकता। इसके विपरीत यह कहना अधिक अच्छा होगा कि नए स्वतन्त्र भारत को और भी आगे बढ़ना चाहिये तथा इन प्रगतियों के पथ पर चलना चाहिये। यह कहना आवश्यक नहीं है कि इसके लिए जितना भी हो सके, शीघ्र उद्योग करना चाहिये। हमारे विदेशी शासक हमारा खूब अच्छी तरह शोषण करना चाहते थे। इस शोषण की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने बड़ी चालाकी के साथ हमें एकदम आलसी बना दिया था। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि उन्होंने हमपर एक प्रकार का जादू डाल दिया था जिसके फलस्वरूप हम निर्भय हो गये थे। वह भी यदि केवल विदेशी वस्तुओं के उपभोक्ता ही रहते तो कुशल था, किन्तु हम तो विदेशी विचारों के भी गुलाम बन गए थे।

स्वतन्त्र भारत का पहला उद्योग यह होना चाहिये कि इस आलस्य का नाश किया जाय। एक प्रकार के सक्रिय अन्वेषण की भावना का विकास किया जाय। और इसके लिए आवश्यक सहायता के रूप में पुस्तकालयों का एक घना जाल बिछा दिया जाय। उन पुस्तकालयों में ऐसे योग्य पुस्तकाध्यक्ष हों जो अन्वेषण-कार्य को सक्रियता से बढ़ा सकें।

पुस्तकालय अन्वेषण के सक्रिय क्षेत्र बनें, यह बात सामाजिक शास्त्रों के सम्बन्ध में अधिक आवश्यक सिद्ध होती है क्योंकि शिक्षा, इतिहास, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र आदि के सम्बन्ध में जब अन्वेषण किया जाता है तब गौण और विचारप्रधान साधनों की अपेक्षा मुख्य साधन तथा तथ्यात्मक गणनाओं को अधिक श्रेष्ठता दी जाती है।

आधुनिक जीवन की जटिलता ज्यों-ज्यों अधिक बढ़ती गई त्यों-त्यों आज स्वयं सरकार भी एक ऐसी समस्या हो गई है जिसके लिए गहरे अन्वेषण की अपेक्षा है क्योंकि वह भी कानून, विधान, राजनीति, शासनशास्त्र

इत्यादि का आधार है। यह अन्वेषण भी किसपर अवलम्बित रहेगा? इसकी आधार-भित्ति तथ्य और गणनाएँ हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि अधिकांश अन्वेषण पुस्तकालयों में ही करना पड़ेगा। इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए सरकार के विभिन्न विभाग, समस्त उद्योग-संस्थाएँ, अन्य शिक्षा-प्रधान-संस्थाएँ और विश्वविद्यालय भी स्वयं अपने-अपने पुस्तकालयों को चलाते हैं।

पुस्तकालय : बालकों का विश्वविद्यालय

अन्वेषण करने की भावना प्रत्येक मनुष्य में सहज रूप से पाई जाती है। शिशु की मुख्य इन्द्रियाँ ज्यों-ज्यों विकसित होती हैं, त्यों-त्यों अत्यन्त थोड़े समय में ही एक ऐसी अवस्था आती है जब कि उसमें (शिशु में) वस्तुओं के नए-नए रूपों को बनाने की भावना जागरित होती है। वह जिन वस्तुओं को अपने चारों ओर देखता है, उनके विषय में 'क्या', 'क्यों' और 'कैसे', इन प्रश्नों के उत्तरों को जानने का उद्योग करता है। इसी भावना का नाम उत्सुकता है। महान् पदार्थशास्त्रवेत्ता आइनस्टाइन इसे 'नैसर्गिक उत्सुकता' कहते हैं। यदि इस नसर्गिक उत्सुकता से निर्माण या परिवर्तन करने की शक्ति पैदा न हो तो संसार में किसी प्रकार की मानसिक उन्नति न हो सके। यह उत्सुकता बच्चों में अत्यन्त तीव्र होती है और संसार की प्रत्येक वस्तु को वह इस उत्सुकता की दृष्टि से देखता है।

बच्चों का स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे प्रश्नों की लगातार झड़ी लगाया करते हैं। अधिकतर ऐसा होता है कि हम उनका समाधान नहीं कर पाते। कुछ माता-पिता इतने साहसी होते हैं कि वे अपनी बे-जानकारी कबूल कर लेते हैं। यह बहुत अच्छी बात है। कुछ लोग बालक की उपेक्षा करते हैं और इस प्रकार परिस्थिति से भागने की कोशिश करते हैं। इससे बच्चे के हृदय पर चोट पहुँचती है। निम्न कोटि के माता-पिता बच्चों को बलात् चुप कर देते हैं। कुछ तो शारीरिक दण्ड का भी प्रयोग कर डालते हैं। इससे बालक के व्यक्तित्व को हानि पहुँचती है।

कभी-कभी तो ऐसा होता है कि उस हानि को मिटाना ही असंभव हो जाता है।

उपर्युक्त भावों में से किसी भी प्रकार के भाव को माता-पिता स्वीकार करें, किन्तु बच्चे की उत्सुकता बनी ही रहती है। यदि यही बात बार-बार होती गई तो अन्त में बालक की उत्सुकता कुण्ठित होकर विलीन हो जाती है। परिणाम यह होता है कि दिमाग़ की गति-प्रगति रुक जाती है और जीवन शुष्क तथा नीरस बन जाता है।

यह बात सच है कि माता-पिता इतने सर्वज्ञ नहीं हो सकते कि वे अपने बच्चों के प्रत्येक प्रश्न का सन्तोषजनक और सही उत्तर दे सकें। किताबें लिखने और उन्हें छापने की कला के जन्म के पहले प्रस्तुत समस्या प्रायः किसी भी प्रकार सुलझाई नहीं जा सकती थी।

किन्तु, वर्तमान शताब्दी के आरम्भ से कतिपय पाश्चात्य देशों में प्रकाशन-व्यवसायियों ने अपने व्यवसाय में शिशु-मनोविज्ञान का प्रयोग करने में सफलता पाई है। उन्होंने यह अनुभव कर लिया है कि बच्चों की किताबों को केवल धार्मिक शिक्षा, नीति-पाठ तथा काल्पनिक कथाओं तक ही सीमित रखना बेकार है। उन्होंने यह स्वीकार कर लिया है कि बालकों के लिए सभी प्रकार के विषयों की किताबें चाहिए, क्योंकि उन्हें सयानों की अपेक्षा अधिक प्रकार की जानकारी की जरूरत है। उन्होंने यह भी माना है कि बच्चों की किताबों के लिए केवल यही काफी नहीं है कि सयानों की किताबों को संक्षिप्त कर लिया जाय अथवा उन्हें छोटे-छोटे शब्दों में परिवर्तित कर दिया जाय। वे यह समझ गए हैं कि बच्चों की किताबों को कुछ नए और आकर्षक ढंग से, कुछ सरलता और सुबोधता के साथ लिखना चाहिये। सबसे बड़ी बात तो यह है कि उन्होंने प्रत्येक श्रेणी में से ऐसे योग्य लेखकों को ढूँढ़ निकालने में सफलता पाई है जो बाल-साहित्य के अच्छे निर्माता हैं। उदाहरणार्थ, हम 'न्यू-बरी-पदक' का निर्देश कर सकते हैं। अमेरिका ने यह एक ऐसा साधन ढूँढ़ निकाला है जिससे भावी बाल-साहित्यकारों को सहज ही में खोज लिया जा सकता है।

इससे भी अधिक उल्लेखनीय बात तो यह है कि प्रायः आधी शताब्दी तक

बाल-साहित्य-उत्पादन आदि कार्यों में जो विशेष निपुणता प्राप्त की गई है, उसके परिणाम-स्वरूप बाल-अनुसन्धान-ग्रन्थों का एक बहुत बड़ा व्यापक संग्रह एकत्र हो गया है। ये ग्रन्थ केवल सामान्य बालविश्वकोश ही हों, यही बात नहीं। ये भिन्न-भिन्न विषयों के विश्वकोश के ढंग के भी हैं।

जब कि प्रकाशन-व्यापार ने अपना कर्तव्य इस प्रकार भली-भाँति पूर्ण किया है तब पुस्तकालय-व्यवसाय इस बात के लिए बाध्य है कि वह उन ग्रन्थों का अच्छी तरह उपयोग कराए। यदि वह भी अपने कर्तव्य को पूर्ण करे तो बालकों की उत्सुकताभरी प्रेरणाएँ न तो कुंठित होंगी और न माता-पिताओं को बच्चों के प्रश्नों के प्रति उपयुक्त तीन प्रकार के अवांछ-नीय रास्तों की मजबूरी होगी।

इस दिशा में संसार के अन्य देश बहुत आगे बढ़ गए हैं। हम अभी इस दिशा में बहुत पिछड़े हुए हैं। हिन्दी-ग्रन्थों का प्रकाशन-व्यापार अब-तक बच्चों के क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सका है। हिन्दी-भाषा-भाषी जनता में विद्यमान प्रतिभावान् बाल-साहित्यकारों को ढूँढ़ निकालने के लिए अथवा उनकी सेवाओं को कार्यान्वित करने के लिए अबतक कोई सफल प्रयास नहीं किया गया है। यह सब अवश्य होगा और अत्यन्त निकट भविष्य में होगा। हम यहाँ अब इस बात को दिखलाने का प्रयत्न करेंगे कि बच्चों से सम्बन्ध रखनेवाले पुस्तकालय किस प्रकार कार्य करें।

छोटे बालकों के पुस्तकालय : उनकी व्यवस्था

एक सुन्दर छोटा-सा कमरा। दीवारों से सटी आलमारियाँ चारों ओर लगी हैं। वे खुली हैं। उनमें रक्खी हुई किताबें यह सूचित करती हैं कि वे बराबर उपयोग में आती रहती हैं। छोटी-छोटी कुर्सियाँ हैं और वैसी ही छोटी-छोटी मेजें हैं। पौराणिक चित्र, ऐतिहासिक मानचित्र! मानव-भूमि तथा काल्पनिक भूमि के मानचित्र! चार्ट तथा आकृतिचित्र! ये ही वस्तुएँ यहाँ पाई जाती हैं।

ग्यारह बजने की घण्टी सुनाई पड़ी। बच्चों के छोटे-छोटे पैरों के मधुर शब्द पुस्तकाध्यक्ष को दूर से ही सुनाई पड़ते हैं। वह अपने हाथ

का काम छोड़ देता है और फूलों के कुछ गुच्छों को लिये हुए फाटक या दरवाजे की ओर लपकता है। राम, श्याम और गोपाल उन गुच्छों को पाते हैं, क्योंकि उनकी पुस्तकालय-डायरियाँ प्रस्तुत मास में सर्वश्रेष्ठ घोषित की गई थीं। वे पुस्तकाध्यक्ष के पास जाते हैं जिससे वे अपने साथियों द्वारा लौटाई हुई पुस्तकों की व्यवस्था करने में उसकी सहायता कर सकें। वे आनन्द और सन्तोष से फूले नहीं समा रहे थे।

दो ही मिनटों में वह दल पुस्तकालय में चारों ओर फैल गया। कुछ सूचीपत्र में छानबीन कर रहे हैं। कुछ अपनी प्यारी पत्रिकाओं के पन्ने उलट रहे हैं कुछ अपने नायक द्वारा मेज पर फैलाये हुए चित्रों पर झुके जा रहे हैं। एक बच्चा शब्दहीन धरती पर तेजी से चलता है और पुस्तकाध्यक्ष से 'रेलवे' पर सर्वश्रेष्ठ पुस्तक माँगता है। दूसरा बच्चा 'बमवर्षक' और 'लड़ाकू' विमानों के चित्र माँगता है। तीसरा यह चाहता है कि उसके कुछ संक्षिप्त नोटों को पुस्तकाध्यक्ष देख लें।

अभी कुछ ऐसे भी चंचल बालक बचे हैं जो किसी काम में लग नहीं सके। पुस्तकाध्यक्ष उन्हें एकत्र करता है और कहानी-विभाग की ओर ले जाता है। कहानी-विभाग और कोई कमरा नहीं है, बल्कि पश्चिमी दीवार और उसके समानान्तर रक्खी हुई आलमारी के बीच का भाग है। कुछ समय में कहानी समाप्त होती है और बच्चे उस कहानी की पुस्तकों की ओर लपकते हैं। इसके बाद चारों ओर शान्ति छा जाती है।

नायक घंटा बजाता है। कुर्सियाँ पुनः अपने-अपने स्थानों पर रख दी जाती हैं। प्रत्येक बालक के पास एक किताब है। वे बिदाई के लिए एक कतार बाँधकर खड़े हो जाते हैं। राम, श्याम और गोपाल तीनों पुनः पुस्तकाध्यक्ष के घेरे में उसकी सहायता के लिए पहुँच जाते हैं। चलने की आज्ञा दी जाती है। राम, श्याम और गोपाल पुस्तकों में तिथि आदि देते हैं। प्रत्येक बालक ज्यों ही 'त्रिकेट-गेट' के बाहर पैर रखता है त्यों ही पुस्तकाध्यक्ष उसके विषय में कुछ न कुछ विनोदपूर्ण वाक्य कहता है। वे खिलखिलाकर हँसते हैं और पुस्तकालय से बाहर आते हैं। पुनः अगले सप्ताह वहाँ आने की उनके मन में बड़ी उत्सुकता पैदा होती है।

सयाने बालकों के पुस्तकालय

कुछ कमरों का समुदाय है। एक सुन्दर अध्ययन-कक्ष है। उसका उत्तरी आधा भाग संग्रहालय (म्यूजियम) है। पूरब का कमरा छात्र-सभा-भवन है। उसमें एक मैजिक लैंटर्न तथा उसकी और सामग्री भी है। पश्चिम की ओर का कमरा अध्यापकों का अध्ययन-कक्ष है। मेज तथा कुर्सियाँ कुछ ऊँची हैं। आलमारियों के कुछ ग्रन्थ ठीक वे ही हैं जिन्हें हम किसी भी प्रौढ़-पुस्तकालय में पा सकते हैं। जिस प्रकार की व्यवस्था, कोलाहल तथा शान्ति प्रारम्भिक विद्यालय-ग्रन्थालय में पाई गई थी, ठीक वे ही बातें यहाँ भी हैं। यहाँ के बालक प्रसन्नता के साथ अपना-अपना कार्य करते हैं। पुस्तकाध्यक्ष तथा छात्र-सहायकों के बीच उसी प्रकार का कार्य-विभाजन यहाँ भी पाया जाता है।

एक दल सभा-भवन में चित्र-प्रदर्शन की व्यवस्था में जुटा हुआ है। भिन्न-भिन्न बालक भिन्न–भिन्न कार्यों के लिए आते हैं, अथवा पुस्तकों की छान-बीन करते हैं। उनका उद्देश्य पहेलियों को बूझना मात्र न होकर खोज-ढूँढ़ करना होता है। पुस्तकाध्यक्ष का कार्य-कुशल हाथ सब ओर दृष्टिगोचर होता है। एक बालक पुस्तिकाओं की तथा कतरनों की फाइलों को उलट–पलट रहा है। एक बच्चा चतुर्थ कक्षा से आता है और अपने वर्ग में प्रदर्शन के लिए 'ईख' की स्लाइडें माँगता है। एक बालक पुस्तक लेने–देने की खिड़की या स्थान की ओर दौड़ता है।

इस सुन्दर पुस्तक के तीन पृष्ठ गायब हैं। मैं इस अज्ञात विनाशक को अगली बैठक में अपराधी सिद्ध करने का यत्न करूँगा।

तुम्हारे उचित क्रोध के लिए ईश्वर तुम्हें सुखी करे। तुम्हारे जैसे लोगों के उद्योग से हमारा समाज ऐसे पापात्माओं से छुटकारा पा सकेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

अब गणित के अध्यापक प्रवेश करते हैं :—

क्या तुम प्रसिद्ध गणितज्ञों के कुछ चित्रों को पहचान सकते हो? चित्रानुक्रम की आलमारी में आवश्यक वस्तुओं की बहुत बड़ी. व्यापक सूची

है। उसी क्षण चित्रयुक्त ग्रन्थ उचित पत्रों पर ग्रन्थचिह्नों के साथ कक्षाभवन में चारों ओर भेज दिये जाते हैं।

बच्चों का एक दल 'दशहरा-उत्सव' के निमित्त पुस्तकालय को सजाने के काम पर नियुक्त किया गया है। वह प्रवेश करता है और पुस्तकाध्यक्ष के साथ अपनी योजना के विषय में बातचीत करता है।

पुस्तकालय में छात्रों का काफी बड़ा जमघट है। वहाँ काफी चहल-पहल भी है। किन्तु बड़ा कठोर अनुशासन भी दिखाई पड़ता है। यह अनुशासन बल के प्रयोग से नहीं पैदा हुआ है किन्तु अपने आप उत्पन्न हुआ है। यह एक संघटित विद्यालय की नागरिकता का मधुर फल है। उपस्थिति ऐच्छिक है किन्तु कमरे सर्वदा ठसाठस भरे रहते हैं। यही कारण है कि पहले से ही सभा-भवन की तालिका बना ली जाती है। चारों ओर सहानुभूति तथा सहयोग की भावना है। यदि सच पूछा जाय तो यही विद्यालय का हृदय है जहाँ से उत्साह के स्रोत प्रवाहित होते हैं और विद्यालय के कोने-कोने में जीवनशक्ति भरते हैं।

ईश्वर करे, वह दिन शीघ्र आए जब हमारे राष्ट्र तथा समाज के नेता ऐसे लाभदायक विषयों पर कल्पनाशीलता तथा दूरदर्शिता के साथ विचार करें और हमारे देश के होनहार बच्चों के लिए उन सुविधाओं तथा लाभों का द्वार खोल दें जो अन्य स्वतंत्र देशों के बच्चों को अनायास ही स्वाभाविक रूप में प्राप्त होते हैं।

बालकों का अन्वेषण-कार्य

यदि हम विश्वविद्यालय को एक ऐसा स्थान मानें, जहाँ प्रौढ़ तथा किशोर अपनी गति के अनुसार पूर्ण उन्नति करने में सहायता पाते हैं तो पुस्तकालय को बाल-विश्वविद्यालय कहा जा सकता है। इसका कारण यह है कि यहाँ प्रत्येक बच्चे को अपनी गति के अनुसार पूर्ण मानसिक उन्नति करने का अवसर दिया जाता है। इस उद्देश्य की सिद्धि इस प्रकार होती है कि पुस्तकालय प्रत्येक बच्चे को उसकी समस्याओं या विषयों पर

छोटा-मोटा अन्वेषण करने की सुविधा प्रदान करता है। यदि पुस्तकालय उस बालक के लिए समुचित पुस्तकें उपस्थित न कर सके तो वह अपनी समस्याओं को कभी सुलझा ही नहीं सकता।

छोटे-मोटे अन्वेषण में प्रवृत्त होने की तथा उसकी सिद्धि के लिए ग्रन्थों के उपयोग की प्रेरणा का उद्गम-स्थान स्कूल का कमरा (क्लास रूम) ही है। छात्र अपने शिक्षक से अपने स्वतन्त्र उद्योग तथा अध्ययन के द्वारा बहुत कुछ सीखता है। किन्तु कुछ पाठ ऐसे भी हो सकते हैं जिन्हें बाहरी अध्ययन के द्वारा और पुष्ट करने की आवश्यकता होती है। उस छात्र को अतिरिक्त तथ्य तथा आँकड़ों को ढूँढ़ निकालने की भी आवश्यकता पड़ सकती है। किसी समस्या के सन्तोषजनक सुलझाव के लिए अथवा शिक्षक की सहायता से प्राप्त परिचयवाले वैज्ञानिक तथा साहित्यिक ग्रन्थकारों की विशिष्ट जानकारी प्राप्त करने के लिए उसे अतिरिक्त ग्रन्थों के पढ़ने की आवश्यकता पड़ सकती है।

विद्यालय के बाहर अनेक घटनाओं से, वस्तुओं से तथा विचारों से सम्पर्क हुआ करता है। इसी सम्पर्क के कारण छात्र को पुस्तकालय में छोटा-मोटा अन्वेषण करने की प्रेरणा हो सकती है। इन समस्याओं का समाधान करने के लिए उसे या तो तथ्य और आँकड़ों का ज्ञान करानेवाले अनुसन्धान-ग्रन्थों को देखने की आवश्यकता पड़ सकती है अथवा विस्तृत प्रकार की जानकारी के लिए विवरणात्मक ग्रन्थों को पढ़ना पड़ सकता है। यह भी संभव है कि किसी स्थानीय घटना, उत्सव अथवा इतिहास के द्वारा भी यह प्रेरणा मिले। इसके अतिरिक्त यह भी असंभव नहीं है कि किसी राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय घटना, उत्सव अथवा इतिहास से भी यह प्रेरणा प्राप्त हो।

बच्चे के पुस्तकालय-कार्यों को जीवनोपयोगी और जीवन-व्यापी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि बच्चे जो कुछ स्वयं पढ़ें, उनके संक्षिप्त नोट लेने के लिए तथा पुस्तकालय-डायरियाँ रखने के लिए पुस्तकाध्यक्ष उन्हें उत्साहित करता रहे। इस प्रकार की डायरियाँ कमसे कम तीन होनी चाहिये। एक नई सीखी तथा खोज-ढूँढ़ की हुई बातों के लिए; दूसरी,

मनोरंजनात्मक अध्ययन के लिए तथा तीसरी, प्रेरणात्मक उद्धरणों के लिए।

हमने कतिपय पाश्चात्य देशों में बच्चों के पुस्तकालय-कार्य को विधिवत् संचालित करने के कई सफल प्रयत्न देखे हैं। उनमें एक प्रकार यह था कि बच्चों को अपनी पसन्द के कुछ विषय दे दिये जाते थे। उनपर वे अध्ययन, मनन तथा परीक्षण भलीभाँति करते थे। यह कार्य प्रायः एक वर्ष तक निरन्तर चलता। वर्ष के अन्त में वे बच्चे उन प्राप्त बातों का एक संग्रह पुस्तक के रूप में प्रस्तुत कर देते थे।

यह न तो आवश्यक ही और न उचित ही है कि एक ही विषय प्रत्येक बालक के लिए निश्चित किया जाय। बच्चों से यह कहना चाहिए कि वे अपने वार्षिक अन्वेषण को एक नियमित ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत करें जिसमें मुखपृष्ठ, विषय-सूची, भूमिका, पठित पुस्तकों अथवा सहायक ग्रन्थों की सूची इत्यादि सब कुछ हों। ग्रन्थ आवश्यक अध्यायों में बँटा रहना चाहिये और उपयुक्त चित्रों द्वारा सुशोभित होना चाहिये।

आज से प्रायः २० वर्ष पहले हमने इस कार्य को 'अध्ययन-अभ्यास-प्रतियोगिता' के नाम से प्रचारित किया था। इसके परिणाम-स्वरूप हमने इस प्रकार के बच्चों के द्वारा लिखे हुए दो सौ से अधिक हस्तलिखित ग्रन्थ एकत्र किए थे।

१६४४ में हमने पूना में देखा कि अनाथ-विद्यालय में इसी प्रकार का अभ्यास चलाया गया था। वहाँ हमने इस प्रकार के हस्तलिखित ग्रन्थों की एक पूरी आलमारी भरी देखी थी।

वे यह बात दिखलाते हैं कि वे किस प्रकार बच्चों के पूरे व्यक्तित्व को प्रकाश में लाते हैं। वे ग्रन्थ उन बालकों की अनेक गुप्त शक्तियों का प्रदर्शन करते हैं। वे शक्तियाँ निश्चित ही प्रकाश में नहीं आने पातीं और लुप्त हो जाती हैं। कारण यह है कि बचपन में इस प्रकार के उत्पादन-कार्य करने की उन्हें कोई सुविधा या अवसर ही नहीं दिया जाता। वे इस बात को अवश्य ही प्रमाणित करते हैं कि वयस्क बालकों के लिए तथा प्रौढ़ों के लिए जो कुछ आशा विश्वविद्यालय से की जा सकती है वही कार्य छोटे बच्चों के लिए पुस्तकालय भली भाँति कर सकते हैं।

ग्रामों के पुनर्निर्माण में पुस्तकालय का स्थान

आइए, अब हम इस बात की परीक्षा करें कि ग्रामीण जीवन को नवचेतना प्रदान करने के लिए पुस्तकालय क्या कर सकते हैं। भारतवर्ष एक ग्रामीण देश है। हमारी ३० प्रतिशत जनता, अर्थात् ३६ करोड़ की पूर्णसंख्या में से ३६ करोड़ लोग, गाँवों, टोलों तथा छोटे कस्बों में रहते हैं। यदि हम ५,००० से कम और १,००० से अधिक आबादीवाले स्थान को ग्राम कहें और १,००० से कम आबादीवाले स्थान को टोला कहें, तो पूरी जनसंख्या में से १४ करोड़ लोग, अर्थात् ३६ प्रतिशत भारतवासी ८०,००० गाँवों में और पूरी जनसंख्या में से १८ करोड़ लोग अर्थात् ४१ प्रतिशत भारतवासी ५,७०,००० टोलों में रहते हैं।

भारत के पुनर्निर्माण का वास्तविक अर्थ गाँवों का पुनर्निर्माण ही मानना चाहिए। इन आँकड़ों के द्वारा महात्मा गांधी की प्रकांड बुद्धिमत्ता का पता चलता है कि उन्होंने किस कारण अपनी योजना में ग्राम-पुनर्निर्माण को प्रथम स्थान दिया और किस लिए सेवाग्राम जैसे स्थानों में रहना तथा बंगाल और बिहार के गाँव-गाँव में घूमना उचित समझा।

अब हम यहाँ अपने 'पुस्तकालय-शास्त्र के पाँच सिद्धान्त' (फाइव लॉज् आफ् लायब्रेरी साइंस) नामक ग्रन्थ से विभागीय सभा (डिपार्टमेण्टल कान्फरेंस) की कार्यवाही में से कुछ अंश उद्धृत करते हैं। इस उद्धरण से ग्राम-पुनर्निर्माण-कार्य में पुस्तकालय का क्या स्थान है, यह स्पष्ट प्रमाणित हो जायगा।

उपस्थित :—

(१) विस्तार-(डेवलपमेण्ट) मन्त्री
(२) अर्थमन्त्री
(३) शिक्षामन्त्री
(४) जनशिक्षा-निर्देशक (डायरेक्टर ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन)
(५) जनस्वास्थ्य-निर्देशक
(६) कृषि-निर्देशक

(७) ग्राम-पुनर्निर्माण-निर्देशक

विशेष निमन्त्रण पर द्वितीय सिद्धान्त (ग्रन्थ सबके लिए हैं) भी उपस्थित था।

विस्तार-मन्त्री—उपस्थित सज्जनो, सबसे पहले मैं आप सबकी अनुमति लेकर अपने निमन्त्रित सदस्य महोदय का अपनी सरकार की ओर से हार्दिक स्वागत करना चाहता हूँ। यह बात बड़े महत्त्व की है कि इन्होंने हमारी साधारण जनता के बीच पूरा एक वर्ष बिताया है। विदेशों से आनेवाले आगन्तुकों में यह बात बहुत कम पाई जाती है। इतना बड़ा अनुभव पाने के बाद ही इन्होंने आज हमको यह अवसर दिया कि हमारी सरकार इनका आदर-सत्कार कर सके।

इसके बाद हमें अपने मुख्य कार्य की ओर प्रवृत्त होना चाहिये। आज की यह बैठक हमारे विख्यात अतिथि महाशय के अथक प्रयत्नों का फल है। उनका यह चरम लक्ष्य है कि 'प्रत्येक के लिए पुस्तक' की व्यवस्था हो सके। यह समस्या अनेक कठिनाइयों से भरी हुई है।

ग्राम-पुनर्निर्माण-निर्देशक—पुस्तकालय शिक्षा का एक प्रमुख साधन है, किन्तु उसकी बड़ी उपेक्षा की जाती है। आज भारत में विद्यालयों तथा महाविद्यालयों के पुस्तकालयों की तो आवश्यकता है ही, साथ ही साथ लोक-पुस्तकालयों की भी आवश्यकता है, जिनका अभी सर्वथा अभाव है। ये पुस्तकालय इतनी बड़ी संख्या में हों कि प्रत्येक बड़े गाँव में एक अवश्य हो। ये अंग्रेजी भाषा तथा देशी भाषा दोनों के जाननेवालों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेंगे।

गाँवो में मेरे इस कार्य के लिए पुस्तकालयों के न होने से बड़ी बाधा पहुँचती है। ऐसा कोई और उपाय ही नहीं है कि विचारों को जीवित रक्खा जाय तथा लोगों के मस्तिष्कों में उनका विकास किया जाय।

कृषि-निर्देशक—मैं अपने विभाग के बारे में भी यही बात कह सकता हूँ। पूसा तथा कोयम्बतूर जैसे स्थानों में हम जो कुछ भी काम करते हैं, वह ठीक उसी प्रकार का है, मानों हम एक बड़े नगर के जल-कुण्ड में चारों ओर से पानी लाकर संचित कर दें, किन्तु वहाँ से बाहर वितरण करने के

लिए पाइप न हों, यद्यपि उनकी नितान्त आवश्यकता हो।

द्वितीय-सिद्धान्तः—

'रीडिंग' के सभी किसानों को मैंने आपके प्रकाशनों को बड़े चाव से पढ़ते देखा है।

जन-शिक्षा-निर्देशकः—आप ठीक कहते हैं। 'रीडिंग' में पुस्तकालय है। हमारे यहाँ वह नहीं है। यही तो बड़ा भारी अन्तर है।

अर्थमन्त्रीः—मुझे पूरा विश्वास नहीं है। आपको स्मरण होगा कि कुछ दिन पूर्व हमारे यहाँ भी प्रचार-विभाग था। उसके द्वारा प्रत्येक गाँव में आपके अधिकांश प्रकाशन लाखों की संख्या में बाँटे जाते थे। इस कार्य ने जनता के आलस्य को भलीभाँति प्रमाणित कर दिया है। हमारे देशवासी पढ़ना ही नहीं चाहते। आप उन्हें पढ़ा कैसे सकते हैं?

विस्तार-मन्त्रीः—मुझे बड़े संकोच के साथ कहना पड़ता है कि हमारे विद्वान् मित्र को कृषि-रायल-कमीशन की प्रस्तुत रिपोर्ट पढ़नी चाहिए। इससे उनकी स्मृति जागरित हो उठेगी। मैं विशेष कर उनका ध्यान कमिश्नरों के अन्तिम वाक्य की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ। मैं संक्षिप्त रिपोर्ट के पृष्ठ ६० से उद्धरण कर रहा हूँ। अपनी जाँच से हमें इस बात की दृढ़ धारणा हो गई है कि भारतवर्ष के कृषक यदि सुविधा पाएँ तो कृषि-सम्बन्धी उत्पादन में विज्ञान तथा संघटन के साधनों और तरीकों का बहुत बड़ी मात्रा में अवश्य उपयोग करें। यहाँ 'यदि सुविधा पाएँ' इन शब्दों पर पूरा ध्यान देने की आवश्यकता है।

मैं इस बात को पूरे तौर पर मानता हूँ कि प्रचार-विभाग की ये पुस्तिकाएँ सीधे चूल्हे की शरण में गईं। किन्तु, क्यों?

द्वितीय सिद्धान्त—कारण यह है कि छपे हुए पत्रों के पैकेट को पकड़ानेवाले डाकिये तथा पुस्तक से जनता का सम्पर्क स्थापित करानेवाले पुस्तकालयाध्यक्ष के बीच आकाश-पाताल का अन्तर है।

कृषि-निर्देशक—मैं इन विख्यात अतिथि महाशय का अत्यन्त ऋणी हूँ। आपने ठीक नस पहचानी है। मैं यह कहनेवाला ही था कि कृषि-सम्बन्धी उन्नतियों के बहाने अनावश्यक कामों में हम प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये खर्च

करते हैं, किन्तु हम अतिथियों को बुलाना ही भूल जाते हैं और सेवा-कार्य के लिए कुछ खर्च करना हमें बहुत अखरता है।

विस्तार-मन्त्री—न्यूइम्पीरियल कौन्सिल अव रिसर्च के उस विशाल हाथी को यदि कुछ समय तक भोजन न दिया गया तो कोई हानि न होगी। यदि उसी धन को पुस्तकालय-शास्त्र के द्वितीय सिद्धान्त को सौंप दिया जाय तो हमारे मित्र को उसके बदले में अवश्य ही अधिक लाभ होगा। हम वस्तुओं के सिरे पर ही अधिक बोझ लाद देते हैं, चाहे नींव में कुछ हो या नहीं।

अर्थमन्त्री—आपने अभी-अभी रायल कमीशन से उद्धरण दिया है। रिसर्च कौन्सिल भी तो उसीके कारण स्थापित की गई है।

कृषि-निर्देशक—यदि आप कमीशन की एक सम्मति की दुहाई देते हैं तो हमारी समझ में नहीं आता कि एक दूसरी सम्मति की, जो उसकी अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्यों उपेक्षा की जाती है।

अर्थमन्त्रीः—आप किसका निर्देश कर रहे हैं?

कृषि-निर्देशकः—मैं रिपोर्ट से ही पढ़कर सुनाना चाहता हूँ। मैं समझता हूँ कि वह पृष्ठ......

द्वितीय सिद्धान्त—पृष्ठ ६७२ पर है, महाशय!

कृषि-निर्देशक—धन्यवाद! आप ठीक कहते हैं। यही वे कहते हैं। अपनी रिपोर्ट भर में हमने इस दृढ़ धारणा को स्पष्ट शब्दों में बार-बार सूचित किया है कि जबतक किसानों के हृदय में विज्ञान, विद्वत्ताजन्य नियम, तथा योग्य शासन के द्वारा दी जानेवाली सुविधाओं से लाभ उठाने की इच्छा न हो तबतक कृषि में वास्तविक उन्नति कदापि नहीं हो सकती। कृषि को उन्नत बनाने के जितने भी साधन हैं, उनमें सबसे बड़ा साधन है कृषक का निजी दृष्टिकोण! अब जरा आप विचार कीजिए कि इस सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण विषय के लिए आपके बजट में क्या व्यवस्था है? इसके अतिरिक्त, मुख्यतः, यह बात उसके चतुर्दिक् के वातावरण से निश्चित की जा सकती है।

द्वितीय सिद्धान्तः—मैं उस वातावरण में पुस्तकों के लिए केवल एक स्थान चाहता हूँ।

कृषि-निर्देशक—(आगे बढ़कर कहते हैं)—हमें इस बात को घोषित करने में जरा भी संकोच नहीं है कि उस उन्नति को कार्यान्वित करने का पूरा उत्तरदायित्व सरकार पर है, और किसी पर नहीं।

अर्थमन्त्री—मेरे मित्र बड़े चतुर हैं। वे जान-बूझकर अगला वाक्य नहीं पढ़ रहे हैं।

इस महत्त्वपूर्ण सत्यका यथार्थरूप में अनुभव करने के कारण आज-कल ग्रामोन्नति से सम्बद्ध विभागों का खर्च अत्यधिक बढ़ गया है।

विस्तार-मन्त्री—अच्छी बात है। मैं उसके भी आगे का एक और वाक्य पढ़ कर सुना देना चाहूँगा।

तथापि हम इस बात का अनुभव करते हैं कि भारत-सरकार तथा स्थानीय सरकारें इसकी शक्ति का पूरा परिचय नहीं प्राप्त कर पातीं। वे अबतक इस बात को समझ नहीं सकी हैं कि ग्राम-समस्या का समष्टि-रूप से समाधान करना चाहिये और चारों ओर से एक ही साथ किया जाना चाहिये। हमें इस बात का पूर्ण ध्यान है कि हमने जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, उसको अबतक समझा ही नहीं गया। यही कारण है कि आजतक उस परिवर्तन को कार्यान्वित करने के लिए किसी प्रकार का संघटित उद्योग नहीं किया गया है। कृषक की मानसिक भावनाओं में परिवर्तन करना अत्यन्त आवश्यक है। उसके विना किसी प्रकार की उन्नति की आशा करना दुराशा मात्र है।

ग्राम-पुनर्निर्माण-निर्देशक—आप बिल्कुल सही कहते हैं। उसके विना क्या आशा की जा सकती है? जीवन में प्रतिक्षण मैं इन शब्दों की व्यावहारिक सचाई का अनुभव कर रहा हूँ। मैं अनेक बार कृषि-प्रचारक को अपनी प्रदर्शन-गाड़ी के साथ गाँवों में से गुजरते पाता हूँ। ज्यों ही वह गाँव के बाहर पैर रखता है, त्यों ही उसके प्रदर्शन का प्रभाव लुप्त हो जाता है।

द्वितीय सिद्धान्त— यदि वहाँ एक ग्राम-पुस्तकालय स्थापित हो, वह सजीव हो और उसका पुस्तकाध्यक्ष भी सजीव हो, तो ऐसा कदापि नहीं हो सकता। यदि आप कृषि-सम्बन्धी सेवा-कार्य में डूबे हुए रुपये को उबारना चाहते है, यदि स्वदेश की उन्नति के लिए उस रुपये को एकत्र करना चाहते हैं और यदि उस उत्पादन को अन्य रूप में परिवर्तित करना चाहते हैं तो आप इस बात के लिए वाध्य हैं कि प्रत्येक कृषक को उसकी पुस्तक दी जाय।

अवश्य ही न तो यह बुद्धिमत्तापूर्ण ही है और न मितव्ययिता है कि राष्ट्रीय पुस्तकालय-योजना को आर्थिक कठिनाई का बहाना लेकर ठुकरा दिया जाय।

जनस्वास्थ्य-निर्देशक—मेरा विभाग सदा इसी बात की चेष्टा किया करता है कि देश जो कुछ खर्च करे, उससे उसे सर्वश्रेष्ठ लाभ हो। किन्तु उसकी भी सभी चेष्टाएँ केवल इसीलिए विफल हो जाती हैं कि देश में लोक-पुस्तकालयों का अभाव है।

द्वितीय-सिद्धान्त :—संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में विशाल पुस्तकालय-सेवा के लिए जो भी कुछ खर्च किया जाता है उसे स्वास्थ्य-बीज बोने का मूल्यवान् बीमा प्रीमियम माना जाता है।

ग्राम-पुनर्निर्माण-निदेशक—मैं यह स्वीकार करता हूँ। मेरे अनुभव ने मुझे एक बहुत बड़ा पाठ पढ़ाया है। यह सर्वथा निश्चित है कि मनुष्य-जाति की शारीरिक उन्नति तथा स्वास्थ्य डाक्टरों के उद्योग पर नहीं, बल्कि जनता की सम्पूर्ण सामाजिक उन्नति पर निर्भर है। यह तो स्पष्ट ही है कि यह लक्ष्य केवल घोषणामात्र से नहीं प्राप्त हो सकता। वस्तुओं के संयोग, स्वाभाविक गति अथवा भाग्य के भरोसे छोड़ देने से तो इनकी सिद्धि की सम्भावना तक नहीं की जा सकती। चारों ओर शिक्षित एवं बौद्धिक लोकमत की आवश्यकता है। केवल शिक्षित जनसमाज ही रोगों से मुठभेड़ कर सकता है। और लोक-पुस्तकालयों के योग्यतम समुदाय के बिना जनता को शिक्षित करना असम्भव है।

पुस्तकालय : सामाजिक केन्द्र

उपर्युक्त परिच्छेद में जो भी कहा गया, उसका केवल एक यही तात्पर्य है कि लोक-पुस्तकालय एक केन्द्र के समान है जहाँ से समस्त सामाजिक तथा मानसिक प्रयत्नों की धाराएँ प्रवाहित होती हैं और स्वयं चेतना प्राप्त कर दूसरों को चेतना से भरती हैं। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि पुस्तकालय समाज का केन्द्र होना चाहिये।

इतिहास के विभिन्न युगों में विभिन्न संस्थाएँ सामाजिक केन्द्र के रूप में व्यवहृत हुआ करती थीं। अरण्य-सभ्यता के वैदिक युग में वाल्मीकि, भरद्वाज तथा अगस्त्य इत्यादि महर्षियों के आश्रम ही समाज के केन्द्र थे। यहीं जनता शिक्षा, ज्ञान तथा अनुप्रेरणा प्राप्त करती थी। सम्भवतः लोग स्वास्थ्य तथा मनोविनोद के लिए भी आश्रमों की शरण लेते थे। महर्षि के व्यक्तित्व तथा उससे प्रभावित आश्रम द्वारा प्रत्येक वस्तु आनन्दित, आह्लादित, आलोकित हुआ करती थी।

दूसरे युग में, जबकि धार्मिक विधियाँ जनता के जीवन में प्रधान मानी जाती थीं, मन्दिर, मस्जिद तथा चर्च सामाजिक केन्द्र बन गये थे। इन स्थानों में जनता केवल धार्मिक कार्यों के लिए ही नहीं, बल्कि मित्रों से मिलने के लिए, सर्वश्रेष्ठ संगीत सुनने के लिए तथा सुन्दरतम नृत्य देखने के लिए भी एकत्र होती थी। वे स्थान व्यापार के भी केन्द्र बन जाते थे। उन्हीं में स्कूल तथा पाठशालाएँ चलतीं और कहीं पुस्तकालय तथा सरस्वती के भण्डारों को आश्रय दिया जाता था।

इसके परवर्ती युग में सामाजिक क्लब ही सामाजिक केन्द्र बन गया था। यहीं जनता के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति मिलते तथा सरकारी और व्यापारिकसमाचारों का आदान-प्रदान करते। यहीं वे दिन भर के कठिन परिश्रम के बाद मनोविनोद किया करते थे। इन केन्द्रों में बहुधा भाषण, वाद-विवाद, संगीत-सम्मेलन तथा नाटकीय दृश्यों का आयोजन किया जाता था। उनमें पुस्तकालय भी होते थे जहाँ सदस्य मानसिक विनोद और ज्ञानवृद्धि करने का अवसर पाते थे।

आज हम मुद्रण-युग में हैं। जिधर दृष्टि दौड़ाइए, उधर ही आप को किसी-न-किसी प्रकार की छपी चीजें दृष्टिगोचर होंगी, टिकट, पासबुक, लीफलेट, राशनकार्ड, समाचारपत्र, मासिकपत्र, पुस्तक इत्यादि। हम आज पाँच सौ वर्षों से पुस्तक-प्रकाशन-कला की उन्नति देख रहे हैं। सामयिक पत्रों का प्रकाशन प्रायः दो सौ वर्षों से हो रहा है।

एक सौ वर्ष से भी अधिक समय से हम अनुसन्धान-ग्रन्थों को पा रहे हैं। यही कारण है कि हमारा मस्तिष्क ग्रन्थमय हो गया है। आज जनसंख्या में भयंकर वृद्धि हो गई है। जीवन की गति बहुत ऊँची हो गई है। प्रतिदिन नए-नए आविष्कार हो रहे हैं। वे इतनी शीघ्रता से हो रहे हैं कि हम उन्हें समझ भी नहीं पाते। नई वस्तुएँ, नई बातें प्रति-दिन प्रकाश में आ रही हैं। इन कारणों से हमने व्यक्तिगत शिक्षण अथवा गुरु से ज्ञान पाने को ही नई शिक्षा का साधन मानना छोड़ दिया है। हमें सदा कोई व्यक्ति उन नई-नई बातों से अवगत कराता रहे, यह संभव ही नहीं है। अब हमारे लिए अधिकाधिक मुद्रित पदार्थों का ही आश्रय लेना अनिवार्य हो गया है। हमारे सांस्कृतिक जीवन की यह अद्भुत घटना आधुनिक संस्कृति की इतनी बलवती वस्तु हो गई है कि मुद्रित वस्तुओं का आश्रय-स्थान—पुस्तकालय—अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होकर, सामा-जिक केन्द्र बनने जा रहा है।

कतिपय पाश्चात्य देशों में यह कभी का सामाजिक केन्द्र बन चुका है। पुस्तकालय ही एक ऐसा स्थान है, जहाँ गृहिणियाँ दोपहर में ज्ञान तथा मनो-विनोद के लिए जाना आवश्यक समझती हैं। मजदूर और अन्य कर्मचारी शाम के समय मनोरंजन तथा जानकारी के लिए पुस्तकालयों में ही जाते हैं। पुस्तकालय के सिवा कोई दूसरा अच्छा स्थान नहीं है जहाँ ज्ञानप्रद भाषणों की व्यवस्था की जा सके। एक्टन के लोक-पुस्तकालयों में सामयिक विषयों पर अनेक भाषणों की व्यवस्था खास तौर पर की जाती है। इस दिशा में वह अग्रणी है।

इसके अतिरिक्त, पुस्तकालयों में ही अधिकांश सांस्कृतिक और

वैज्ञानिक सभाएँ होती हैं। क्रायडन के लोक-पुस्तकालयों में ऐसी सभाओं का होना एक साधारण-सी घटना है।

हमें पूर्ण आशा है कि हमारे पुस्तकालय भी स्थापित होने पर ऐसे ही बनेंगे। हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारे अधिकांश स्थानीय और राष्ट्रीय उत्सव हमारे ग्रन्थालयों में ही मनाये जायँगे। हमें यह भी दृढ़ धारणा है कि धार्मिक व्याख्यान तथा धार्मिक उत्सव आदि भी हमारे पुस्तकालय-उद्योगों में प्रमुख स्थान पायँगे। यह उचित भी है, क्योंकि हमारी भारतीय जनता पर सत्य-धर्म का अब भी वही गहरा प्रभाव है। हमें यह भी आशा है कि हमारे आदरणीय साधु, सन्त, महर्षि, तथा विभिन्न प्रदेशों के प्रतिभाशाली महापुरुषों से पुस्तकालयों में निवास करने के लिए प्रार्थना की जायगी और वे उस स्थान को पवित्र कर अपने लोकोत्तर प्रभाव द्वारा स्थानीय जनता को नव चेतना प्रदान करते हुए सुख, शान्ति तथा समृद्धि के अनन्त स्रोतों को प्रवाहित करेंगे।

——:o:——

२ —पुस्तकालय

महापण्डित श्रीराहुल सांकृत्यायन

गाँव में क्या, शहरों में भी पुस्तकालय की स्थापना एक नई परिपाटी है। पुराने जमाने में पुस्तकालय नहीं थे, यह बात तो नहीं कही जा सकती। साहित्य का आरम्भ लेखन-कला से भी पहले हुआ। जब आदमी ने लिपि को आविष्कृत नहीं किया था, तब भी लोग संगीत का शौक रखते थे। वीरों की अद्भुत गाथाओं को रात-रात भर गाते थे। लेकिन, लिपि के आविष्कार ने साहित्य के प्रचार और स्थायित्व को बढ़ाया। आरम्भिक समय में यद्यपि हमारे यहाँ धर्म के ग्रन्थ केवल गुरु से शिष्य कानों के जरिये सुनता था, इसलिए उसे 'श्रुति' (सुनना) कहते हैं। लेकिन, जिस वक्त लिपि का आविष्कार हुआ, उसके बाद साहित्य लिपिबद्ध होने लगा। पहलेपहल लकड़ी या चमड़े पर लिखा जाता था। ताल-पत्र और भोज-पत्र का भी इस्तेमाल होता था। तो भी, उस पुराने काल में, लेखन-कला का प्रचार होने के बाद भी अत्यन्त पवित्र गाथाओं को कंठस्थ करके रखने में ही अधिक महात्म्य समझा जाता था। इतना होने पर भी नालन्दा-काल (४०० ई०—१२०० ई०) में हम पुस्तकालयों को देखते हैं, और काफी बड़े-बड़े पुस्तकालय, जिनकी इमारतें दो-दो, तीन तीन तल्लों की होती थीं। उस वक्त पुस्तकें, छापे के यंत्र के अभाव के कारण, बहुत मुश्किल से हाथ से लिखी जाती थीं। स्याही-कलम से लोग ताल-पत्र पर लिखते थे। ताल-पत्र भी गर्मी-बरसात के कारण टेढ़ा-मेढ़ा न होकर टिकाऊ हो, इसलिए उसे खास रासायनिक पदार्थ में भिंगोकर तैयार किया जाता था। कितने ही लोगों का व्यवसाय ही था पुस्तकें लिखना (नकल करना)। लेखक और कायस्थ (मुन्शी) दोनों उस समय पर्यायवाची समझे जाते थे। उस समय आजकल की तरह बेपरवाही से पुस्तकें नहीं रक्खी जाती थीं क्योंकि उनके लिए काफी धन और श्रम खर्च करना पड़ता था। इसीलिए कहा गया था—'लेखनी पुस्तिका नारी परहस्तगता गता।'

हमारे पुस्तकालयों से गई अब भी कितनी ही पुस्तकें तिब्बत में मिलती हैं ; हाथ-हाथ, सवा-सवा हाथ लम्बे सैकड़ों तालपत्ते, जिनमें दो या एक छेद के सहारे रस्सी पिरोकर, दो लकड़ी की तख्तियों को पार करके बाँधा जाता था। यह लकड़ी की तख्तियाँ जिल्द का काम देती थीं।

उस समय शिक्षा का प्रचार बहुत कम था। उसमें साधन के अभाव के साथ-साथ पुस्तकों का अभाव भी एक कारण था, और साथ ही लोग समझते थे कि पढ़ना-लिखना उन्हींके लिए जरूरी है जो कोई सरकारी या धार्मिक अधिकारी हैं। आज समय बदल गया है। आज राजकाज एक आदमी के ऊपर निर्भर नहीं करता। आज उसमें साधारण जनता का हाथ है। उनकी सम्मति से ही सारा काम चलता है। ऐसी स्थिति में, जनता में ज्ञान का प्रचार आवश्यक है। साधारण जनता का ही शिक्षा-प्रचार से फायदा नहीं है बल्कि आजकल के सत्ताधारी और ऊँचे तबके के लोगों के लिए भी यह जरूरी है कि वे सार्वजनिक शिक्षा का प्रचार करें। सदियों से सुलगती हुई आग के किसी भी वक्त फूट निकलने का अन्देशा है। और, यदि जनता को शिक्षा द्वारा संयत नहीं किया गया तो उसका हमला वन्य पशु की तरह होगा। शिक्षा द्वारा हम उसके वेग को संयत करते हैं। नए संसार का निर्माण तो आवश्यक है, लेकिन पुराने संसार और नए संसार की सन्धि की बेला बड़ी भयंकर होती है। उस वक्त काफी सावधानी की आवश्यकता है। अशिक्षित जनता अपने सामने सिर्फ चार कदम तक देख सकती है और उसके बाद का उसे ख्याल नहीं रहता। शिक्षा लोगों के हाथ में दूरबीन दे देती है जिसके द्वारा वे अपनी भलाई दूर तक सोच सकते हैं। इसीलिए मैं कहना चाहता हूँ कि साधारण जनता को शिक्षित करना आज के सत्ताधिकारियों का भी कर्तव्य है।

जब से छापाखाने का आविष्कार हुआ और जबसे पुस्तकें प्रचुर परिमाण में निकलने लगीं, तब से साधारण जनता में शिक्षा का प्रचार बड़े वेग से हुआ है। छापे के यंत्र कई सौ वर्ष पहले ही यूरोप में प्रचलित हो चुके थे। वहाँ कितने ही समाचारपत्र अठारहवीं शताब्दी में निकलने लगे थे। और आज तो उनके प्रचार के बारे में कुछ कहना ही नहीं। कितने

समाचारपत्र हैं जो तीस-तीस, चालीस-चालीस लाख की संख्या में प्रतिदिन छपते हैं। पचास हजार, अस्सी हजार का संस्करण पुस्तकों के लिए मामूली बात है। अपनी पुस्तकों की रायल्टी (पारिश्रमिक) के द्वारा कितने ही पत्रकार लखपती हैं। हमारे यहाँ न पुस्तकों का उतना बड़ा संस्करण निकलता है, न उतनी संख्या में समाचारपत्रों के पाठक हैं। लेखकों में भी ऐसे विरले ही हैं जो अपनी कलम की कमाई पर गुजर करते हों। इसका सारा दोष लोग जनता की शिक्षा की तरफ उदासीनता के मत्थे मढ़ना चाहते हैं। लेकिन ये आक्षेप उचित नहीं हैं। इंग्लैण्ड में क्यों अखबारों की ग्राहक-संख्या सत्रह-सत्रह, अठारह-अठारह लाख है? क्योंकि वहाँ समाचारपत्रों का दाम चार पैसे (युद्ध-काल में और भी बढ़ गया) से भी कम नहीं है। बात यह है कि एक साधारण अंग्रेज के लिए चार पैसे का मूल्य उतने से भी कम है जितना हमारे यहाँ किसान के लिए एक पैसा है। वहाँ एक साधारण मजदूर ढाई और तीन रुपये रोज कमाता है। ढाई-तीन रुपये रोज पैदा करनेवालों के लिए चार पैसा कोई चीज नहीं है। इंग्लैण्ड में मैंने कई बार खुद देखा, जब मैं किसी दोस्त की मोटर या टैक्सी पर किसी जगह जाता और मोटर ड्राइवर को कुछ देर ठहरना पड़ता, तो अक्सर मैं देखता कि ड्राइवर पास से एक पेनी का कोई अखबार लेकर दिल-बहलाव करता। हमारे यहाँ तो पुस्तकों और समाचारपत्रों का विशेष प्रचार तब तक नहीं हो सकता जब तक हम गाँव के किसानों और मजदूरों की आमदनी को बढ़ा न दें। यह सच है कि हमारा राजनीतिक कार्य उसीके लिए हो रहा है। तो भी हमें तब तक शिक्षा-प्रचार के लिए प्रतीक्षा नहीं करनी है जब तक कि लोगों की आमदनी उतनी नहीं बढ़ जाती। शिक्षा-प्रचार और राजनीतिक अधिकार की प्राप्ति (१५ अगस्त १९४७ को अंग्रेजों ने भारत को राजनीतिक अधिकार दे दिए) दोनों को साथ-साथ करना होगा।

वैसे तो हमारे यहाँ शिक्षा की बहुत कमी है। सौ में तीन आदमी (नई मर्दुमशुमारी के मुताबिक 'साक्षर' कहलानेवालों की संख्या तो इससे अधिक है, पर कामचलाऊ पढ़े-लिखे भी कम ही हैं) मुश्किल से पढ़े-लिखे मिलते हैं। स्त्रियों में तो शिक्षा का और अभाव है। उसके

बाद, यदि कोई पढ़-लिख भी जाता है तो स्कूल छोड़ने के बाद उसकी रुचि पढ़ने-लिखने की ओर बहुत कम हो जाती है जिसके कारण कितने ही साक्षर भी निरक्षर-से देखे जाते हैं, और कितने तो पूरे निरक्षर हो जाते हैं। साक्षरों के ज्ञान को बढ़ाना और निरक्षरों को साक्षर बनाना हमरा कर्तव्य है और इसके लिए सबसे जबर्दस्त साधन है पुस्तकालय। मिठाई की दूकान सामने रहने पर खाने की तबीयत किसी वक्त भी हो सकती है, लेकिन यदि दूर से लाने और अधिक प्रतीक्षा की आवश्यकता हो तो बहुतों का उत्साह मन्द हो जाता है। इसी तरह पुस्तकालय हमारे लिए एक तरह का आकर्षण पैदा कर देते हैं और चुनी-चुनाई पुस्तकों की प्राप्ति हमारे लिए सुलभ कर देते हैं। पुस्तकालय की पुस्तकों के चुनाव में हमे बराबर ध्यान रखना चाहिए कि हम ऐसी ही पुस्तकों को लोगों के सामने रक्खें जिनमें गम्भीरता हो और जिनमें रुचि की उच्चता अपेक्षित हो। आदमी की रुचि भी एक दिन में ऊँची नहीं हो सकती। विद्या में भी हर एक आदमी का बाल्य, तारुण्य और प्रौढ़ जीवन होता है। आरम्भिक समय में मनुष्य हल्के जासूसी उपन्यासों और कहानियों को पसन्द करते हैं लेकिन जितना ही उनका ज्ञान बढ़ता जाता है, अधिक लेखकों की कृतियों से वे परिचित होते जाते हैं, भाषा पर विशेष अधिकार करते जाते हैं, उसीके अनुसार उनकी रुचि भी उन्नत होती जाती है। यदि पुस्तकों के पठनक्रम को वैज्ञानिक रीति से पाठकों की रुचिवृद्धि के अनुसार निर्धारित कर दिया जाय तो हम उनकी रुचि की प्रगति को साल-ब-साल नाप सकते हैं, लेकिन जबर्दस्ती एक साल तक की पुस्तकों के पढ़ने की रुचि को हम किसी के ऊपर लाद नहीं सकते। उसे तो स्वयं विकसित होने देना चाहिये। हाँ, हमारे पास पुस्तकें जरूर उच्च रुचि की भी होनी चाहिये। और, यदि पुस्तकालय चार-चार, छः-छः पंक्तियों में उच्च साहित्य के निर्माताओं की विशेषताएँ भी पाठकों के सामने रखने की कोशिश करें तो पाठकों को पुस्तक-निर्वाचन में जरूर सुविधा हो सकती है। निरन्तर अध्ययनशील पाठक के लिए यह सम्भव नहीं कि उसकी रुचि क्रमशः उन्नत न होती जाय। सारांश यह है कि सुरुचि की प्रगति स्वाभाविक रीति से होने देना चाहिए, उसमें जबर्दस्ती नहीं करनी चाहिए।

तोता-मैना की कहानी, सारंगा सदावृज, गुलबकावली, चन्द्रकान्ता श्रार जासूसी उपन्यास, ये बिल्कुल निरर्थक चीजें नहीं हैं। ये आरम्भिक काल में बहुतों के लिए साहित्य में प्रवेश कराने में भारी सहायता देते हैं। इसलिए हमारे पुस्तकालयों को ऐसी पुस्तकों का बायकाट नहीं करना चाहिये, बल्कि जिन गाँवों में साक्षरता-आन्दोलन हाल में होने लगा है और लोगों को साक्षर बनाने में कुछ सफलता मिली है, वहाँ तो ऐसी पुस्तकों को जरूर रखना चाहिये। हनुमान-चालीसा, संकटमोचन, दानलीला, सूर्यपुराण, अर्जुनगीता, ज्ञानमाला ये खास श्रेणी के नए साक्षर बने लोगों के ज्ञान और रुचि को बढ़ाने में बड़े सहायक हो सकते हैं। हमारे कार्य का क्रम होना चाहिये– निरक्षर को साक्षर बनाना, साक्षर को पाठक बनाना और पाठक को साहित्यिक के रूप में परिणत करना। इन्हें हम सीढ़ियों द्वारा ही ऊपर ले चल सकते हैं। इसलिए उतावलापन की आवश्यकता नहीं है। जड़ वस्तुओं में हम यंत्र और विज्ञान की सहायता से किसी विशेष संस्कार को तीव्र गति से प्रविष्ट करा सकते हैं, वहाँ हमें कुछ देर तक जबर्दस्ती करने का भी अधिकार है, लेकिन मनुष्य है चेतन वस्तु। वह स्वयं अपने ऊपर बलात्कार करे, लेकिन बाहरी बलात्कार द्वारा मानसिक संस्कार जैसे काम के लिए उसे मजबूर नहीं किया जा सकता।

तात्कालिक राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं पर लिखे स्वतंत्र ग्रन्थ भी आजकल पढ़ना जरूरी है। लेकिन ऐसे ग्रन्थ आसान नहीं होते, इसलिए सभी का चित्त देर तक उनपर एकाग्र नहीं हो सकता। ऐसे ग्रन्थों को अध्ययन-चक्र (स्टडी सर्किल) कायम कर समान रुचि रखनेवाले कुछ लोग साथ-साथ पढ़ें तो उसमें कुछ दिलचस्पी आ सकती है। पढ़े हुए ग्रन्थ और उसके विशेष अध्ययन पर वे तर्क-वितर्क भी कर सकते हैं। उन्नत रुचिवाले उपन्यासों का भी पाठ हम सामूहिक रूप से कर सकते हैं। यह यद्यपि कथावाचन-जैसा मालूम होगा, लेकिन इस समय भी कितने ही पश्चिमी देशों में इसका रिवाज है और इसने साहित्यिक रुचि पैदा करने में काफी सहायता की है।
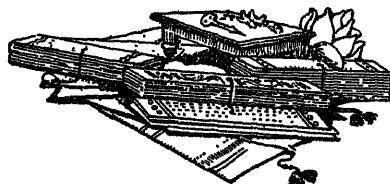
पुस्तकालय हमें बतला सकते हैं कि पाठकों की रुचि कैसे विषयों में

अधिक है और उनकी रुचि कैसे उन्नत हो रही है । इसके लिए हर एक विषय के ग्रन्थों और पाठकों की संख्या का विश्लेषण हमें करना चाहिये । देखना चाहिये, कैसी पुस्तकों की माँग लोगों में अधिक रही । ऐसा विश्लेषण दो-तीन साल करते हुए यदि तुलना करेंगे तो हमें रुचि की प्रगति का पता लग जायगा । पाठकों को कुछ पुस्तकें तो सिर्फ मनोविनोद के लिए पढ़नी पड़ती हैं लेकिन कुछ पुस्तकों को पढ़ने के लिए तत्कालीन समस्याएँ मजबूर करती हैं । इन समस्याओं को लेकर बने ग्रन्थों—निबन्ध और उपन्यास दोनों—को भी पुस्तकालय में रखना चाहिये। बल्कि कोशिश तो यह करनी चाहिये कि जिस समय जो समस्या बड़े जोर से लोगों के सामने आई हो, उस विषय की काफी पुस्तकें मँगा ली जायँ और उनकी विशेषताओं से पाठकों को अवगत कराया जाय। विशेष विषय की पुस्तकों की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए यदि योग्य समालोचकों के निबन्ध प्रकाशित मिल सकें तो उनका पाठ होना चाहिये, जिसमें कि ग्रन्थकार की विशेषता पाठक समझ सकें। छोटे गाँवों में सभी जगह व्याख्यान द्वारा समालोचना का प्रबन्ध होना मुश्किल है। वहाँ के लिए उपर्युक्त शैली अच्छी है ।

व्यक्तियों में रुचि-वैभिन्य तो सभी मानते हैं । दूसरे देशों में इस रुचि-वैभिन्य के अनुसार पुस्तकें लिखने का प्रयास हुआ है। लिखना वहाँ एक उन्नत कला है और पुस्तकालय इस कला की प्रदर्शनी है। हर रुचि के आदमी अपनी रुचि के अनुकूल हजारों प्रकार की पुस्तकें वहाँ पा सकते हैं। हमारे यहाँ इस तरफ लोगों का ध्यान नहीं गया है । पुस्तक-लेखन और प्रकाशन एक अच्छे व्यवसाय के रूप में परिणत होता जा रहा है, लेकिन सभी लेखक सिर्फ स्वान्तःसुखाय की प्रतिज्ञा अपने सामने रखना चाहते हैं। अभी हम मनुष्यों की रुचि का विषयानुसार वर्गीकरण नहीं कर सके हैं और मानसिक विकास की भिन्न श्रेणियों को ही हमने निर्धारित किया है। इसका नतीजा यह होता है कि लेखक के सामने माप नहीं रहता और न पाठकों की ओर उसका ध्यान रहता है। पुस्तकालयों को अपने पाठकों का इस प्रकार वर्गीकरण करके दिखलाना चाहिये। निश्चय

ही ऐसे वर्गीकरणों द्वारा लेखकों और प्रकाशकों के ऊपर प्रभाव डाला जा सकता है।

पुस्तकालय भी एक पाठशाला है। फर्क इतना ही है कि पाठशाला को कुनैन देने का भी अधिकार है लेकिन पुस्तकालय सिर्फ मधुर और लुभानेवली दवाइयों को ही देने का अधिकार रखता है। पाठशाला से एक खास समय तक लोगों को फायदा पहुँचता है लेकिन पुस्तकालय होश सँभालने से लेकर मृत्युशय्या पर पहुँचने तक लोगों के हृदय को रस और आह्लाद प्रदान कर सकता है। कुछ वर्ष पूर्व पुस्तकालय हमारे लिए एक अनसुनी चीज था, लेकिन अब हम जगह-जगह उसकी स्थापना देख रहे हैं और यह बतला रहे हैं कि हम सर्वाङ्गीण योग्यता प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध हो रहे हैं, यह हमारे देश के लिए बड़े सौभाग्य की बात है।

३—पुरातन काल में पुस्तकालय

श्रीभूपेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय, एम०ए०, डि०एल०एस०
पुस्तकाध्यक्ष, सार्वजनिक पुस्तकालय (पब्लिक लाइब्रेरी), प्रयाग

वर्तमान समय में भारतवर्ष और अन्य देशों में पुस्तकालय काफी संख्या में देखे जाते हैं। बड़े-से-बड़े नगरों से लेकर छोटे-छोटे गाँव तक में एक-न-एक पुस्तकालय अवश्य है। सरकारी पुस्तकालयों के अतिरिक्त म्युनिसिपैलिटियों और जिला-बोर्डों के पुस्तकालय और जन-साधारण के पुस्तकालय भी होते हैं।

प्राचीन समय में जब मुद्रण-यंत्र (छापे की मशीन) का प्रचार नहीं था, सब पुस्तकें हाथ से ही लिखी जाती थीं। उस समय भिन्न-भिन्न देशों में किस प्रकार के पुस्तकालय थे, उनका विस्तृत इतिहास जानने का कौतूहल सभी को होता है। उस कौतूहल को शान्त करना ही इस लेख का उद्देश्य है।

सभ्यता के आदि से ही ज्ञान और विद्या से सभी को प्रेम रहा है। लेखन-कला का ज्ञान सृष्टि के आरम्भ से ही लोगों को था अथवा नहीं, यह कहना बहुत ही कठिन है। परन्तु, भारतवर्ष में वैदिक काल से ही ऋषि लोग लिखना जानते थे। इससे पाश्चात्य पंडित सहमत नहीं हैं। परन्तु स्वर्गीय महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा ने अपनी 'प्राचीन लिपिमाला' पुस्तक में इसको प्रमाणित कर दिया है।

पाश्चात्य पंडितों का मत है कि बहुत प्राचीन समय में मनुष्यों को अक्षर ज्ञान नहीं था। वे अपनी चिन्ताओं और भावनाओं को चित्रों तथा अन्य विविध प्रकार की रेखाओं से दर्शाया करते थे। यही अङ्कित चिह्न उस समय की भाषा थी। जिन वस्तुओं पर ये चित्र बनाये जाते थे वही वस्तुएँ उस समय की पुस्तकें थीं। ऐसी भाषामयी पुस्तकों की स्थिति अतिप्राचीन समय से है।

पंडितों ने यह बात स्वीकार की है कि उपर्युक्त प्रकार की पुस्तकों का

पुस्तकालय बहुत प्राचीन समय में किसी देश में था। पत्थरों पर जीव-जन्तु, वृक्ष-लतादि अंकित रहते थे जिससे लोग अपने मनोभाव प्रकाशित करते थे। ये पत्थर नियमानुसार किसी किसी स्थान में एकत्र किये जाते थे और वह स्थान पुस्तकालय कहलाता था। इसके पश्चात् भोजपत्र और ताड़-पत्र लिखने के काम में लाये जाते थे।

इस बात का भी प्रमाण मिलता है कि बहुत प्राचीन समय में देश के राजा पुस्तकालयों की रक्षा तथा प्रबन्ध के लिए पर्याप्त धन देते थे। पुस्तकालय पुरोहितों की देख-भाल में रहता था जो लोगों के घरों पर जाकर उनको पुस्तक पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते थे।

सन् १८५० ई० में लेयार्ड जिस समय 'निनेभा' में खुदाई कर रहा था, उस समय मिट्टी के नीचे एक बड़ा भारी संग्रहालय मिला। उससे लग-भग दस सहस्र पत्थर के टुकड़े थे जिन पर नाना प्रकार के चित्र बने हुए थे और ये टुकड़े एक नियम से रक्खे हुए थे। विद्वानों का मत है कि यह असीरिया के शासक असुरबानी पाल का पुस्तकालय था। बैबीलोन में असीरिया के पुस्तकालय से भी प्राचीन एक पुस्तकालय था। पंडितों ने यह भी पता लगाया है कि छः हजार वर्ष पूर्व अर्थात् 'पिरामिड' बनने के पहले मिस्र-देश में पत्थर पर लिखी पुस्तकों का एक पुस्तकालय था। मिस्र-देश में न केवल मन्दिरों में बल्कि श्मशानों में भी पुस्तकालय बनाये जाते थे। इस बात का भी पता लगा है कि मिस्र में ईस्वी पूर्व १४ वीं शताब्दी में 'असीम्थानडियास' के राज्य-काल में एक बहुत बड़ा पुस्तकालय था। इन ग्रन्थों की लेखन-शैली का पता अभी तक नहीं चला है। साधारणतया मत यह है कि भूमध्यसागर के उत्तरी प्रदेशों में पहले-पहल लिपि का आविष्कार हुआ। यह कहा जाता है कि सबसे पहली लिखने की भाषा चालडियन है।

पुराने यूनान-देश में बहुत बड़े-बड़े पुस्तकालय थे। इस देश के प्रथम पुस्तकालय का संस्थापक 'पिसिस्ट्रेटस' था। प्लेटो, अरस्तू और यूक्लिड इत्यादि के अपने (निजी) पुस्तकालय थे। रोम-देश (इटली) में भी अच्छे-अच्छे पुस्तकालय थे। रोम-देश का राजा 'आगस्टस' सर्वसाधारण पुस्तकालय

का जन्मदाता कहा जाता है। कुस्तुन्तुनिया के उन्नति-काल में कुछ अच्छे पुस्तकालय खोले गए थे। इनमें से कुछ पुस्तकालयों में एक-एक लाख से भी अधिक पुस्तकें थीं। रोम-राज्य के पतन के पश्चात् वहाँ के धर्माचार्यों ने अच्छे-अच्छे पुस्तकलाय खोले थे। प्राचीन समय में मठों और मन्दिरों में पुस्तकों का संग्रह रहता था। रोम-राज्य के पतन के पश्चात् जिस समय पुस्तकालय धर्माचार्यों के हाथ में थे, पुस्तकें साधारण मनुष्यों को पढ़ने के लिए उधार दी जाती थीं। उसी समय से यह प्रथा आज तक चली आ रही है।

प्राचीन समय में एलेक्जैण्ड्रिया के पुस्तकालय बहुत प्रसिद्ध थे। वहाँ एक पुस्तकालय ४६०,००० पुस्तकें थी। टोले ने जो सिकन्दर के सात शरीररक्षकों में से था उस समय जब कि पुस्तकें भोजपत्रों पर लिखी जाती थी, एक बहुत बड़े पुस्तकालय की स्थापाना की थी।

मिस्र, ग्रीस, रोम इत्यादि देशों में ही प्राचीन समय में पुस्तकालयों का कुछ-कुछ इतिहास मिलता है। इनके अतिरिक्त पश्चिम के अन्यान्य देशों के पुस्तकालय बहुत प्राचीन नहीं है। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय का पुस्तकालय १५ वीं शताब्दी में स्थापित हुआ था। अमेरिका देश में ५०-६० वर्ष पूर्व लगभग ३०० पुस्तकालय थे।

पुराने समय में पुरोहित, पादरी और मठाधीश क्या भारत, क्या अन्य देशों में पुस्तकाध्यक्ष का काम करते थे। प्रत्येक मन्दिर, मठ तथा गिरजे में पुस्तकों का संग्रह रहता था। पुरोहितों का कार्य केवल पुस्तकों की देख-भाल करना ही नहीं होता था, वरन् उनको पढ़ना तथा लोगों को पढ़ाना और पढ़ने की रुचि उत्पन्न करना भी होता था।

चीन-महादेश में पुस्तकों का बहुत आदर था। इसका प्रधान कारण केवल यही नहीं था कि लोगों को पढ़ने से प्रेम था, वरन् वहाँ के लोग पुस्तक संग्रह करना अपना धर्म समझते थे। इसलिए वहाँ के अपढ़ लोगों के घरों में भी पुस्तकों का बड़ा संग्रह रहता था। चीन के लोग साहित्यप्रेमी तथा काव्यानुरागी होते थे। प्राचीन समय में चीन में साधारण पुस्तकालय तो सम्भवतः नहीं थे, परन्तु राजाओं और प्रतिष्ठित

लोगों के अपने-अपने पुस्तकालय थे। इतिहास से यह पता चलता है कि चीन का सबसे प्राचीन पुस्तकलय चाऊ राजवंश का था, जिसकी राजधानी होनान प्रान्त में लोयांग में थी। एक समय ऐसा था कि चीनी लोग मन्दिरों और गुफाओं में पत्थरों से ढके रहते थे चीनियों को संस्कृत और प्राकृत साहित्य से बहुत प्रेम था। हान राज्य में लोयारा विहार में इन भाषाओं की शिक्षा दी जाती थी। इस समय चीन-देश में जो संस्कृत और प्राकृत भाषाओं की पुस्तके हैं, वे सम्भवतः हान राज्य-काल में भारत से लाये गए होगें। इसका प्रमाण है कि संस्कृत भाषा के अनुवाद से चीनी भाषा की उन्नति हुई थी। इतिहास से यह भी ज्ञात होता है कि 'धर्मफल' नामक एक भारतीय कुछ पुस्तकें लेकर चीन-देश को गया था। भारतीय भाषाओं के अनुवाद का केन्द्र-स्थान दक्षिण चीन की राजधानी कियेन रे थी। लगभग १४०० भारतीय पुस्तकों का अनुवाद चीनी भाषा में हुआ था। अनुवादकों में एक चीनी भी था, जिसका नाम 'चा चियेन' था। उसने अवदान-शतक, मातंगीसूत्र, सुखवती अथवा आर्यतंत्र इत्यादि पुस्तकों का सम्पादन किया था। दूसरा अनुवादक कुमार जीव था, जो भारत से गया था।

अति प्राचीन पुस्तकों में इसका निदर्शन नहीं है कि प्राचीन भारत में पुस्तकालय थे या नहीं। परन्तु पुस्तकों की वर्गीकरण-पद्धति और विद्या का विभाग इत्यादि जैसा कि आजकल पुस्तकालय-विज्ञान में है, उस प्रकार का हमारे बहुत से प्राचीन ग्रन्थों में पाया जाता है। इससे यह सुविदित है कि प्राचीन भारत में पुस्तकालय अवश्य थे। भारत जैसे देश में, जहाँ वेदादि ग्रन्थों की रचना हुई; जो विद्या, सभ्यता और संस्कृति का प्राचीनतम केन्द्र रहा है, वहाँ पुस्तकालयों का न होना विश्वसनीय नहीं है। जो कुछ प्रमाण मिले हैं और प्राचीन पुस्तकों में पुस्तकालय का जो वर्णन है, उससे प्रमाणित होता है कि भारत में पुस्तकलयों का अभाव नहीं था।

श्रुति में विद्या दो भागों में विभक्त है—परा और अपरा (द्वे विधेवेदितव्ये परा चैवाऽपराच)। कणाद तीन वर्ग बतलाते हैं, यथा—धर्म, अर्थ और काम। कालिदास ने कुमारसम्भव में तीनों को पृथ्वी में रहने का

उपाय बतलाया है। इसके अनन्तर एक चौथा वर्ग मोक्ष भी बतलाया गया है। हमारे प्राचीन साहित्यों में चतुवर्गों का उल्लेख है। यह एक प्रकार का वर्गीकरण है, जिसके आधार पर पुस्तकों का वर्गीकरण होता है।

दूसरे प्रकार का वर्गीकरण स्मृति और नीति-शास्त्रों में पाया जाता है। पहले में १४ वर्गों का उल्लेख है और दूसरे में ३२ का। अर्थशास्त्र में ४ वर्ग (भाग) बतलाये गए हैं और पशुप्ताचार्य में पाँच। साधारणतया पुस्तको के विषयों का वर्गीकरण चार भागों (वर्गों) का है। वात्स्यायन तथा दूसरे ऋषियों ने कला के ६४ भाग बतलाए हैं। कुल मिलाकर ५२८ कलाएँ हैं। ग्रन्थों के पारायण करने से और भी विविध प्रकार के ज्ञान होते हैं। नालन्दा, विक्रमशिला, तक्षशिला, ओदन्तपुरी आदि विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों की पुस्तकें तथा मन्दिरों और पीठों की पुस्तकें वर्गीकृत रूप से ही रक्खी जाती थीं। पुराने पंडितों की पुस्तकें संग्रह-नियम के अनुसार ही रक्खी हुई पाई जाती हैं।

महामहोपाध्याय उमेश मिश्र लिखते हैं—'बौद्धकालीन भारत में सबसे पहले कनिष्क के समय में बौद्ध ग्रन्थों का संग्रह कर एक स्थान में रखने का विवरण मिलता है। कनिष्क का राज्यकाल ईसा के बाद ७८ वीं ईस्वी में था किसी-किसी के मतानुसार १२५वीं ईस्वी में कहा जाता है। बौद्धों के धार्मिक तथा दाशर्निक मत के अनेक भेदों को देखकर कनिष्क ने 'पार्श्व' की सहायता से समस्त बौद्ध ग्रन्थों का एक प्रामाणिक संग्रह किया और उन्हें ताम्रपात्रों पर लिखकर एक अलग स्तूप बनवाकर उसमें उन ग्रन्थों को सुरक्षित रखा तथा उसकी रक्षा के लिए पहरेदारों को तैनात किया।

प्राचीन समय में भारतवर्ष में कई विश्वविद्यालय थे। उनके अपने अलग-अलग पुस्तकालय थे। नालन्दा-विश्वविद्यालय का बहुत बड़ा पुस्तकालय था जिसमें विविध विषयों की पुस्तकें थी। चीन देश के पंडित वर्षों

॥ 'भारतवर्ष के प्राचीन पुस्तकालय'—लेखक ओंकारनाथ श्रीवास्तव (भूमिका)।

नालन्दा में रहकर अध्ययन करते थे। यहाँ रहकर वे बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन करते थे। ईत्सिंग ने नालन्दा में रहकर ४०० संस्कृत ग्रन्थो की जिसमें लगभग ५,००,००० श्लोक थे, नकल करवाई थी। यहाँ का पुस्तकालय 'धर्मगंज' के नाम से प्रसिद्ध था। यह पुस्तकालय तीन बड़े-बड़े प्रासादों में विभक्त था, एक का नाम 'रत्नसागर' दूसरे का नाम 'महोदधि' और तीसरे का नाम 'रत्नरंजक' था। दूसरा प्रसाद नव मंजिला था। धर्मपाल का शिष्य शीलभद्र इस पुस्तकालय का अध्यक्ष था। ३०० ई० में हुएनत्सांग यहाँ प्राचीन भारतीय साहित्य पढ़ने के लिए कुछ समय तक रहा था।

पुस्तकालय के अन्तिम दिन का सम्बन्ध नालन्दा की अवनति तथा बौद्ध धर्म के लुप्त हो जाने से है। उक्त पुस्तकालय को पहले पहल हूणों के सरदार मिहिरकुल के हाथसे क्षति पहुँची परन्तु उसे बालादित्य राजा ने ४७० में परास्त किया और जो क्षति हुई थी उसे पूरा किया। तदुपरान्त पुस्तकालय की वृद्धि बराबर होती रही और सन् १२ ईस्वी में बख्तियार खिलजी ने जब विक्रमशिला के पुस्तकालय का विध्वंस किया तब तक नालन्दा का बिध्वंस हो चुका था। प्राचीन पुस्तकालयों में राजा भोज के पुस्तकालय का आभास मिलता है। उस पुस्तकालय में ३००० भोजपत्र पर लिखी हुई हस्तलिखित पुस्तकों का होना पाया जाता है। यह पुस्तकालय महाकवि बाण की अध्यक्षता में था।

विक्रम शिला—मगध के प्रसिदध राजा धर्म पाल (देवपाल) ने पहाड़ी के ऊपर विक्रम शिला के मठ को बनवाया था। इस स्थान पर १०८ मठ थे। पता चलता है कि यहाँ के सबसे बड़े विद्वान दीपंकर श्री ज्ञान थे जो साधारणतया उपाध्याय 'आतिश' के नाम से प्रसिद्ध थे, जो तिब्बत के राजा के आमन्त्रित करने पर वहाँ गए थे। राजा ने २०० पुस्तकें (हस्तलिखित की सही नकल) और कुछ अनुवाद की हुई पुस्तकें पंडित जी को भेंट की थीं। बारहवीं सदी में लगभग ३००० भिक्षु-विद्यार्थी इस मठ

---

* 'बाण ने पांडुलिपि पढ़नेवाले कई व्यक्तियों को नियुक्त किया था' (मैकडोनेल-लिखित संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २० देखिए)।

में रहते थे, जहाँ एक विशाल अमूल्य पुस्तकालय था और जिनकी प्रशंसा आक्रमण के समय यवनों ने भी की है। इस पुस्तकालय का कमरा चित्रकारी से सुशोभित था। ऊपर कहा गया है कि विक्रमशिला का विध्वंस बख्तियार खिलजी के हाथ हुआ।

वलभी विहार—इस विहार में एक बड़ा पुस्तकालय था जिसकी प्रतिष्ठात्री राजकुमारी दत्ता थी। यह राजा धारासेन प्रथम की मौसी की लड़की थी। राजा गुहसेन (५५६) इस पुस्तकालय का खर्च चलाते थे। दक्षिण भारत के शिलालेखसंख्या ६०४, ६ ६७, ६७१, ६६५, जिनकी तारीख १२१६ ई० पाई जाती है, उनमें लिखा है कि यहाँ के शिक्षकों के वेतन और छात्रों के व्यय के लिए समुचित प्रबन्ध होता था। अन्तिम शिलालेख में यह पाया गया है कि तिन्नावली-जिले के सरस्वती-भवन के लिए एक बड़ा चन्दा दिया गया है। वलभी पश्चिम दिशा में होने के कारण भारतवर्ष से व्यवसाय का सम्बन्ध रखने वाले देशों के सम्पर्क में भी पड़ता था। इस कारण यहाँ के पुस्तकालय की प्रसिद्धि अत्यन्त बढ़ी-चढ़ी थी और पुस्तकालय में शिक्षा प्रदान किये जाने वाले विषय के अतिरिक्त अन्य विषयों की पुस्तकें भी पर्याप्त संख्या में थीं।

ईस्वीपूर्व ६ ठी शताब्दी में तक्षशिला-विश्वविद्यालय में एक बड़ा पुस्तकालय था। वैयाकरण पाणिनि और चन्द्रगुप्त के कूट राजनीतिज्ञ मंत्री चाणक्य, दोनों यहाँ पढ़ते थे, ऐसा उल्लेख है।

सूक्ष्म रूप से नदिया, बनारस, मिथिला आदि स्थानों में पुस्तकालयों का विवरण है। मिथिला का पुस्तकालय बहुत ही रोचक माना जाता है और कहा जाता है महाराजा जनक के समय से इस पुस्तकालय का सम्बन्ध रहा, परन्तु कोई विशेष प्रमाण इसकी पुष्टि नहीं करता। बंगाल के सेन-राजाओं के समयमें नदिया में एक बड़ा पुस्तकालय था। इस पुस्तकालय की पुस्तकों का उपयोग रघुनाथ, रघुनन्दन और श्री चैतन्य देव ने किया था। बंगाल के जगदल-विहार में एक पुस्तकालय था जो कि जला दिया गया था।

बन[illegible] के पुस्तकालयों का सूक्ष्म आभास प्रोफेसर किंग साहब ने अपने

'ऐनशेंएंट इण्डियन एजुकेशन' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि कुछ कालेजों में १० से ४० पुस्तकें रहती थीं और संस्कृत पाठशालाओं में भी आवश्यकतानुसार पुतस्कें रहती थीं। एक साधु ने बनारस में एक बहुत बड़ा पुस्तकालय स्थापित किया था।

नेपाल-राज्यमें नेवार राजा लोगों का अच्छा पुस्तकालय था, जिसको गोरखों ने जला दिया था। आजतक नेपाल के राजकीय पुस्तकालय में बहुत प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रह है। भारतीय इतिहास से पता चलता है कि भारत) के समस्त हिन्दू राजे विद्यानुरागी थे और अपने राज्य में पुस्तकों का संग्रह करते थे। इनमें गुजरात त्रावणकोर, और राजपूताना विशेष उल्लेखनीय हैं। देशी राज्यों में अभीतक हस्तलिखित पुस्तकों का बड़ा संग्रह है, इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल से ही इनको पुस्तकों के संग्रह करने की रुचि है।

प्राचीन समय में छापाखाना न होने के कारण यह आवश्यक था कि राजे-महराजे और धनी लोग पुस्तकों की प्रतिलिपि करवाने के लिए पर्याप्त धन दें। इसी कारण हमारे शास्त्रों में पुस्तक-दान का महाफल लिखा है। सारे संसार का भाग्य बुद्धि और विद्या पर ही निर्धारित है। इसलिए नन्दी पुराण में लिखा है कि धर्मात्मा मनुष्य को पुस्तक दान देने का व्रत ग्रहण करना चाहिए। शास्त्रों, पुराणों आदि धर्मग्रन्थों के इन्हीं उपदेशों के कारण हमारे देश में बड़े-बड़े पुस्तकालय हिन्दुओं तथा बौद्धों के थे। देवपाल ने नालन्दा-विश्वविद्यालय को पाँच गाँव दान में दिए थे। इसके फलस्वरूप 'रत्नसागर' ग्रन्थागार का निर्माण हुआ था। बंगाल के प्रसिद्ध व्यापारी अविधाकर ने नवीं शताब्दी में पश्चिमी भारत के कौवेरी विहार के पुस्तकालय को पुस्तकें खरीदने के लिए बहुत-सा धन दिया था

इतिहास पढ़ने वालों को मालूम है कि मुसलमानी राज्य के प्रारम्भ में भारत के बहुत से पुस्तकालय नष्ट हो गए। यद्यपि विजेता मुसलमान शासकों को देश जीतने के लिए कुछ पुस्तकालयों को जलाना पड़ा था, इससे यह नहीं समझना चाहिये कि उनको विद्या-से प्रेम नहीं था। प्रायः सभी मुसलमान बादशाहों के अपने निजी पुस्तकालय थे जिनमें न केवल

अरबी और फारसी भाषा की ही पुस्तकें थीं वरन संस्कृत और अन्यान्य भाषाओं की पुस्तकें भी रक्खी जाती थीं। दिल्ली का शाही पुस्तकालय, हुमायूँ बादशाह और गुलबदन बेगम के पुस्तकालय उल्लेख करने योग्य हैं। नादिर शाह ने ये पुस्तकालय भी जलवा दिए थे

मुगल राज्यकाल के पहले से ही दिल्ली में राजकीय पुस्तकालय था जिसका अध्यक्ष अमीरखुसरो था। खिजलीवंशीय जलालुद्दीन ने इसको इस पद पर नियुक्त किया था। बीजापुर में आदिलशाह का आदिलशाही पुस्तकालय नामक एक राजकीय पुस्तकालय था। इसका नाश औरंगजेब के हाथों हुआ। अहमदनगर में बहमनी के राजों का एक पुस्तकालय था। फरिश्ता ने यहाँ की पुस्तकों को देखा था।

मुगल बादशाहों में हुमायूँ पुस्तकों से गहरा प्रेम रखता था। अपने पुस्तकालय से गिरकर ही हुमायूँ बादशाह मरा था। दिल्ली के पुराने किले में यह पुस्तकालय स्थापित था। कहा जाता है कि अकबर बाकायदा शिक्षित न था परन्तु वह पंडितों और मौलवियों को अपनी सभा में रखता था और उसका एक शाही पुस्तकालय भी था।

मुगल बादशाहों के बाद टीपू साह का उल्लेख है जिसका एक बहुत बड़ा पुस्तकालय था। उस पुस्तकालय में बहुत भाषाओं की पुस्तकों का संग्रह था। यह धुरन्धर विद्वान और भाषाविद् था। यूरोप की भाषाओं की पुस्तकें भी इसके पुस्तकालय में थीं।

निजी पुस्तकालयों में से फैज का पुस्तालय उल्लेखनीय है। उसकी मृत्यु के पश्चात् इस पुस्तकालय में ४६०० पुस्तकें थीं। बैराम खाँ का पुत्र अब्दुल रहीम विद्वान् था और उसके पास निजी पुस्तकालय भी था। मीर मुहम्मद अली के पास २००० पुस्तकों का संग्रह था। यह विद्यानुरागी था। मुर्शिदाबाद के नवाब अलीवर्दी खाँ ने इनको अपनी सभा में आमंत्रित किया था।

शाही और व्यक्तिगत पुस्तकालयों के अलावा मुसलिम भारत में एक 'कालेज' पुस्तकालय का भी उल्लेख है। महमूद गँवा ने जो महमूद शाह बहमनी द्वितीय का मंत्री था, बिदर में एक 'कालेज' बनवाया था,

जिसमें ३०० पुस्तकों का एक पुस्तकालय था।

यद्यपि वर्गीकरण-पद्धति मुसलिम राज्य में बहुत उन्नत नहीं थी तथापि पुस्तकें एक पद्धति से रक्खी जाती थीं। अकबर के पुस्तकालय की पुस्तकें दो भागों में विभक्त थीं—(१) विज्ञान, (२) इतिहास। फैज की पुस्तकें जब इसमें मिला दी गईं तो वे तीन भागों में विभक्त की गईं। प्रथम—पद्य, आयुर्वेद, ज्योतिष और संगीत; द्वितीय—दर्शन, भाषा-विज्ञान, सूफी, नक्षत्र-विज्ञान, ज्यामिति; तृतीय—टीका, इतिहास, धर्म, कानून।

मुसलिम भारत के पुस्तकालय भी नष्ट कर दिए गए थे। *

---

* विशेष विवरण और प्रमाण के लिए निम्नलिखित पुस्तकें देखिए।

१ ब्रिटेन का विश्वकोष, भाग ११ और १४

२ भारतवर्ष के प्राचीन पुस्तकालय (ओंकारनाथ श्रीवास्तव)

३ पुस्तकालय निबन्ध—भूपेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय-लिखित—डूँगर कालेज-पत्रिका का रजत-जयन्ती-अंक

४ ग्रन्थागार—(भूपेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय) स्वाध्याय

५ इण्डियन ऐंटीक्वीटीज, भाग ४, पृष्ठ ११५

६ ऐंशियण्ट इंडियन एजुकेशन—(अलटेकर)

७ तवाकात नासिरी—(इलियट)

८ 'युनिवरसिटी आफ नालन्दा'—(संकानि)

९ इण्डियन लाजिक मिडीवेल स्कूल—(विद्याभूषण)

१० बंगाल एशियाटिक सोसाइटी—पत्रिका १९१५—१६

११ ऐंशियण्ट इण्डियन एजुकेशन (आक्सफोर्ड-यूनिवर्सिटी-प्रेस)

पुस्तकालय-आन्दोलन

प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र, एम० ए०, बी० एल०

देश की समग्र जनता में व्यापक रूप से शिक्षा-प्रचार के लिए अबतक जितने साधन काम में लाये गए हैं उनमें पुस्तकालय एक प्रधान उपाय है। शिक्षा के परिणाम को स्थायी एवं व्यापक करने के लिए संसार के सब देशों में लाखों छोटे-बड़े पुस्तकालयों की स्थापना हो चुकी है। संसार के ये ज्ञान-भाण्डार इस समय शिक्षाप्रचार के विराट् केन्द्र हो रहे हैं। इन्हें बृहत्तर विश्वविद्यालय या निरन्तर विद्यालय (Continuation School) कह सकते हैं। यहाँ ज्ञान की जो अचंचल दीपशिखा अहर्निश जलती रहती है उसके आलोक से अबतक न मालूम कितने मानवों का अज्ञानान्धकार दूर हो चुका है, और हो रहा है तथा कितने भ्रान्त पथिकों की संसार-यात्रा के दुर्गम पथ में अपना मार्ग निर्धारित करने का संकेत मिला है और मिल रहा है। जैसा कि सुप्रसिद्ध विद्वान् इमर्सन ने लिखा है—'बहुत बार ऐसा देखा गया है कि किसी एक पुस्तक के पढ़ने से मनुष्य का भविष्य बन गया है' (Many times the reading of a book has made the future of a man)। मानव-जीवन पर पुस्तक का प्रभाव कितना अधिक पड़ सकता है, इस सम्बन्ध में इंगलैण्ड के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ एवं लेखक बैंजामिन डिजरेली ने लिखा है—पुस्तक युद्ध की तरह महत्ता रख सकती है' (A book may be as great a thing as battle.) किसी देश या जाति के राजनीतिक जीवन में युद्ध का जितना क्रान्तिकारी प्रभाव पड़ता है उसके नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन पर किसी उत्तम पुस्तक का प्रभाव उससे कम नहीं पड़ता। तुलसीदास के रामचरितमानस ने लाखों-करोड़ों नर-नारियों के जीवन पर जो प्रभाव डाला है और डाल रहा है, इसे कौन नहीं जानता। इस प्रकार के और भी कई ग्रन्थों का उल्लेख किया जा सकता है।

इतना ही नहीं। आधुनिक पुस्तकालय विभिन्न श्रेणी और विचार के लोगों के लिए मिलन-केन्द्र भी हो रहे हैं। यहाँ कोई आता है अपनी मानसिक एवं बौद्धिक उन्नति करने, कोई आता है अपने अवकाश के समय का सदुपयोग करने और कोई आता है अपने व्यवसाय के लिए आवश्यक तथ्य संग्रह करने। पुस्तकालय का द्वार सबके लिए समानरूप से खुला रहता है।

पुस्तकालय का जन्म

पुस्तकालय की स्थापना सबसे पहले किसने और कहाँ की, इसका ठीक-ठीक विवरण नहीं मिलता। किन्तु आधुनिक इतिहास और पुरातत्त्व के पण्डितों के अनुसन्धान से मालूम होता है कि ईस्वी सन् के बहुत पहले भी पुस्तकालय का अस्तित्व पाया जाता था। मिस्र में एक पुस्तकालय का अनुसन्धान किया गया है जो चार हजार वर्ष पहले का अनुमान किया जाता है। प्राचीन काल में, जब ग्रीस सभ्यता के उच्चतम शिखर पर समासीन था, उस समय अलेक्जेण्ड्रिया का पुस्तकालय ही संसार का सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालय समझा जाता था। एथेन्स के पुस्तकालयों में जो ग्रंथ थे, उनकी संख्या लगभग चार लाख थी। रोम-सम्राट् जूलियस सीजर ने इन सब ग्रंथों को जला डाला था। चीन देश में बहुत से हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह किया गया था। पन्द्रहवीं सदी में चीन में जो विराट् ग्रन्थ था वह ग्यारह हजार खंडों में सम्पूर्ण था। चीनी जाति, कठोर परिश्रमी होने पर भी, इसकी दो से अधिक प्रतिलिपियाँ नहीं तैयार कर सकी थी। इनमें पहली प्रतिलिपि तो कुछ समय के बाद नष्ट हो गई, लेकिन दूसरी बक्सर-विद्रोह के पहले तक बची हुई थी। विद्रोह के समय में इस पुस्तकालय में आग लगा दी गई जिससे इस ग्रंथ के सौ से भी कम खण्ड जलने से बच सके। इसी प्रकार प्राचीन फारस, इटली आदि देशों में भी उनकी उन्नति एवं सभ्यता के युग में इस प्रकार के पुस्तकालय पाए जाते थे।

आधुनिक पुस्तकालय

किन्तु फिर भी उस युग के पुस्तकालय और आज के पुस्तकालय में बहुत बड़ा अन्तर है। उस समय जन-साधारण में शिक्षा-प्रचार के साधन अब जैसे सुगम नहीं थे। छापे की कल का आविष्कार तो नहीं ही हुआ था, एक युग ऐसा भी था जब कागज, कलम और स्याही का भी आविष्कार नहीं हुआ था। उस समय जो ग्रंथ पाए जाते थे वे विलक्षण रूप में थे। पत्थर पर या सूखी कड़ी मिट्टी पर उस समय चिन्ह अंकित करके लिखा जाता था। बहुत पतली धातु की पत्तियों पर लिखा जाता था और एक पत्ती के ऊपर दूसरी पत्ती को रखकर, पन्नों को सजाकर और गोल करके मोड़कर रक्खा जाता था।

इसके बाद जब कागज और स्याही का आविष्कार हुआ उस समय भी पुस्तकालयों को वर्तमान युग की लाईब्रेरी का रूप प्राप्त नहीं हुआ था। कारण, उस समय जन-साधारण में शिक्षा-विस्तार का आग्रह विशेष रूप में नहीं देखा जाता था। इसके बाद भी, आज से कुछ शताब्दियाँ पहले तक पुस्तकालय की अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी। ईस्वी सन् की पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी तक लाइब्रेरी की पुस्तकें आलमारियों की ताकों में जंजीर से बँधी रहती थीं। उस समय पुस्तकों का व्यवहार किए जाने की अपेक्षा उनका संरक्षण ही आवश्यक समझा जाता था। छापे की कल का जब तक आविष्कार नहीं हुआ था, हस्तलिखित ग्रंथ बहुत दुष्प्राप्य समझे जाते थे। और यही कारण है कि लोग इन ग्रंथों को बहुमूल्य रत्नों की तरह सुरक्षित रखते थे। यही अभ्यास बहुत दिनों तक बना रहा जिससे मुद्रित रूप में पुस्तकों के प्रकाशित होने पर भी उनके उपयोग करने की अपेक्षा उन्हें सुरक्षित रखने की ओर ही उस समय के लोगों का ध्यान विशेष रूप में था। इसके बाद पुस्तकालय की क्रमशः उन्नति होती गई जिससे वह वर्तमान अवस्था में आ पहुँचा है। पहले पुस्तकालय में बैठकर पढ़ने की अनुमति कुछ चुने हुए आदमियों को दी जाती थी। फिर जो लोग पुस्तकों का

मूल्य जमा कर देते थे उन्हें पुस्तक पढ़ने की अनुमति दी जाने लगी। इसके बाद क्रमशः और भी उन्नति हुई और लोगों को विना कुछ दिए ही पुस्तक पढ़ने दिया जाने लगा लेकिन लोगों को आज-कल के समान पुस्तक घर ले जाने की अनुमति नहीं मिलती थी। इसके बाद पहले परिचित लोगों को और अन्त में सबको घर ले जाकर पुस्तक पढ़ने की अनुमति दी जाने लगी किन्तु हमारे देश में अभी यह प्रथा व्यापक रूप में प्रचलित नहीं हुई है।

भारत के पुस्तकालय

हमारे देश में अभी तक पुस्तकालयों की काफी उन्नति नहीं हुई है और पुस्तकालय-आन्दोलन का प्रचार भी व्यापक रूप में नहीं हुआ है। इसका सबसे मुख्य कारण है शिक्षा का अभाव। किन्तु जिस देश में शिक्षा की अवस्था ऐसी हो, वहाँ पुस्तकालय-आन्दोलन की आवश्यकता कितनी है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। दूसरे देशों के लोग जो इतने अधिक शिक्षित हैं, इसका एक प्रधान कारण है पुस्तकालयों का बहुत प्रचार और इसके पीछे वहाँ के उदारमना धनिकों एवं उद्योगशील व्यक्तियों की अनवरत चेष्टा। अमेरिका में शिक्षा का जो इतना अधिक प्रचार हो रहा है, इसका कारण है वहाँ के पुस्तकालयों की बहुत बड़ी संख्या। किन्तु इन सब पुस्तकालयों में से अधिकांश वहाँ के धनी व्यक्तियों के अर्थ से ही स्थापित हुए हैं। अकेले दानवीर कार्नेगी ने पुस्तकालयों के लिए कितना धन दान किया है, इसका कुछ ठिकाना नहीं। संयुक्त राज्य अमेरिका के सिर्फ एक शहर कैनसस स्टेट में आठ से अधिक पुस्तकालय कार्नेगी-फंड द्वारा परिपुष्ट हुए हैं। इसी प्रकार दूसरे-दूसरे शहरों में भी किसी में पाँच, किसी में छः, किसी में दस, किसी में ग्यारह और किसी में पन्द्रह पुस्तकालय कार्नेगी के धन से परिपुष्ट हो रहे हैं। वाशिंगटन के २७ पुस्तकालयों में ६ कार्नेगी पब्लिक लाइब्रेरी, उटा की २० लाइब्रेरियों में ६ कार्नेगी पब्लिक लाइब्रेरी, टेकसस के १८ पुस्तकालयों में ८ कार्नेगी-पब्लिक-लाइब्रेरी, ओकलीहामा के २७ पुस्तकालयों में १३ कार्नेगी-पब्लिक-लाइब्रेरी हैं। लन्दन-

काउण्टी-कौंसिल शिक्षा-प्रचार के लिए हर साल १ करोड़ २७ लाख रुपये से अधिक खर्च करती है। अभी हमारे देश के पुस्तकालय नित्य एवं आवश्यक विषयों में भी दूसरे देशों के पुस्तकालयों की अपेक्षा बहुत पीछे हैं।

पुस्तकालय का स्थान

पुस्तकालय के स्थान का प्रश्न बड़ा महत्त्व रखता है। हमारे देश में पुस्तकालय साधारणतः शहर के शान्त एवं निर्जन स्थान में स्थापित किए जाते हैं। इसमें अनेक सुविधाएँ हैं। जो कोई भी आकर पुस्तकों को इधर-उधर नहीं कर सकता। लोगों को हल्ला-गुल्ला बर्दाश्त करना नहीं पड़ता। सड़कों पर चलनेवाली सवारियों की धूल से पुस्तकों के शीघ्र नष्ट होने का भय नहीं रहता। शहर के बीच में जो पुस्तकालय स्थापित होते हैं, वे भी ऐसे स्थानों में जहाँ शिक्षित व्यक्तियों का आवागमन हो। नहीं तो पुस्तकालय का सदस्य ही कौन होगा और धन ही कहाँ से आयगा? किन्तु यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो दोनों स्थानों में कोई भी पुस्तकालय के लिए उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। कारण, लाइब्रेरी का प्रधान उद्देश्य होता है उसमें संग्रहीत पुस्तकों का व्यवहार और उसके द्वारा सर्व-साधारण में शिक्षा-प्रचार। इसलिए ऐसे स्थान में पुस्तकालयों की स्थापना होनी चाहिये जहाँ सर्वसाधारण का आवागमन बराबर होता रहता हो। लाइब्रेरी को शहर या ग्राम की शोभा के रूप में समझना भूल है। लाइब्रेरी में पुस्तकों को सजाकर सुरक्षित इसलिए रक्खा जाता है कि लोग उनका अधिक से अधिक उपयोग करें। जिस प्रकार ज्यादा से ज्यादा बिक्री होने के ख्याल से पान की दूकान किसी बड़े होस्टल या मेस के पास अथवा काफे और रेस्तराँ छात्रों के होस्टल के पास खोले जाते हैं, उसी प्रकार, इस ख्याल से कि पुस्तकों का उपयोग अधिक होगा, पुस्तकालय की स्थापना नगर के मध्यभाग में किसी बड़े रास्ते के ऊपर होनी चाहिये।

बहुत से स्कूल-कालेजों में लाइब्रेरी ऐसे कमरे में होती है जिसमें धूप

और हवा अच्छी तरह नहीं जा सकती और वह स्थान बैठकर पढ़ने के लिए सर्वथा अनुपयुक्त होता है। खासकर स्कूल के पुस्तकालयों की अवस्था तो इस दिशा में बड़ी ही शोचनीय होती है। कुछ इधर-उधर की पुस्तकों को दो-तीन आलमारियों में बन्द करके रख दिया जाता है। उसके लिए अलग से कोई लाइब्रेरियन नहीं होता! छात्रों को पुस्तक देने का भार किसी ऐसे शिक्षक के ऊपर सौंपा जाता है जो स्वभाव से रुक्ष और कड़ा हो, क्योंकि ऐसा न होने पर लड़के पुस्तक के लिए तंग किया करेंगे। मद्रास-विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी के लाइब्रेरियन श्रीरंगनाथन ने अपनी पुस्तक 'Five laws of Library Science' में अपने एक परिचित स्कूल की लाइब्रेरी का वर्णन करते हुए लिखा है कि वहाँ का लाइब्रेरियन एक ऐसा शिक्षक था जो उस स्कूल के शिक्षकों में सबसे अधिक रुक्ष एवं निष्ठुर प्रकृति का समझा जाता था। मैट्रिक परीक्षा में बार-बार फेल होने के कारण वह उस स्कूल के शिक्षकों और छात्रों में 'मुहम्मद गजनी' के नाम से परिचित था। लड़के उसके भय से लाइब्रेरी में बहुत कम ही जाया करते थे। एक बार एक छात्र साहस करके उक्त लाइब्रेरियन के पास गया। उसने पढ़ने के लिए एक पुस्तक माँगी। 'मुहम्मद गजनी' ने बड़े ही रूखे और रोषभरे स्वर में गरजते हुए पूछा—कौन-सी पुस्तक चाहिये, सुनूँ भी तो?'

छात्र ने डरते-डरते उत्तर दिया—'Peeps into many lands, Japan, सर'।

'गत परीक्षा में तुम्हें कितना नम्बर मिला था?'

'पचास में बयालीस, सर'

'जाओ' बाहरी पुस्तक पढ़ने के पहले बाकी आठ नम्बर पाने की कोशिश करो!'—शिक्षक ने गम्भीर स्वर में छात्र को उपदेश दिया।

यह तो हुई एक स्कूल-लाइब्रेरी की बात। इसके साथ-साथ श्रीरंगनाथन ने एक कालेज-लाइब्रेरी की अवस्था का भी वर्णन किया है। एक बार एक कालेज के प्रिंसिपल ने एक लाइब्रेरियन को कालेज की लाइब्रेरी देखने और उसकी उन्नति के लिए उपाय सुझाने के उद्देश्य से

अपने कालेज में आमन्त्रित किया। कालेज में पहुँचने पर उन्हें एक ऐसे हाल या दालान से होकर ले जाया गया जो बहुत ही तंग था और जिसमें रोशनी और हवा मुश्किल से पहुँच सकती थी। दालान की दोनों तरफ आलमारियाँ थीं जिनमें पुस्तकें रक्खी हुई थीं। उस दालान से बाहर निकलने पर लाइब्रेरियन ने जब कालेज-लाइब्रेरी के सम्बन्ध में प्रश्न किया तो उन्हें बताया गया कि अभी वह लाइब्रेरी के अन्दर से होकर ही निकले हैं। लाइब्रेरियन को इसपर बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने पूछा कि ऐसे स्थान पर जहाँ लड़के लुकाछिपी खेल सकते हैं, लाइब्रेरी क्यों स्थापित की गई है? फौरन उत्तर मिला कि यह हॉल और किसी काम के लायक नहीं है और उसका उपयोग किसी-न-किसी रूप में होना ही चाहिये, इसलिए यह व्यवस्था की गई है।

पुस्तकालय-आन्दोलन को सफल करने के लिए और उसके द्वारा शिक्षा-विस्तार करने के लिए यह आवश्यक है कि दूसरे देशों की तरह हमारे देश के पुस्तकालय भी ऐसे स्थान में स्थापित हों जहाँ सब लोग सब समय आ-जा सकते हैं। पुस्तकालय-भवन ऐसा होना चाहिये जिसमें स्वभावतः ही लोगों को कुछ क्षणों के लिए बैठने की इच्छा हो। ऐसा नहीं कि किसी पुस्तक के दो-चार पृष्ठों को उलट-पुलट कर देखने के पहले ही वहाँ से मन ऊब जाय और बाहर निकल जाने की इच्छा हो।

दूसरा विषय है पुस्तकालय के खुलने का समय। एक जमाना ऐसा था जब कि पुस्तकालय सप्ताह में एक या दो बार खुलता था और वह भी इसलिए नहीं कि पाठकों को पढ़ने के लिए पुस्तकें दी जायँ, बल्कि खास-कर इसलिए कि पुस्तकों की धूल-गर्द और कीड़ों से रक्षा की जाय। पुस्तकें पढ़ने के लिए हैं, यह धारणा उस समय भी पुस्तकालय के संचालकों के मन में उदित नहीं हुई थी। श्रीरंगनाथन ने इस सम्बन्ध में एक मनोरंजक दृष्टान्त दिया है। किसी पुस्तकालय के संचालकगण इस बात को लेकर बहुत व्यस्त हो रहे थे कि पुस्तकों की माँग जो बहुत बढ़ रही है, उसे कम करने का क्या उपाय होना चाहिये? इसी समय एक संचालक ने विश

व्यक्ति की तरह गम्भीर स्वर में प्रश्न किया—'किस समय पढ़नेवालों की सबसे अधिक भीड़ होती है ?'

'संध्यासमय चार से छः बजे तक'—एक ने उत्तर दिया।

'अच्छा, तो ६ बजे के बदले चार ही बजे पुस्तकालय को बन्द कर देना चाहिये।'

इसपर एक सदस्य ने विनीत भाव से कहा कि छात्रों और शिक्षकों के लिए चार से छः बजे तक का समय ही अधिक सुविधाजनक है। विज्ञ संचालक महोदय ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया—'अधिक पढ़ने का अभ्यास अच्छा नहीं।'

वह जमाना अब नहीं रहा। अब तो कालेज के पुस्तकालय सुबह आठ-नौ बजे से लेकर संध्याकाल में सात-आठ बजे तक खुले रहते हैं। मद्रास-विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी साल में सब दिन सुबह ७ बजे से लेकर संध्याकाल ६ बजे तक खुली रहती है। किन्तु हमारे देश के सब पुस्तकालय अब भी इस आवश्यकता को महसूस नहीं करते। बहुत-से पुस्तकालय तो उसी समय खुले रहते हैं जब लाइब्रेरियन को अपने काम से अवकाश रहता है। साधारणतः हमारे देश के पुस्तकालय सुबह में दो घंटा और शाम में दो घंटा खुले रहते हैं। दिन भर में यही चार घंटे पाठकों को लाइब्रेरी में आने के लिए मिलते हैं। इसके अलावा महीने में प्रत्येक रविवार और पर्व-त्योहार के दिन लाइब्रेरी बंद रहती है। लाइब्रेरी-द्वारा शिक्षालाभ करने का बस इतना ही समय हमें मिलता है। ज्ञान-भण्डार की चाबी इस तरह जो लोग अपने हाथ में रखकर सर्वसाधारण को उसके यथेष्ट उपयोग से वंचित रखते हैं वे क्या अपराधी नहीं हैं ? लंदन युनिवर्सिटी कालेज ने इस विषय में छात्रों को बहुत-कुछ सुविधाएँ प्रदान की हैं। प्रत्येक छात्र या छात्रा को उसके विभाग के पुस्तकालय की एक कुंजी दे दी जाती है जिससे वह दिन-रात में चाहे, जब सुविधानुसार पुस्तकालय का उपयोग कर सकता है। इंगलेण्ड के President of the Board of Education द्वारा स्थापित Public Library Committee ने इस नियम का समर्थन किया है और अपनी रिपोर्ट में

उन्होंने लिखा है कि सर्वसाधारण के लिए दिन-रात पुस्तकालय को खुला रखना ही सबसे अच्छी व्यवस्था है। हमारे देश में जहाँ सैकड़े ६० से अधिक मनुष्य अशिक्षित हैं, यह नियम कितना आवश्यक और उपयोगी है, यह बताने की आवश्यकता नहीं।

लाइब्रेरी की सजावट और उसके सामान—हमारे देश के प्रायः सभी पुस्तकालयों में काँच की आलमारियों में पुस्तकें बन्द रक्खी जाती हैं। इस तरह के भी अनेक पुस्तकालय हैं जिनमें पाठकों को आलमारियों के पास जाने तक नहीं दिया जाता। यह प्रथा तो मनुष्य के मनुष्यत्व की मर्यादा के लिए कितना अपमान-जनक है, यह कहना ही व्यर्थ है। पुस्तकों को आलमारियों में सब समय बंद रखने की अपेक्षा यदि खुले रहने के समय आलमारियों को बंद नहीं रक्खा जाय तो दूसरे पाठकों को बहुत सुभीता होगा। क्योंकि पुस्तक का सूचीपत्र देखकर किसी पुस्तक के संबन्ध में कोई निश्चित धारणा कायम नहीं की जा सकती और यही निश्चय किया जा सकता कि वह पढ़ने योग्य है या नहीं। इसके विपरीत किसी पुस्तक को हाथ में लेकर उसका आकार, रूप-रंग और अंदर के मजमून को सरसरी नजर से देखकर उसके संबन्ध में कुछ न कुछ राय अवश्य कायम की जा सकती है और उसे पढ़ने के लिए आग्रह भी उत्पन्न होता है। आलमारी इतनी ऊँची नहीं होनी चाहिये कि जमीन पर खड़े होकर उसकी सबसे ऊपर की ताक पर हाथ नहीं पहुँच सके। दो आलमारियों के बीच इतना स्थान अवश्य होना चाहिये जिससे दो व्यक्ति स्वच्छन्द रूप से उनके बीच से होकर आ-जा सकें। लाइब्रेरी में प्रसिद्ध लेखकों एवं महापुरुषों के चित्र, दर्शनीय स्थानों के फोटोग्राफ और मानचित्र आदि का होना आवश्यक है। लाइब्रेरी-भवन की दीवारें सुन्दर भव्य चित्रों से सुसज्जित हों, अच्छे-अच्छे ग्रन्थों से सद्वाक्य उद्धृत करके काँच के फ्रेम के अन्दर दीवारों में लटका दिये जायँ तो उन सब ग्रन्थों के लेखकों के प्रति सहज ही श्रद्धा उत्पन्न होती है। देशपूज्य मनीषियों, विद्वानों एवं नेताओं के चित्र मन में नूतन प्रेरणा उत्पन्न करते हैं। उपदेश-वचन एवं सूक्तियों (motto) का भी मन पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है।

अन्त में पुस्तकालय के परिचालकों (staff) के संबन्ध में भी कुछ कहने की आवश्यकता है। यों इनके कर्तव्य एवं दायित्व तो बहुत हैं किन्तु उनमें कुछ प्रधान का यहाँ संक्षेप में उल्लेख किया जाता है। परिचालक-मण्डल में सबसे बढ़कर गंभीर एवं दायित्वपूर्ण कार्य होता है लाइब्रेरियन का। हमरे देश के पुस्तकालयों के जो लाइब्रेरियन होते हैं उनके कार्य्य पुस्तकों को लेने-देने, नई पुस्तके मँगाने, चंन्दे का हिसाब रखने और उसका बुझारत कर देने तक ही सीमाबद्ध रहते हैं। किन्तु लाइब्रेरियन के कर्त्तव्य एवं दायित्व इतने साधारण नहीं हैं और इसके लिए उसे उपयुक्त शिक्षा का प्रयोजन है। पुस्तकालय-विज्ञान (Library Science) के संबन्ध में शिक्षा देने के लिए अमेरिका में चौदह शिक्षाकेन्द्र हैं, लिपजिग में "Leipzig Institute for Readers and Reading" नाम से एक संस्था है। यहाँ तक कि जापान में भी लाइब्रेरियनों को शिक्षा देने के लिए विद्यालय खुले हैं और चीन में भी लाइब्रेरियनों के लिए एक स्कूल (Boone's School) है। हमारे देश में मद्रास में इस प्रकार का एक विद्यालय स्थापित हुआ है। हाल में कलकत्ता-विश्वविद्यालय के उद्योग से तथा इम्पीरियल लाइब्रेरी के सहयोग से कलकत्ता में भी इस प्रकार की शिक्षा देने के लिए एक ट्रेनिंग क्लास खोला गया है।

इसके सिवा लाइब्रेरियन को पुस्तक देते समय भी समझ-बूझकर काम लेना होता है। पाठकों की रुचि भिन्न-भिन्न होती है। कोई पाठक छात्र होता है; कोई बिना किसी उद्देश्य के यों ही पढ़ना चाहता है और कोई अपने प्रिय विषय में पाण्डित्य प्राप्त करने के लिए पढ़ना चाहता है। इसलिए पुस्तक-प्रेमी छात्र और जो बिना किसी उद्देश्य के पुस्तक पढ़ते हैं, उनमें किसी खास विषय के प्रति रुचि जाग्रत करने के लिए लाइब्रेरियन चेष्टा कर सकता है, किन्तु जो पाठक अपने प्रिय विषय में अधिक ज्ञानार्जन करने के उद्देश्य से पढ़ना चाहता है उसे लाइब्रेरियन अपने मन के अनुसार पुस्तक देने की चेष्टा नहीं कर सकता। पाठकों की रुचि के अनुसार ही उन्हें यथासंभव पुस्तकें देना उचित है। एक बार कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर

ने अपने एक भाषण के प्रसंग में कहा था—"लाइब्रेरियन को पुस्तकों का ज्ञान होना चाहिये, केवल भंडारी होने से उसका काम नहीं चल सकता।" सचमुच, केवल पाठकों को पुस्तक देना ही लाइब्रेरियन का काम नहीं होना चाहिये। पाठकों के साथ उसका परिचय और पुस्तकों के संबन्ध में उसकी जानकारी होनी चाहिये और साथ ही माँगी हुई पुस्तकों को शीघ्र देने की शक्ति उसमें होनी चाहिये। "लाइब्रेरियन को मनोविज्ञान का पारखी होना चाहिये। इतना ही नहीं, बल्कि यदि सर्वोत्तम फल प्राप्त करने की इच्छा हो तो लाइब्रेरी के संचालकमण्डल में प्रत्येक सदस्य को मनस्तत्त्व का ज्ञान होना चाहिये।" श्रीरंगनाथन् के इस कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि प्रत्येक सदस्य को मनोविज्ञान का अवश्य ही अध्ययन करना चाहिये बल्कि यह कि लाब्रेरियन को भिन्न-भिन्न प्रकार के पाठकों के सम्पर्क में आना पड़ता है और इसलिए यह आविश्यक है कि वह मनुष्य के चरित्र का विश्लेषण करने की क्षमता प्राप्त करे।

हम ऊपर इस बात का उल्लेख कर आए हैं कि वर्तमान काल में सब श्रेणी के लोगों में शिक्षा-प्रचार करने और उनकी सेवा करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के पुस्तकालय स्थापित हुए हैं। इस प्रकार के पुस्तकालयों में सबसे पहला स्थान सरकारी पुस्तकालयों का है। इन सरकारी पुस्तकालयों में एक-एक को एक विराट् संस्था समझना चाहिये। एक-एक पुस्तकालय में ३०-४० लाख तक पुस्तकों का संग्रह रहता है। सरकारी पुस्तकालयों में लन्दन की ब्रिटिश म्यूजियम लाइब्रेरी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। उत्कृष्ट पुस्तकों का संग्रह, उत्तम व्यवस्था एवं परिचालना में यह संसार का सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालय कहा जा सकता है। सर हैन्स स्लोगन के ग्रन्थसंग्रह को लेकर १७५३ ई० में यह पुस्तकालय स्थापित हुआ और क्रमशः सरकारी सहायता प्राप्त करके यह एक अपूर्व संस्था में परिणत हो गया। फ्रांस का राष्ट्रीय पुस्तकालय "ला विपलियोथेक नेशनल" भी इसी श्रेणी का एक उत्कृष्ट पुस्तकालय है। इसका इतिहास बहुत पुराना है। पहले यह फ्रांस के राजाओं के धनदान से परिपुष्ट हुआ और बाद में वहाँ की प्रजातंत्र-सरकार के हाथ में आया। इसके बाद संयुक्त राज्य अमेरिका की कांग्रेस लाइब्रेरी का नाम लिया जा सकता

है। इस लाइब्रेरी के लाइब्रेरियन का यह दावा है कि यह संसार का सबसे बड़ा पुस्तकालय है। इस लाइब्रेरी का भवन अन्य सब पुस्तकालयों की अपेक्षा सुन्दर है। इसमें प्रतिदिन औसत पाँच सौ से अधिक पुस्तकों का संग्रह किया जाता है। इससे ही इस पुस्तकालय की विशालता का अनुमान किया जा सकता है। इस लाइब्रेरी की ताकी (Shelf) को अगर एक-एक कर सजाया जाय तो वह चौरासी माइल लम्बा होगा। मास्को की "लेनिन स्टेट लाइब्रेरी" की जो योजना तैयार की गई है वह कार्यरूप में परिणत होने पर अवश्य ही आकार में यह संसार की सबसे बड़ी लाइब्रेरी होगी। इसके बाद ही जर्मनी के पुस्तकालयों का स्थान है। और तब अन्यान्य देशों के पुस्तकालय।

इन सब पुस्तकालयों की उन्नति के तीन प्रधान कारण हैं:—(१) सरकारी सहायता (२) पुस्तक-प्रेमियों द्वारा पुस्तक-संग्रह, दान, (३) कापी-राइट कानून—इस कानून के अनुसार कोई नई पुस्तक प्रकाशित होने पर उसकी एक प्रति सरकारी लाइब्रेरी में भेजनी पड़ती है। ब्रिटिश म्यूजियम आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज-विश्वविद्यालयों के पुस्तकालय कापीराइट लाइब्रेरी हैं। कलकत्ता की इम्पीरियल लाइब्रेरी, बड़ोदा की सेण्ट्रल लाइब्रेरी, लाहौर की पंजाब पब्लिक लाइब्रेरी, बंगलोर की पब्लिक लाइब्रेरी और मद्रास की पब्लिक लाइब्रेरी सरकारी पुस्तकालय हैं। यूरोप और अमेरिका के सरकारी पुस्तकालयों का भी इस प्रसंग में उल्लेख किया जा सकता है। बड़े-बड़े शहरों में जो पुस्तकालय होते हैं उनके शाखा-पुस्तकालय और पुस्तक-वितरण के केन्द्र (Delivery station) होते हैं।

कमर्शियल लाइब्रेरी—ऊपर जिन सरकारी पुस्तकालयों का उल्लेख किया गया है उनमें संसार के ज्ञानभाण्डार के समस्त विभागों की पुस्तकें रहती हैं। किन्तु इनके सिवा एक-एक खास विषय को लेकर भी लाइब्रेरी स्थापित की जाती है; जैसे, व्यवसाय-वाणिज्य-संबन्धी पुस्तकों की लाइब्रेरी, कृषिसंबन्धी पुस्तकों की लाइब्रेरी। कलकत्ता की कमर्शियल लाइब्रेरी में अर्थशास्त्र तथा वाणिज्य-व्यवसाय विषयक पुस्तकों का बृहत् संग्रह है। व्यवसायी और अर्थशास्त्र के विद्वानों के लिए यह पुस्तकालय बड़े काम का

है। Imperial Council of Agricultural Research और पूसा की Agricultural Institute Library जो अब दिल्ली चली गई है, कृषि-शास्त्र-संबन्धी पुस्तकों की लाइब्रेरी हैं। एग्रिकलचरल इन्सटीट्यूट लाइब्रेरी में कृषि-विषयक महत्त्वपूर्ण पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं का संग्रह है और इसके लिए एक नया विशाल भवन दिल्ली में बनाया गया है। यूरोप के देशों में इस प्रकार के बहुत-से पुस्तकालय हैं। कुछ समय पूर्व मुसोलिनी ने इटली में एक सरकारी कृषि-पुस्तकालय का उद्घाटन किया था। इस प्रकार के पुस्तकालय एक-एक विषय के विशेषज्ञ और अनुसन्धानकारियों के लिए विशेष उपयोगी होते हैं।

शिक्षण-संस्थाओं के पुस्तकालय—सरकारी पुस्तकालयों के बाद विश्व-विद्यालय, कालेज और स्कूलों के साथ संबद्ध पुस्तकालयों का स्थान है। इन में विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों का स्थान विशेष महत्त्वपूर्ण है, कारण विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी उस विश्वविद्यालय के प्रधान अंग के रूप में होता है। पुस्तकों की अधिकता और उनके व्यवहार की दृष्टि से पब्लिक लाइब्रेरी के बाद ही इसका स्थान है। आक्सफोर्ड-विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी विश्वविख्यात हैं। इनको स्थापित हुए कई सौ वर्ष हो गए। सर टाम्स बडली ने आक्सफोर्ड-विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी का सूत्रपात किया था। उनके नाम पर ही इसका नाम "बडलिन लाइब्रेरी" पड़ा है। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी में दस लाख पुस्तकें हैं। कुछ समय पूर्व इस लाइब्रेरी के लिए एक विशाल सुन्दर भवन निर्मित हुआ है। इस भवन के निर्माण में कई लाख रुपये लगे हैं। इस भवन में ४३ मील लम्बा शेल्फों में १५ लाख पुस्तकों के रखने का स्थान है। अमेरिका के विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों में हार्वार्ड और येल के नाम उल्लेख योग्य हैं। एडवर्ड हर्कन्से नामक एक अमेरिकन धनी ने कोलम्बिया विश्वविद्यालय में ४० लाख पुस्तकों के रखने के लिए उपयुक्त एक लाइब्रेरी-भवन बनाने के लिए बहुत-सा धन दिया है। भारतवर्ष के विश्वविद्यालयों में कलकत्ता, पंजाब और मद्रास विश्वविद्यालय के पुस्तकालय विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं। काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय का नव-

निर्मित लाइब्रेरी-भवन भी काफी सुन्दर है। मद्रास विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी के लिए भी एक नूतन भवन बना है और लखनऊ-विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी का नया मकान भी शीघ्र ही बनने जा रहा है।

हस्तलिखित पुस्तकों की लाइब्रेरी:—लिखने के कागज का आविष्कार यद्यपि बहुत दिन पहले ही हो चुका था, किन्तु छापे की कल का आविष्कार हुए अभी बहुत दिन नहीं हुए। मुद्रणकला के आविष्कार के पूर्व हाथ से ही पुस्तक-लेखन की प्रथा थी। जबतक कागज का आविष्कार नहीं हुआ था, लिखने के लिए भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार की सामग्री काम में लाई जाती थी। प्राचीन मिस्र देश में सबसे पहले प्रस्तरफलक का व्यवहार किया जाता था। इसके बाद पेपरिस Papyrus वृक्ष की छाल पर पुस्तक लिखी जाने लगी। इस पेपिरस से ही अंगरेजी पेपर (कागज)शब्द निकला है। प्राचीन एशिया में जली हुई मिट्टी के खपड़े पर ग्रन्थ लिखे जाते थे। प्राचीन चीन में बाँस की चटाई, काष्ठफलक और रेशमी कपड़े पर ग्रन्थ लिखे जाते थे। हमारे देश में तालपत्र और भूर्जपत्र पर पुस्तक लिखने की प्रथा प्रचलित थी। प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों का मूल्य एवं महत्त्व बहुत ज्यादा होता है। ये ग्रन्थ प्राचीन काल की ज्ञानसाधना के निदर्शन-स्वरूप हैं। भारतवर्ष में तो इस प्रकार के बहुत-से हस्तलिखित ग्रन्थों द्वारा प्राचीन साहित्य रूपी बहुमूल्य संपत्ति की रक्षा हुई है। प्राचीन ग्रन्थ किसी भी पुस्तकालय के लिए बहुमूल्य संपत्ति समझी जाती है और प्रत्येक बड़े बड़े पुस्तकालय में इस प्रकार की हस्तलिखित बहुमूल्य पोथियों का यत्नपूर्वक संग्रह किया जाता है। ब्रिटिश म्यूजियम लाइब्रेरी, पेरिस लाइब्रेरी आदि पुस्तकालयों में देश-विदेश के बहुत-से बहुमूल्य हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह किया गया है। इटली में पोप की भेटिकन-लाइब्रेरी हस्तलिखित पोथियों का एक श्रेष्ठ संग्रहालय है। कहीं-कहीं केवल हस्तलिखितपुस्तकों को लेकर ही लाइब्रेरी स्थापित की गई है। भारतवर्ष में प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों के इस प्रकार के अनेक संग्रहालय हैं जिनमें नेपाल-सरकार की लाइब्रेरी विशेष रूप में उल्लेखनीय है। इस लाइब्रेरी में प्राचीन हस्तलिखित बौद्ध-ग्रन्थों का बहुत बड़ा संग्रह है। राजपूताने के राजाओं के यहाँ भी हस्तलिखित

पोथियों का अच्छा संग्रह मिलता है। गुजरात-प्रान्त के पाटन का जैन-भाण्डार और तंजोर का सरस्वती-भाण्डार बहुत-से मूल्यवान हस्तलिखित ग्रन्थों से पूर्ण है। बड़ौदा के ओरियण्टल इन्सटीच्यूट और मद्रास की सरकारी लाइब्रेरी में संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों का श्रेष्ठ संग्रह है। पटना की खुदाबक्स लाइब्रेरी में अरबी और फारसी के बहुत-से बहुमूल्य हस्तलिखित ग्रन्थ सुरक्षित हैं, जो मुस्लिम-सभ्यता के निदर्शन-स्वरूप हैं। इस पुस्तकालय में अन्यान्य विषयों के भी बहुत-से ग्रन्थ पाए जाते हैं। मुसलमान-सभ्यता के इतिहास में हस्तलेखनकौशल (Calligraphy) का विशेष स्थान है। कालक्रम से इस कला का उच्चतम विकास हुआ था। खुदाबक्स लाइब्रेरी में हस्तलिखित पोथियों का जो संग्रह है उससे हमे हस्तलेखन-कला का सुन्दर परिचय मिलता है। ये सब ग्रन्थ बड़ी ही सावधानी के साथ बहुत सुन्दर अक्षरों में लिखित हैं। सुन्दर लता-पत्र और चित्र द्वारा इन्हें अलंकृत किया गया है। कलकत्ता इम्पीरियल लाइब्रेरी के अन्तर्गत बुहर लाइब्रेरी में भी फारसी और अरबी के अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ संग्रहीत हैं। नवाब मीरजाफर के मीरमुंशी मुंशी सैयद सदरुद्दीन ने इस लाइब्रेरी का सूत्रपात किया था। उनके परपोते ने इस लाइब्रेरी के आकार-प्रकार में वृद्धि करके १९०४ ई० में भारत-सरकार को सौंप दिया। कलकत्ते की 'वंग-साहित्य परिषद्' में भी कुछ हस्तलिखित ग्रन्थ मौजूद हैं।

महिला-लाइब्रेरी—जिन सब देशों में पर्दे का रिवाज नहीं है और स्त्रियाँ स्वच्छन्दतापूर्वक पुरुषों के साथ मिलजुल सकती हैं वहाँ स्त्रियों के लिए पृथक् लाइब्रेरी की जरूरत महसूस नहीं की जाती; कारण वहाँ शिक्षिता महिलाएँ पब्लिक लाइब्रेरी में जाकर पढ़-लिख सकती हैं। किन्तु जिन देशों में पर्दे का सख्त रिवाज है और स्त्री-स्वाधीनता नहीं है वहाँ महिलाओं के लिए पृथक् लाइब्रेरी की आवश्यकता महसूस की जाती है। इसलिए हमारे देश में महिलाओं के लिए स्वतंत्र पुस्तकालयों की स्थापना वाञ्छनीय है। इन पुस्तकालयों में अवकाश के समय महिलाएँ अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ कर अपनी मानसिक उन्नति कर सकती हैं और इसका परिणाम समाज के लिए बड़ा ही मंगलजनक सिद्ध हो सकता है। महिला-लाइब्रेरियन की

देखरेख में चुने हुए श्रेष्ठ ग्रन्थों का पुस्तकालय स्थापित होने पर केवल महिलाओं के लिये वहाँ पढ़ने-लिखने और ज्ञानार्जन करने की सुविधा ही नहीं होगी, बल्कि लाइब्रेरी-भवन उनके लिए सामाजिक मिलन का केन्द्र भी बन जायगा जहाँ परस्पर उनमें विचारों का आदान-प्रदान हो सकेगा। भारतवर्ष में लाइब्रेरी-आन्दोलन के प्रवर्त्तक सयाजी राव गायकवाड़ ने सबसे पहले बड़ौदा में महिला-पुस्तकालय की स्थापना की थी। यह पुस्तकालय एक महिला की देख-रेख में चल रहा है। बड़ौदा की शिक्षिता महिलाएँ इस पुस्तकालय में जाकर पुस्तक तथा पत्र-पत्रिकाओं का पाठ करती हैं। इस पुस्तकालय से महिलाओं के पढ़ने के लिए प्रतिवर्ष प्रायः २५ हजार पुस्तिकाएँ वितरित की जाती हैं। महिला लाइब्रेरियन बीच-बीच में महिलाओं के क्लब में जाकर भी पुस्तकें दे आती हैं। बैंगलोर-पब्लिक-लाइब्रेरी से भी साइकिल पर चढ़नेवाले अर्दली द्वारा महिलाओं के घर-घर पुस्तक पहुँचाने की व्यवस्था है। इस लाइब्रेरी के तीन सौ से अधिक महिला सदस्य हैं। कलकत्ते की इम्पीरियल लाइब्रेरी में भी महिलाओं के पढ़ने के लिए एक स्वतंत्र कमरा निर्दिष्ट है।

बच्चों की लाइब्रेरी—बच्चे ही समाज के भविष्य के आशास्थल होते हैं। जो आज बच्चे हैं वे ही कल युवक बनकर कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण होंगे और फिर कालक्रम से देश एवं समाज का नेतृत्व करेंगे। इसलिये सब देशों में बच्चों को समुचित शिक्षा देने के लिये नाना प्रकार के उपाय काम में लाए जाते हैं। बच्चों के मन में लड़कपन से ही यह धारणा जम जानी चाहिये कि स्कूल की पाठ्य पुस्तकों में वे जो कुछ पढ़ते और सीखते हैं उससे बाहर भी उनके लिये सीखने के बहुत-से विषय हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि स्कूल के छोटे-छोटे लड़कों को भी कम उम्र से ही पुस्तकालय का व्यवहार करना सिखलाया जाय। सर्वसाधारण के लिए जो पुस्तकालय होते हैं उनमें छोटे-छोटे लड़कों के लिए उपयोगी पुस्तकों की संख्या बहुत कम होती है और इन सब पुस्तकालयों का वातावरण ऐसा नहीं होता कि लड़के निःसंकोच भाव से उनमें जा सकें और उनमें पुस्तकों या पत्र-पत्रिकाओं के पढ़ने की दिलचस्पी पैदा हो। इसलिये बच्चों के लिये पृथक् पुस्तकालय स्थापित होने की आवश्यकता है।

यूरोप और अमेरिका में सब जगह जहाँ-जहाँ सार्वजनिक पुस्तकालय हैं उनके साथ बच्चों का पुस्तकालय भी सम्बद्ध रहता है। इस विषय में अमेरिका ही सारे संसार का पथ-प्रदर्शक है। सन् १६१७ ई० से इंगलैण्ड में वहाँ की लाइब्रेरी एसोसिएशन की चेष्टा से इस संबन्ध में व्यापक आन्दोलन आरम्भ हुआ है।

इस प्रकार के पुस्तकालयों का उद्देश्य होता है बच्चों के मन में पढ़ने की दिलचस्पी पैदा करना और उन्हें रुचि के अनुकूल पुस्तकें मिल सकें इसकी व्यवस्था करना। बचपन में ही यदि पुस्तक पढ़ने की आकांक्षा उत्पन्न हो जाय तो फिर भावी जीवन में यह आकांक्षा अभ्यास के रूप में परिणत हो जायगी और पुस्तकालय के प्रति एक प्रकार का सहज आकर्षण और निजी भाव मालूम होने लगेगा। बच्चों के पुस्तकालय में जो पुस्तकें रक्खी जायँ वे सोच-समझकर निर्वाचित की गयी हों इस बात की ओर सबसे पहले ध्यान देने की आवश्यकता है। यूरोप और अमेरिका में लाइब्रेरी के परिचालन में निपुण और बच्चों के मनोविज्ञान के संबन्ध में विशेषज्ञ व्यक्तियों को ही बच्चों की लाइब्रेरी का भार दिया जाता है। इस प्रकार के व्यक्तियों में बच्चों के मन को प्रभावित करने की क्षमता अवश्य होनी चाहिये। इसलिये साधारणतः महिलाओं को ही शिशु-विभाग का भार दिया जाता है।

इसके सिवा नाना उपायों से लाइब्रेरी भवन को लड़कों के लिए आकर्षक बनाने की चेष्टा की जाती है। उसे सुन्दर चित्रों से सुशोभित किया जाता है और वहाँ चित्र, सचित्र पुस्तक और खेलने के साज सरंजाम रखे जाते हैं। कहानियाँ सुनाकर भी बच्चों का मन बहलाया जाता है। वायस्कोप के चित्र दिखाने का भी प्रबन्ध किया जाता है ताकि बच्चे उन्हें देखकर ज्ञान के साथ-साथ आनन्द भी प्राप्त कर सकें।

भारतवर्ष में सबसे पहले बड़ौदे में बच्चों के लिए पुस्तकालय स्थापित हुआ था। बड़ौदे की सेन्ट्रल लाइब्रेरी का एक सुसज्जित और स्वतंत्र हाल, जिसमें रोशनी खूब अच्छी तरह प्रवेश कर सके, बच्चों के लिये निर्दिष्ट कर दिया गया है। यह लाइब्रेरी बच्चों के लिये काफी आकर्षक

बन गयी है। हमारे देश के भी किसी-किसी पुस्तकालय में बच्चों के लिये स्वतंत्र पाठ की व्यवस्था की गयी है। किन्तु इस व्यवस्था को अभी और भी व्यापक बनाने की आवश्यकता है।

भ्रमणशील लाइब्रेरीः—वर्तमान युग में सभ्यता एवं संस्कृति का केन्द्र नगर बन रहा है। सभ्यता एवं संस्कृति के जो कुछ देन और सुख-सुविधायें हैं उन सबसे नगरवासी ही लाभ उठा रहे हैं; ग्रामवासी इनसे अधिकांश में वंचित ही रहा करते हैं। स्कूल, कालेज, पुस्तकालय आदि शहरों में ही स्थापित होते हैं। किन्तु शिक्षा-प्रचार के कारण ग्रामवासियों में भी पढ़ने की रुचि दिन-दिन बढ़ रही है। इसलिये जो लोग दूर ग्रामों में बसते हैं उनके पढ़ने की आकांक्षा को तृप्त करने के लिए ही भ्रमणशील पुस्तकालयों का जन्म हुआ है। अमेरिका में मोटरभेन पर लादकर ग्राम-ग्राम में पुस्तकें भेज दी जाती हैं। जो लोग खेती करने के लिए खेत-खलिहानों में डेरा डाले रहते हैं उनके लिए भी इस उपाय से पढ़ने का प्रबन्ध हो जाता है। किसी स्थान में मेला लगने या प्रदर्शनी खुलने से वहाँ भी एक गाड़ी पुस्तकें भेज दी जाती हैं। इससे सब लोगों की दृष्टि सहज ही इस प्रकार के चलता-फिरता पुस्तकालय की ओर आकृष्ट हो जाती है। हनलूलू की पब्लिक लाइब्रेरी से वायुयान द्वारा प्रशान्त महासागर के कई द्वीपों में पुस्तकें भेजी जाती हैं।

हमारे देश में बड़ौदा में भ्रमणशील पुस्तकालयों द्वारा ग्राम-ग्राम में पुस्तकें भेजने की सुन्दर व्यवस्था है। बड़ौदे की सेन्ट्रल लाइब्रेरी से लकड़ी के बक्सों में पुस्तकें भरकर लोगों के पढ़ने के लिए विभिन्न ग्रामों में भेज दी जाती हैं। किसी ग्राम के पाठक जब एक बक्स की पुस्तकें पढ़ लेते हैं तो उन्हें फिर नयी पुस्तकों का दूसरा बक्स भेजा जाता है। इस प्रकार की व्यवस्था को ही चलता-फिरता पुस्तकालय कहते हैं। बड़ौदे की लाइब्रेरी में इस प्रकार के साढ़े पाँच सौ बक्स और गाँवों में भेजने के उपयुक्त २२ हजार पुस्तकें हैं। बक्सों को गाँवों में भेजने और फिर वहाँ से मँगाने का खर्च भी बड़ौदा-सरकार अपने पास से करती है। बड़ौदा की देखादेखी मैसूर में भी इस प्रकार के पुस्तकालयों की

व्यवस्था की गयी है। संयुक्त-प्रान्त और मद्रास में भी यह प्रथा प्रचलित हो रही है। अन्य प्रान्तों में भी चलता-फिरता पुस्तकालय जारी करने की कुछ-कुछ चेष्टा देखी जा रही है। इस देश के अधिकांश लोग ग्रामों में रहते हैं और वे शिक्षा के प्रकाश से वञ्चित हैं। इसलिये हमारे देश में इस प्रकार के पुस्तकालयों का व्यापक रूप में प्रचार होना और भी वाञ्छनीय है।

अस्पताल-लाइब्रेरी:—सब श्रेणी के पाठकों को उनकी रुचि के अनुकूल पढ़ने के लिए पुस्तकें मिलें, पुस्तकालय-आन्दोलन का यह एक मौलिक सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार ही अस्पताल के रोगियों के लिये भी पुस्तकालय स्थापित करने की प्रथा जारी की गयी है। रोगियों के लिये पुस्तकालय वर्तमान युग में अस्पतालों का एक आवश्यक अंग समझा जाता है। अस्पतालों में जो रोगी रहते हैं, उनके लिये कोई खास काम करने को नहीं होता। साथी-संगी भी वहाँ मन बहलाने के लिए नहीं रहते हैं। इसलिए समय काटना दूभर हो जाता है। अस्पताल के कमरे में अवरुद्ध रहते-रहते मन-प्राण व्याकुल हो उठते हैं। उस समय अस्पताल से निकल कर बाहर जाने या परिचित व्यक्तियों के साथ वार्तालाप करने की इच्छा बड़ी प्रबल होती है। ऐसी स्थिति में अस्पताल के रोगियों को यदि पढ़ने के लिए पुस्तकें मिलें तो उनके निःसंग जीवन का कष्ट बहुत-कुछ कम हो जा सकता है। पुस्तकों को पढ़कर वे अपने निराश जीवन में सान्त्वना प्राप्त कर सकते हैं। रोगजन्य दुःख-कष्ट को आनन्दपूर्वक सहन करने की उनमें क्षमता उत्पन्न हो सकती है। अनेक समय ऐसा देखा गया है कि किसी-किसी मानसिक व्याधि के रोगियों को अच्छे ग्रन्थ के पाठ से बहुत लाभ हुआ है। किन्तु रोगियों के लिये जो पुस्तकालय स्थापित हों उनमें पुस्तकों के निर्वाचन में विशेष सतर्कता का प्रयोजन है। इस संबन्ध में चिकित्सकों की सलाह लेनी आवश्यक है। हमारे देश में भी बड़े-बड़े अस्पतालों के साथ पुस्तकालयों का होना आवश्यक है।

जेल-लाइब्रेरी:—जेलों के संबन्ध में इस समय अनेक प्रकार के सुधार हो रहे हैं। कैदियों के प्रति जेल में किस प्रकार का व्यवहार किया जाय

इस विषय में पहले जो धारणा थी उस धारणा में अब आमूल परिवर्तन हो गया है। अब कैदियों को जेल में बन्द रखने का उद्देश्य यह नहीं समझा जाता कि उन्हें उनके अपराध के लिये दण्ड दिया जाता है, बल्कि यह कि उनके चरित्र में सुधार हो। खासकर कम उम्र के अपराधी और नये अपराधियों के प्रति यह नीति विशेष रूप से काम में लायी जाती है। जितने अपराधी होते हैं उनमें सब स्वभाव से ही अपराधी हों ऐसी बात नहीं है। बहुत-से प्रलोभन में पड़कर या दुःख, दारिद्र्य अथवा अभावजनित कष्ट के कारण अपराध कर बैठते हैं। इनके चरित्र में सुधार हो, ये फिर कुमार्ग पर पाँव नहीं रखें और जेल से निकलने पर समाज में स्थान प्राप्त कर सकें इस ओर जेल के अधिकारियों का ध्यान रहना आवश्यक है। इसलिये जेल में उन्हें अनुकूल वातावरण में रखना आवश्यक है। इस प्रकार के अनुकूल वातावरण की सृष्टि में जेल लाइब्रेरी बहुत-कुछ सहायक हो सकती है। इसके सिवा जेल में ऐसे भी कैदी होते हैं जो साधारण श्रेणी के कैदियों से भिन्न-प्रकृति के होते हैं। राजनीतिक कारणों से या अन्य कारणों से उन्हें कैदखाने में अवरुद्ध रखा जाता है। इस श्रेणी के कैदियों में अधिकांश उच्च शिक्षित अथवा साधारणतया शिक्षित होते हैं। उनके जेल-जीवन के दुःख-भार को हल्का करने और मानसिक स्वास्थ्य को कायम रखने के लिए यह आवश्यक है कि जेल की लाइब्रेरी से उन्हें पुस्तकें पढ़ने को मिलें। इसलिये जेल-लाइब्रेरी का होना बहुत ही आवश्यक है। हमारे देश के जेलखानों में भी कुछ पुस्तकें रखी जाती हैं किन्तु उनकी संख्या बहुत कम होती है और पुस्तकों का चुनाव भी अच्छा नहीं होता। जेल-लाइब्रेरी में सुधार होना अत्यन्त आवश्यक है। यह स्मरण रखना चाहिये कि विश्व-साहित्य के कितने ही अनमोल ग्रन्थ जेल में ही रचित हुए थे। उदाहरण के लिये बनियन के "Pilgrim's Progress" और लोकमान्य तिलक के "गीतारहस्य" के नाम लिए जा सकते हैं।

नाविकों की लाइब्रेरी:-जो लोग समुद्र में जहाजों पर काम करते हैं उनका सारा जीवन इस रूप में ही व्यतीत हो जाता है। असीम सागर के वक्षःस्थल पर विचरण करने में ही उनके जीवन का अधिकांश समय कटता है।

स्थल के साथ उनका सम्बन्ध बहुत कम ही होने पाता है। उनके सीमाबद्ध जीवन में किसी प्रकार की विचित्रता या विविधता नहीं होती। मुक्त जीवन के आनन्द से वे वंचित रहते हैं। इस लिए ही नाविकों के लिये बड़े-बड़े जहाजों पर पुस्तकालय की व्यवस्था की गयी है, ताकि वे जीवन में विचित्रता एवं विविधता का आनन्द ले सकें और स्थल, गगन के साथ उनका परिचय बढ़े।

अन्धों की लाइब्रेरी—वर्तमान युग में शिक्षा का विस्तार ऐसे लोगों में भी हो रहा है जो गूंगे, बहरे या अन्धे हैं। इनके लिये पृथक् विद्यलय भी स्थापित हो चुके हैं। इस प्रकार के लोगों के जीवन को सफल करने की चेष्टा समाज-सेवा का श्रेष्ठ आदर्श माना जाता है। यूरोप और अमेरिका में अन्धों के लिए केवल विद्यालय ही स्थापित नहीं हुए हैं, बल्कि उनके लिये विशेष रूप में पुस्तकालय स्थापित करने की भी व्यवस्था की गयी है। अन्धों को हाथ द्वारा स्पर्श करके ही अक्षर-ज्ञान कराया जाता है। आंखों से तो वे पढ़-लिख सकते नहीं। उनके लिए खास तौर से एक वर्णमाला तैयार की गयी है। लोनिस ब्रेइल नामक एक फरासीसी अंधा मनुष्य ने इस वर्णमाला का आविष्कार किया थी। उसी के नाम के अनुसार इस वर्णमाला को ब्रेइल अक्षर कहते है। ब्रेइल जन्म से ही अंधा नहीं था। उसके पिता को चमड़े की एक दूकान थी। इसी दूकान पर एक दिन ब्रेइल चमड़ा में छेद करने के एक यंत्र से खेल रहा था, जब कि उससे उसकी आंख में चोट लगी और वह अंधा हो गया। इसी अवस्था में सोचते-सोचते उसने उक्त वर्णमाला का आविष्कार किया। क्रमश: उसके अक्षर संसार के सब देशों में अंधों के स्कूल में प्रचलित हुए और इन अक्षरों की सहायता से कई पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं। ये पुस्तकें देखने में साधारण पुस्तकों के समान ही होती हैं किन्तु आकार और वजन में बड़ी और भारी होती हैं और एक पुस्तक कई खंडों में प्रकाशित होती हैं। बाइबिल ३८ खंडों में संपूर्ण प्रकाशित हुई है। इंगलैण्ड में पहले पहल १८२७ ई० में अन्धों के लिये पुस्तक प्रकाशित हुई थी।

इस समय यूरोप और अमेरिका के प्रत्येक देश में अन्धों के लिए

पुस्तकालय स्थापित हैं । चीन में भी इस ओर ध्यान दिया गया है। १८८२ में इंगलैण्ड में अंधों के लिए एक पुस्तकालय स्थापित हुआ था। इस पुस्तकालय में २ लाख पुस्तकें हैं। मैनचेस्टर में इसकी एक शाखा भी है। अंधों के घर पर पुस्तकालय से पुस्तक भेजने का भी प्रबन्ध किया गया है। इसके बाद अमेरिका में और फिर जर्मनी में अंधों के लिए पुस्तकालय स्थापित हुए। सारे हिन्दुस्तान में अन्धों की संख्या लगभग ६ लाख है। उनकी शिक्षा के लिये दो-चार स्कूल तो हैं किन्तु पुस्तकालय शायद ही कहीं हों।

उद्यान लाइब्रेरी—ऊपर जिन सब पुस्तकालयों का परिचय दिया गया है वे किसी न किसी मकान में स्थापित होते हैं। किन्तु अब ऐसे पुस्तकालयों का परिचय दिया जायगा जो उन्मुक्त स्थान में अवस्थित रहते हैं। इस प्रकार के पुस्तकालयों में पोर्तुगाल के लिसबन नगर की उद्यान-लाइब्रेरी अनूठी है। लिसबन शहर में टिगरू नदी के तट पर पहाड़ के कोने में मिला हुआ एक मनोहर उद्यान है। इस उद्यान के मध्य भाग में रंगबिरंगे फूलों का अनुपम बहार है। उद्यान के एक कोने में एक विशाल देवदारु (Cedar) वृक्ष है जिसकी शाखा-प्रशाखाएँ दूर तक फैली हुई हैं। इस वृक्ष के नीचे एक लाइब्रेरी है और उसकी चारों तरफ कुर्सियाँ सजी हुई रखी हुई हैं। फ्री यूनिवर्सिटी नामक एक शिक्षा-प्रचारक संस्था ने इस लाइब्रेरी के लिए पुस्तक और सामान दिए हैं। इस लाइब्रेरी में एक हजार ग्रन्थ हैं। समय-समय पर पुरानी पुस्तकों के स्थान पर नयी पुस्तकें रखी जाती हैं। नाना विषयों की पुस्तकें इस पुस्तकालय में रखी जाती हैं और समाज की सब श्रेणी के लोग यहाँ आराम से बैठकर पुस्तकें पढ़ते हैं। यह लाइब्रेरी सबेरे दस बजे से संध्या ६ बजे तक खुली रहती है। पहले साल में २५ हजार लोगों ने यहाँ बैठकर पुस्तकें पढ़ी थीं। मद्रास शहर के पार्कों में भी इस प्रकार की व्यवस्था जारी करने की चेष्टा की जा रही है। अन्यान्य नगरों के पार्कों में यदि इस प्रकार के पुस्तकालयों की प्रतिष्ठा की जाय तो सचमुच इससे बड़ा उपकार हो सकता है। *

---

* लेखक की अप्रकाशित पुस्तक का एक अध्याय।

पुस्तकालय-आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास

श्री शि० श० रंगनाथन्, एम०ए०, एल०टी०, एफ०एल०ए०

पुस्तकालय-आन्दोलन का अर्थ यह है कि पुस्तकालयों का एक घना जाल फैला दिया जाय। वे सब एक दूसरे से उसी प्रकार मिले हों जैसे हमारे शरीर के हिस्से मिले हुए हैं। उनका उपयोग अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार सभी कर सकते हों। इसीका नाम पुस्तकालय-आन्दोलन है।

इसके विपरीत यदि पुस्तकालय एक दूसरे से अलग-अलग छितराए हुए हैं और उनकी पुस्तकों का उपयोग खासकर कुछ चुने हुए व्यक्ति ही कर सकते हों, अथवा वे आनेवाली पीढ़ी के लिए अध्ययन सामग्री की केवल रक्षा करते हों तो उन्हें पुस्तकालय-आन्दोलन नहीं कहा जा सकता, चाहे वे कितने ही बड़े हों और उनकी संख्या अत्यन्त अधिक भी क्यों न हो।

पुस्तकालय कोई नई चीज नहीं है। पुराने जमाने में भी पुस्तकालय थे। किन्तु संसार के सभी देशों के लिए पुस्तकालय-आन्दोलन एक नई ही वस्तु है।

पहली शर्त

पुस्तकालय-आन्दोलन के फैलने की पहली शर्त यह है कि पुस्तकों का बहुत बड़ी संख्या में उत्पादन हो। वे संख्या में इतनी अधिक हों कि सभी उनका उपयोग कर सकें। साथ ही वे इतने सस्ते भी हों कि उन्हें सरलता से बदला जा सके। कारण यह है कि उपयोग से ग्रन्थ जीर्ण-शीर्ण अवश्य हो जायँगे और उन पुराने ग्रन्थों को निकाल बाहर कर नए ग्रन्थ जरूर ही खरीदने पड़ेंगे। इस शर्त को पूरा किसने किया? पहले तो धातु के बने चालनीय टाइपों के द्वारा छपने का आविष्कार हुआ और उसके बाद कागज का उत्पादन, टाइप ढालना, टाइपों का जमाना, छपना, छपे हुए फार्मों का इकट्ठा करना तथा जिल्द बनाना इन सब कामों को मशीन के

द्वारा करने का आविष्कार हुआ। इन्हीं मशीन-युग के आविष्कारों ने पहली शर्त को पूरा किया।

किन्तु केवल यह एक ही शर्त पर्याप्त नहीं है। एक दूसरी शर्त भी आवश्यक है। और वह है ज्ञान-सम्बन्धी लोकतन्त्र की सामाजिक जागृति। यद्यपि छपाई का आविष्कार आज से ५०० वर्ष पहले हो चुका था, किन्तु यह सामाजिक जागरण किसी भी देश में सौ वर्ष पहले तक पूरे तौर पर नहीं फैला था। इसलिए पुस्तकालय-आन्दोलन का इतिहास केवल उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यभाग से ही आरम्भ होता है।

ग्रेट ब्रिटेन

इस सम्बन्ध में ग्रेटब्रिटेन देश अगुआ है। १८२६ ई० में ब्रौघम तथा बर्कबेक द्वारा 'सोसाइटी फार दि डिफ्यूजन ऑफ नॉलेज' (ज्ञान-प्रसार-सभा) स्थापित की गई। पुस्तकालय-आन्दोलन के लिए आवश्यक सामाजिक जागृति का यह सर्वप्रथम स्पष्ट चिह्न था। 'उपयोगी ज्ञान मात्र में प्राथमिक ग्रन्थों की रचना, प्रकाशन तथा वितरण—इन सब बातों को प्रश्रय देना' ही सभा का उद्देश्य घोषित किया गया था।

ब्रिटिश म्यूजियम के पुस्तकाध्यक्ष एडवर्ड एडवर्ड्स ने उस समय विद्यमान सब पुस्तकालयों की जाँच की और पुस्तकालय-आन्दोलन चलाने के सुझाव उपस्थित किए। इसका परिणाम यह हुआ कि श्रीइवार्ट की प्रेरणा से १८५० में प्रथम लाइब्रेरी-ऐक्ट पास किया गया। इस ऐक्ट के द्वारा म्युनिसिपैलिटियों को पुस्तकालय स्थापित करने का अधिकार दिया गया। किन्तु तीन दशकों तक उन्नति बहुत धीमी थी। १८७७ ई० में ब्रिटिश लाइब्रेरी असोसिएशन स्थापित किया गया। १८८७ में महारानी विक्टोरिया की स्वर्ण-जयन्ती मनाने के लिए एकत्र किए हुए धन का कुछ भाग पुस्तकालयों की स्थापना के लिए लगाया गया। अब उनकी संख्या १५६ तक पहुँच चुकी थी। इसके बाद के दशक में एण्ड्रू कार्नेगी ने पुस्तकालयों की स्थापना के लिए अपनी अनन्त धनराशि का व्यय करना

आरम्भ किया। परिणाम-स्वरूप १६०६ ई० तक ४२७ पुस्तकालय स्थापित हो चुके थे।

१६१७ ई० में ऑक्सफोर्ड के प्रोफेसर एडमूस ने पुस्तकालय-अन्दोलन की उन्नति की जाँच-पड़ताल की और उन्होंने यह पाया कि ग्रामीण प्रदेशों की उपेक्षा की गई है। इसका फल यह हुआ कि १६१६ का लाइब्रेरी-ऐक्ट पास किया गया। इसके द्वारा जिला बोर्डों को यह अधिकार दिया गया कि वे ग्राम-पुस्तकालयों की भी स्थपना करें और मोटर-गाड़ियों के द्वारा गाँवों में ग्रन्थों को पहुँचाएँ। 'कार्नेगी युनाइटेड किंग्डम ट्रस्ट' द्वारा दी हुई सहायताओं के द्वारा इस उद्योग को खूब ही आगे बढ़ाया गया। इस समय प्रायः प्रत्येक जिला-बोर्ड द्वारा एक-न-एक सक्रिय पुस्तकालय चलाया जा रहा है।

इन सब पुस्तकालयों की ग्रन्थ-सामग्रियों को एक सूत्र में बाँधने के लिए तथा अन्तिम संग्रहालय के रूप में कार्य करने के लिए 'कार्नेगी युनाइटेड किंग्डम ट्रस्ट' की सहायता से लन्दन में 'राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय' की स्थापना की गई। १६४२ ई० में श्री मेक कालविन ने पुस्तकालय की जाँच की और उन्होंने यह निर्णय किया कि देश में उस समय तक पुस्तकालय की संख्या पर्याप्त मात्रा में बढ़ चुकी थी और अब केवल यही आवश्यक था कि पुस्तकों के द्वारा अधिक से अधिक योग्य रीति से जनता की सेवा की जाय।

संयुक्त राष्ट्र—अमेरिका

अमेरिका के पुस्तकालय-आन्दोलन-इतिहास में १८७६ ई० एक महत्त्वपूर्ण वर्ष था। इसी वर्ष अमेरिकन लाइब्रेरी असोसिएशन की स्थापना की गई थी। इसके प्रमुख प्रवर्तक थे श्री मेल विल ड्यूई। वे आधुनिक पुस्तकालय-आन्दोलन के जनक माने जाते हैं। उन्होंने असोसिएशन का उद्देश्य यह घोषित किया कि 'अल्पतम व्यय में अधिकतम लोगों को श्रेष्ठतम अध्ययन' का अवसर दिया जाय। इस असोसिएशन की सदस्य-संख्या १८७६ ई० में केवल १०३ थी, किन्तु आज वह २०,००० तक पहुँच चुकी है।

इस देश में भी अनेक नगरों में पुस्तकालय बनाने के लिए आर्थिक सहायताएँ देकर एण्ड्रू कार्नेगी ने पुस्तकालय-आन्दोलन के लिए असाधारण प्रेरणा दी। १६२५ में एक जाँच की गई थी और उससे यह मालूम पड़ा था कि ५६ प्रतिशत जनता पुस्तकालयों से भलीभाँति लाभ ले सकती थीं। किन्तु ४४ प्रतिशत जनता, अर्थात् बचा हुआ भाग ग्रन्थालयों से दूर बसने के कारण उनका लाभ न उठा पाती थीं। इसलिए उनके लिए भी पुस्तकालय-सेवा को सुलभ करने के लिए अनेक उपायों का सहारा लिया जा रहा है। इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए प्रत्येक स्टेट में एक 'लाइब्रेरी-ऐक्ट' बनाया गया है और उसके द्वारा एक 'लाइब्रेरी-कमीशन' नियुक्त कर पुस्तकालयों का एक विस्तृत जाल बिछाने की व्यवस्था की जा रही है।

जापान

१८७२ ई० में 'सम्राट् के आज्ञा-पत्र द्वारा घोषणा की गई:—"अब से यह योजना स्थिर की जा रही है कि शिक्षा को इस प्रकार व्यापक बना दिया जाय कि देश में एक भी गाँव ऐसा न रह जाय जिसमें एक भी कुटुम्ब अशिक्षित रह सके और न एक भी कुटुम्ब ऐसा रह सके जिसमें एक व्यक्ति भी अशिक्षित हो।" इस घोषणा के द्वारा पुस्तकालय-आन्दोलन के लिए अनुकूल वातावरण उपस्थित कर दिया गया। १८६६ ई० में प्रथम 'ग्रन्थालय कानून' के दर्शन हुए। इसके द्वारा नगरों तथा गाँवों को लोक-ग्रन्थालय स्थापित करने के लिए अधिकार दिए गए। १६१२ ई० में जापानी पुस्तकालय-संघ की स्थापना हुई और उसके द्वारा पुस्तकालय-आन्दोलन को पूर्ण उत्साह के साथ आगे बढ़ाया जा रहा है।

स्केण्डेनेवियन देश

नार्वे के शिक्षा-मन्त्रिमण्डल ने एक पुस्तकालय कार्यालय कायम किया है। इसके द्वारा पुस्तकालयों को सहायताएँ बाँटी जाती हैं और पुस्तकालय के सम्बन्ध में सिद्धान्तों का (स्टैण्डर्ड्स) निर्धारण तथा परिपालन करवाया जाता है। इस देश में अनेक चल पुस्तकालय हैं जिनमें एक नाविकों

के लिए है। इस पुस्तकालय के अनेक संग्रह केन्द्र (डिपॉजिट स्टेशन) हैं और वे देश के प्रत्येक बन्दरगाह पर बनाए गए हैं।

स्वीडन में पुस्तकालय-आन्दोलन का श्रीगणेश १९०५ में हुआ था। उस वर्ष पार्लियामेण्ट ने लोक-पुस्तकालय को राज्य-सहायता देने का तथा पुस्तकालय-निर्देशक (डायरेक्टर ऑफ लाइब्रेरीज़) नियुक्त करने का निर्णय किया था। वहाँ आज प्रत्येक ज़िले में ग्राम-पुस्तकालय हैं और अधिकतर नगरों में स्वतन्त्र पुस्तकालय भी हैं।

किन्तु डेनमार्क में पुस्तकालय-आन्दोलन और भी उच्च कोटि पर पहुँचा हुआ है। एकीकरण की पूर्ण योजना से युक्त होना ही उसकी सबसे बड़ी विशेषता है। कोपेनहेगेन में दो बड़े-बड़े राज्य-पुस्तकालय हैं। उनमें एक है रोयल लाइब्रेरी, तथा दूसरा है विश्वविद्यालय-पुस्तकालय। इन दोनों पुस्तकालयों में आपसी समझौते के फलस्वरूप एक तो केवल विज्ञानेतरज्ञान (ह्यूमेनिटीज) सम्बन्धी ग्रन्थों का संग्रह करता है और दूसरा केवल विज्ञान-सम्बन्धी। इन दोनों पुस्तकालयों से ही राष्ट्रीय ग्रन्थालय शृङ्खला का आरम्भ होता है। ये ही ग्रन्थालय उस शृङ्खला का एक छोर कहे जा सकते हैं।

उस शृङ्खला की दूसरी कड़ी के रूप में प्रायः ८० नगर पुस्तकालय-समूह का निर्देश किया जा सकता है। इनमें से २७ पुस्तकालय रेलवे के जंक्शनों पर हैं। वे ग्राम-पुस्तकालयों का भी कार्य करते हैं। उस शृङ्खला की दूसरा छोर देश में चारों ओर फैले हुए ८०० ग्राम-पुस्तकालयों में व्याप्त है। आदान-प्रदान के द्वारा प्रत्येक पाठक के लिए, चाहे वह कहीं भी रहता हो, देश की समस्त ग्रन्थ-सामग्रियों को सुलभ कर दिया गया है। इसके द्वारा एक और भी लाभ यह होता है कि एक ही पुस्तक की अनावश्यक प्रतिलिपियों का संग्रह कर व्यर्थ धन नष्ट नहीं होने दिया जाता। किन्तु इस बात का अवश्य ध्यान रक्खा जाता है कि पाठकों की आवश्यकता की पूर्ति भली भाँति होती रहे। इस अद्भुत एकीकरण का श्रेय १९२० के लाइब्रेरी ऐक्ट को है। इस ऐक्ट के द्वारा पुस्तकालयों का राष्ट्रीयीकरण कर दिया गया और उनकी उन्नति तथा देख-रेख का भार एक

निर्देशक को सौंप दिया गया। साथ ही उन ग्रन्थलयों के संचालन तथा प्रबन्ध का भार म्युनिसपैलिटियों को तथा पेरिस-कौन्सिलों को दे दिया गया।

रूस

रूस में पुस्तकालय-आन्दोलन की अश्चर्यजनक उन्नति हुई है। इसका आविर्भाव अक्टूबर १९१७ की क्रान्ति के बाद ही हुआ था। १९२१ में लेनिन ने 'अखिल रूसी कर्मचारियों की कांग्रेस' में (ऑल रशन कांग्रेस आफ वर्कर्स) लोकशिक्षा के लिए निम्नलिखित घोषणा की—

"आपको यह स्मरण रखना चाहिए कि कोई भी निरक्षर, संस्कृति-हीन राष्ट्र कदापि विजयी नहीं हो सकता। जब तक जनता शिक्षित न बन सकेगी तब तक उनकी आर्थिक उन्नति किसी प्रकार नहीं हो सकती। इतना ही नहीं, न तो वह सहयोग से कार्य कर सकती है और न वह सच्चा राजनीतिक जीवन बना सकती है। शिक्षा एवं ज्ञान के बिना यह सब असम्भव है। यह घोषणा पुस्तकलयों की स्थापना के लिए प्रबल उद्योग का एक संकेत थी। १९२० में जनगणना की गई और यह पाया गया कि जनता का ९८ प्रतिशत भाग निरक्षर था। अतः सबसे पहले यही आवश्यक समझा गया कि निरक्षरता को दूर करने के लिए कुछ केन्द्र स्थापित किए जायँ। साथ ही अध्ययन-भवनों की स्थापना की गई। इन्हें जनता 'लेनिन कॉर्नर' कहा करती थी। इसके अतिरिक्त अनेक स्थावर और जंगम पुस्तकालयों की भी स्थापना हुई।

१९२७ ई० समाप्त भी न हो पाया था कि एक करोड़ जनता पढ़ना और लिखना सीख चुकी थी। उस समय तक स्थावर पुस्तकालय ६४१४ हो चुके थे और जंगम पुस्तकालय ४३४२।

रूस के प्रकाशन-विभाग के अनेक उद्योग हमें यह बतलाते हैं कि १९४८ में स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने पर हमारे भारतीय राष्ट्र को स्वदेश की नवजागृति के लिए क्या करना आवश्यक है। रूस में ग्राम-संवाददाताओं का एक दल स्थापित किया गया था। उनका यह कर्तव्य होता है कि

कृषक जनता को लाभदायक सिद्ध होनेवाले ग्रन्थों की सूचना राज्य-मुद्रण-कार्यालय (स्टेट प्रिंटिंग आफिस) को बराबर देते रहें और यह भी बताते रहें कि किन विषयों के ग्रन्थों की आवश्यकता है।

रूस के विभिन्न ग्रन्थालयों की निम्न तालिका से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि रूस का पुस्तकालय-आन्दोलन कितना सजीव बना दिया गया है:—

अधिकारी	पुस्तकालयों की संख्या	पुस्तकों की संख्या
स्थानीय संस्थाएँ (लोकल बॉडीज)	१७३	२,८२,४६,२५३
गवेषणा-शालाएँ (रिसर्च इन्सटीट्यूट)	२,२३५	३,५८,३६,०८५
विश्वविद्यालय तथा शिल्पशालाएँ	२,१३६	४,८३,६०,६६०
सरकारी विभाग ...	५१२	३०,०३,५७७
दल-संघटन (पार्टी ऑर्गनाइजेशन)	४८४	२०,८८,१३४
ट्रेडयूनियन	१६३	१२,०६,६८६
कृषि-शालाएँ	४८२	२,८१,४२०
अन्य	४,५५४	७४,१४,३७३
	११,३४२	११,६४,४०,७८८

ऊपर जिन पुस्तकालयों का निर्देश किया गया है वे केवल कला-विषयक (टेकनिकल) हैं। सामान्य पुस्तकालय तो लगभग ५६,००० हैं और उनके द्वारा पुस्तकों की सहायता से सामान्य जनता की सेवा की जाती है।

चेकोस्लोवाकिया

चेकोस्लोवाकिया के पुस्तकालय-आन्दोलन के इतिहास से भी हमें उसकी परम उन्नति का स्पष्ट ज्ञान होता है। स्वतन्त्र होते ही उस देश ने अपने उन्नायकों के ये उपदेश-वाक्य स्मरण किए—पेलेकी ने यह उपदेश दिया था—"केवल शिक्षा के द्वारा ही मोक्ष पाया जा सकता है।" उस देश में शिक्षा का केवल यही अर्थ नहीं किया जाता था कि बच्चों को स्कूलों में भर्ती कर दिया जाय, बल्कि शिक्षा जीवन-पर्यन्त व्याप्त रहने वाला एक मुख्य व्यापार मानी जाती थी। इस प्रकार की व्यापक शिक्षा

के लिए निःशुल्क पुस्तकालय की अत्यन्त आवश्यकता थी। यही कारण था कि एक नवीन राष्ट्र की अनेक विकट समस्याओं का सामना करते हुए भी चेकोस्लोवाकिया देश ने १६१६ के लाइब्रेरी ऐक्ट द्वारा नगरों में तथा गाँवों में लोक-पुस्तकालय सेवा को अनिवार्य कर दिया। अत्यन्त छोटी जातियों को इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए दस वर्ष का समय दिया गया था। १६२६ ई० तक पुस्तकालय-सेवा सर्वव्यापक बना दी गई थी।

ऐक्ट की रचना व्यावहारिक बातों का पूर्ण ध्यान रख कर की गई थी। १०,००० से अधिक जनसंख्यावाले नगरों के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया था कि वे कलानिष्णात (ट्रेण्ड) ग्रन्थाध्यक्षों को नियुक्त करें और वर्ष के प्रत्येक दिन पुस्तकालयों को खुला रक्खें। छोटे गाँवों में ग्राम-शिक्षक शिक्षा-विभाग द्वारा वितीर्ण हैंड बुक की सहायता से पुस्तकालय का प्रबन्ध कर सकता था।

स्टेट का दूसरा मनोरञ्जक कार्य यह है कि पुतस्कालयों के उपयोग के लिए योग्य ग्रन्थों का उत्पादन किया जाय। इसकी व्यवस्था 'मेसेरिक इन्स्टीट्यूट' के द्वारा की जाती है। यह संस्था विशिष्ट प्रश्नावलियों को प्रस्तुत करती है और उनके द्वारा पाठकों के मनोविज्ञान का अध्ययन करती है। साथ ही, वह यह भी निरीक्षण करती है कि मुद्रित शब्द का क्या प्रभाव और सामर्थ्य है। इस संस्था का यह भी कार्य है कि छोटे-बड़े सभी लोगों के लिए उपयुक्त ग्रन्थों का प्रबन्ध करे। इसके द्वारा इस प्रकार के ग्रन्थों की सूचियों का प्रकाशन तथा समय-समय पर उनका प्रदर्शन भी किया जाता है।

अन्यान्य देश

पुस्तकालय-आन्दोलन अन्य देशों में उस उन्नत अवस्था को अबतक नहीं पहुँचा है। किन्तु मेक्सिको, दक्षिणी अमेरिकन देश, दक्षिण अफ्रिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, फिनलैण्ड, पोलेण्ड, बलगेरिया और नीदरलैण्ड्स् आदि देशों में पुस्तकालय-आन्दोलन अवश्य ही भारत की अपेक्षा अधिक उच्च अवस्था में है। अरब, फारस, अफगानिस्तान, मिस्र तथा चीन में अभी इसका जन्म भी नहीं हुआ है।

मानतुलाएँ

आज की दुनिया में बसनेवाले हमलोगों का यह कर्तव्य है कि हम योग्य मान-तुलाओं को निश्चित करें और उन्हें कार्य-रूप में परिणत करने का उद्योग करें। यहाँ हमें अनेक विषयों के सम्बन्ध में मान-तुलाओं को निश्चित करना है। हम यहाँ पर विभिन्न देशों में वर्तमान विभिन्न मान-तुलाओं की तालिकाओं को प्रस्तुत कर रहे हैः—

मानतुला १

१. ग्रन्थों की कुल संख्याः—

इंग्लैण्ड	...	२८,०००,०००
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका		६८,०००,०००
बड़ोदा	...	१,६००,०००
मद्रास	....	१,०००,०००
भारत	....	?

मानतुला २

२. प्रति मनुष्य ग्रन्थों की संख्या

नार्वे	...	३
स्वीडन	...	१॥
इंग्लैण्ड	....	आधा
संयुक्तराष्ट्र अमेरिका	...	आधा
बड़ोदा	...	१॥
भारत	...	१/१,००० से भी कम !

मानतुला ३

३. प्रतिवर्ष प्रतिमनुष्य निर्गत होने वाले ग्रन्थों की संख्या

चेकोस्लोवाकिया	...	१८
डेनमार्क	...	५
इंग्लैण्ड	...	४

जर्मनी	...	१॥
बड़ोदा	...	आधा
भारत	...	१/१,००० से भी कम !

मानतुला ४

४. पुस्तकालय-सेवा को अपने निकट सुलभ पा सकने वाली जनता का प्रतिशत:—

इंग्लैण्ड	...	६६	पुस्तकालय-प्रणाली के द्वारा
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका		७३	७,००० पुस्तकालयों के द्वारा
बड़ोदा	...	८३	१,३४७ पुस्तकालयों के द्वारा
भारत	...	१	!

मानतुला ५

५ कर्मचारियों के द्वारा सेवा के मनुष्य—घण्टे

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में पुस्तकालय के द्वारा सेवित कुल जनसंख्या के प्रति १०० व्यक्तियों पर ४० मनुष्य घण्टों की कर्मचारी-सेवा द्वारा पाठकों को सहायता दी जाती है। इनमें से कमसे कम ४० , व्यक्तिगत सेवा के द्वारा पाठकों में तथा ग्रन्थों में सम्बन्ध स्थापित कराने के लिए, पृथक् कर दिए जाते हैं।

मानतुला ६

प्रति मनुष्य वार्षिक व्यय

इंग्लैण्ड	...	१ रुपया
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका		२ रुपये
बड़ोदा	...	१ आना
भारत	...	पाई का न जाने कौन सा-हिस्सा!

निम्न तालिका के द्वारा, न्यूनतम रूप में ली गई अमेरिकन मानतुला का विशद रूप दृष्टिगोचर हो सकता है:—

उन नगरों के लिए जहाँ की जन-संख्या	पुस्तकालयों में सदस्य बनाये जानेवाले लोगों का प्रतिशत
१०,००,००० से अधिक है	२५

२,००,००० और १,००,००० के बीच है	३०
१,००,००० और २,००,००० के बीच है	३५
१०,००० और १,००,००० के बीच है	४०
१०,००० से कम है	५०

नीचे दिए हुए अंक यह बतलाते हैं कि एक अंग्रेजी कस्बे में रहनेवाले लोगों की विभिन्न श्रेणियों में पुस्तकालय-सेवा किस प्रकार गाढ़े रूप से व्याप्त है:—

वर्ग		पाठकों की संख्या
कुल	...	१५,०००
स्त्रियाँ (गृहकार्य)	...	४,०००
व्यापार और व्यवसाय	...	२५०
श्रमिक	...	७००
क्लर्क	...	६००
डाक्टर	...	७१
रात्रि–प्रहरी	...	७१
नर्स (परिचारिकाएँ)	...	७१
दलाल	...	७१
सैनिक	...	७१
छाता बनाने वाले	...	७१
प्रेत–कर्म करानेवाले	...	७१
बस चलानेवाले	...	४७
कसाई	...	३३
पादरी	...	२४
होटल के नौकर	....	२२
रोटी बनानेवाले	...	१३

अन्ध	...	१
विज्ञापन चिपकानेवाले	....	१
चिमनी साफ करनेवाले	...	१

इत्यादि, इत्यादि।

भारत के लिए हम निम्नलिखित मानतुला का प्रस्ताव करेंगे।

जन-संख्या के प्रत्येक मनुष्य के लिए एक ग्रन्थ का संग्रह।

" " " " " " " " निर्गम

" " शतप्रतिशत के लिए पुस्तकालय-सेवा को उनके दरवाजों तक पहुँचाया जाय।

जन-संख्या के प्रति सौ व्यक्तियों के लिए ४० मनुष्य-घंटों के रूप में पुस्तकालय-कर्मचारियों की व्यवस्था की जाय।

प्रतिवर्ष प्रति मनुष्य १४ आने का व्यय किया जाय, जिसमें १२ आने लोक-पुस्तकालयों पर और २ आने अन्य पुस्तकालयों पर खर्च किए जायँ।

१९७७ ई० में भारतीय पुस्तकालय-आन्दोलन

प्राचीन इतिहास का केवल यही उपयोग है कि हम उसके द्वारा यह जान सकें कि हमें भविष्य के लिए क्या आकाङ्क्षाएँ रखनी चाहिये। इसी मात्रा में और इसी रूप में उस इतिहास का प्रयोजन है। यह सर्वथा उपयुक्त है कि हम संसार के पुस्तकालय-आन्दोलन के इस संक्षिप्त इतिहास को भारत के भविष्य की आकाङ्क्षाओं के एक काल्पनिक चित्र को प्रस्तुत करते हुए समाप्त करें:—

यदि भारत में आज ही छोटी माला में श्रीगणेश कर दिया जाय और उच्च लक्ष्य की ओर इस तरह व्यवस्थित रूप से बढ़ा जाय जिससे कि आज से तीस वर्ष बाद, अर्थात् १९७७ में उस लक्ष्य की प्राप्ति की जा सके तो हमें बड़ी ही प्रसन्नता होगी। भारत में १९७७ ई० में पुस्तकालय-आन्दोलन सर्वथा पूर्ण अवस्था में रहेगा। उस समय उसका क्या रूप रहेगा? इसका उत्तर यह है:—

राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय	...	१
प्रान्तीय केन्द्रीय "	...	२४

नगर	केन्द्रीय	"	....	१५४
नगर	शाखा	"	...	
ग्राम	केन्द्रीय	"	...	३२१
ग्राम	शाखा	"	...	

(कस्बों में)

जंगम पुस्तकालय (ट्रेवेलिंग
लायब्रेरी वान्स)
(ऊपर बतलाए हुए ग्रन्थालयों
के लिए)
प्रतिपादन प्रतिष्ठान
(डिलीवरी स्टेशन)
उपरिनिर्दिष्टों के द्वारा सेवित
ग्राम
उपरिनिर्दिष्टों के द्वारा सेवित
ग्रामटिकाएँ,

ऊपर दी हुई तालिका में—

'नगर' शब्द का अर्थ है—जहाँ की जनसंख्या ५०,००० से अधिक है।

'कस्बा' उसे कहते हैं जिसकी जनसंख्या ५,००० और ५०,००० के बीच है।

'ग्राम' उसे कहते हैं जिसकी जनसंख्या १०,००० और ५,००० के बीच है।

'ग्रामटिका' उसे कहते हैं जिसकी जनसंख्या १,००० से कम है।

—:०:—

भारतीय पुस्तकालय-अन्दोलन

श्रीरायमथुराप्रसाद

जब हम सुदूर अतीत की ओर देखते हैं तब हम यह सोचते हैं कि प्राचीन भारत में पुस्तकालय नहीं थे। सचमुच यह उस देश के लिए अजीब-सी बात है जहाँ सदा विद्या का ऊँचा सम्मान रहा है। ऋषियों का ज्ञान-भण्डार और आज तक उसका जीवित रहना देखकर इस बात में विश्वास नहीं होता कि प्राचीन भारत में पुस्तकालय नहीं थे। इसके अतिरिक्त, सिन्ध की घाटी में और बलूचिस्तान में जो खुदाइयाँ हुई हैं उनमें मिली हुई मुहरों पर अंकित अक्षरों से पता चलता है कि २५०० ई० पू० में भी यहाँ लिखने की कला विद्यमान थी। बेबीलोन में मिली हुई कुछ मुहरों पर खुदे हुए अक्षरों से इनकी लिपि की बड़ी समानता है। बेशक इन दोनों देशों की ये मुहरें एक ही समय की हैं। सारे देश में महान् सम्राट् अशोक के जो स्तम्भ और स्तूप पाये जाते हैं उनपर मगध (आधुनिक दक्षिण बिहार) की दो लिपियों में दूसरी शताब्दि ई० पू० में लिखावट हुई थी, वे सम्भवतः ५ शताब्दि पूर्व तैयार किये गए होंगे। इन सारी बातों से पता चलता है कि प्राचीन भारत में लिखने की कला अज्ञात न थी। यथार्थ यह है कि प्राचीन काल में लिखावट राजकीय शिला-लेख, व्यावसायिक कार्य आदि तक ही सीमित थी। वेद और दूसरे साहित्य मौखिक रूप में गुरुओं द्वारा शिष्यों को प्रदान किये गए थे। ऋषि और पण्डित वस्तुतः प्राचीन भारत के जीवित और जंगम पुस्तकालय थे।

पौराणिक काल (१४०० ई० पू० से १००० ई० पू० तक) में विदेह के जनक ने अपने यहाँ विद्वानों को एकत्र करके रक्खा था। इन ऋषियों और पण्डितों के वाक्य ही कर्तव्य, कानून, कला, विज्ञान आदि के बारे में प्रमाण माने जाते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि उस समय भी वर्तमान पुस्तकालयों का वातावरण उपस्थित था। लंका के इतिहास से पता चलता है कि बुद्ध की मृत्यु के बाद उनके शिष्यों ने उनके बहुत-से प्रवचनों तथा

उपदेशों का संकलन त्रिपिटक (सूत्र, विनय और अभिधर्म) के रूप में कर दिया।

आगे चलकर हमें पुस्तकालयों का पता चलता है। बड़े परिश्रम से हस्तलिखित पुस्तकें तैयार की जाती थीं और उन्हें आश्रमों, मन्दिरों तथा मठों या विहारों में रक्खा जाता था। प्रत्येक मठ और मन्दिर में पुस्तकों के संकलन की उत्सुकता तथा प्रवृत्ति उत्पन्न हुई और इस प्रकार भारत में सार्वजनिक पुस्तकालयों का आविर्भाव हुआ। राजाओं और रईसों का कर्तव्य था कि वे हस्तलिखित पुस्तकों की संख्या में वृद्धि कराएँ। पश्चिमी भारत के बलभी-राजाओं के ५६५ ई० के शिलालेख से पता चलता है कि यह कर्तव्य काफी प्रचलित था। किसी पवित्र ग्रन्थ की प्रतिलिपि भक्त जैन लोग कराते थे तो एक खासा अच्छा धन्धा खड़ा हो जाता था।

कनिष्क ने प्रथम शताब्दि में कश्मीर में जो बौद्ध-सम्मेलन कराया था उसमें त्रिपिटक की टीका कराने का निश्चय हुआ। यह सारी टीका ताम्र-पत्रों पर लिखी गई और उसे एक स्तूप के नीचे गड़वाया गया। इस टीका को विभाषा कहते हैं। भारतीय इतिहास का बौद्ध-काल एक प्रबल पुस्तकालय-आन्दोलन का युग था। इसलिए सार्वजनिक पुस्तकालयों के आविर्भाव के प्रश्न को लेकर सारे भारत के प्रान्तों में बिहार का स्थान प्रथम है। अशोक और कनिष्क के संरक्षण में उनकी बड़ी प्रगति हुई। बौद्ध महन्तों का एक प्रमुख कर्तव्य हस्तलिखित पुस्तकों की हस्तलिपि तैयार करना और उनका संरक्षण करना भी था। चीनी बौद्ध-यात्री फाहियान के ग्रन्थ में पुस्तकालय का उल्लेख पहले पहल मिलता है। उसने लिखा है कि महायान-साहित्य की प्राप्ति आधुनिक बिहार की राजधानी पाटलिपुत्र के एक मठ से हुई। यहाँ कुछ हस्तलिखित ग्रन्थ पाये गए थे। आगे चलकर प्रत्येक बिहार सांस्कृतिक पुस्तकालय का केन्द्र बन गया।

उसके बाद गुप्त-काल में नालन्द में संसार के सर्वश्रेष्ठ और सबसे महान् विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। ह्वेनसांग के उल्लेखानुसार वहाँ १०००० विख्यात विद्वान् भिक्खु विद्या-प्रचार में निरत थे। इतिहास कहता है कि नालन्द के एक नौ मंजिले मन्दिर में, जिसका नाम 'रत्नोदधि' था और जिसमें

३०० कमरे थे, नालन्द का विशाल पुस्तकालय स्थापित था। पड़ोस के उदन्तपुरी और विक्रमशिला विश्वविद्यालयों में और भी बड़े पुस्तकालयों की चर्चा मिलती है। इन विश्वविद्यालयों के तो १२०२ ई० तक कायम रहने का पता चलता है। इनमें केवल बौद्ध ही नहीं, बल्कि ब्राह्मण-संस्कृति के भी ग्रन्थ थे। पता चलता है कि नालन्द के साथ ही इन पुस्तकालयों को भी बख्तियार खिलजी के सैनिकों ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। अनेक मुस्लिम लुटेरों ने दूसरे विहारों के पुस्तकालयों का भी संहार कर दिया। गुप्त काल में ब्राह्मण-धर्म का पुनरुज्जीवन होने पर बौद्ध पुस्तकालयों के साथ-साथ मन्दिरों, मठों, गुरुकुलों और पण्डितों के घरों में ब्राह्मण संस्कृति की पुस्तकों के भी अच्छे संग्रह किये गए थे। मन्दिरों में पुस्तक-दान को पुराणों ने पवित्र कर्तव्य कहा है।

बाद को मुसलमानी काल में बहुत-से पण्डित अपने हस्त-लिखित ग्रन्थों की रक्षा करने के लिए उन्हें लेकर नेपाल चले गए। नालन्द के गौरवमय दिनों में तिब्बत और भारत में बड़ा घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित हो गया था। संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद भी तिब्बती भाषा में हुआ था।

प्राचीन पुस्तकालयों की व्यवस्था

पौष्कर-संहिता नामक ग्रन्थ में प्राचीन पुस्तकालयों की व्यवस्था की झलक मिलती है। पुस्तकालय सुन्दर पक्के मकानों में रहते थे। हस्तलिखित पुस्तकें बड़ी सावधानी से कपड़े में लपेटी और बँधी रहती थीं और उन्हें आलमारियों में रक्खा जाता था। पुस्तकालय एक पुस्तकाध्यक्ष की देख-रेख में रहता था। पुस्तकाध्यक्ष विद्वान् होते थे। वे पवित्रता और ब्रह्मचर्य से रहने वाले विद्यार्थियों को शिक्षा भी देते थे। आपको यह मालूम है कि पुस्तकें रखने के लिए धातु की बनी आलमारियों के आविष्कार का श्रेय ब्रिटिश संग्रहालय के विशाल वाचनालय के निर्माता तथा महान् पुस्तकाध्यक्ष सर ऐन्थोनी पैनिज्जी को दिया जाता है। लेकिन आश्चर्य की बात है की प्राचीन काल में भी लोगों को यह तरीका मालूम था।

प्राचीन काल के पुस्तकालयों की एक झलक एक कन्नड़ शिलालेख

से मिलती है। यह शिलालेख हाल में ही मिला है और हैदराबाद आर्केलाजिकल सीरिज संख्या ८ में छपा है। यह वाडी के समीप नागाई के एक बड़े मन्दिर में पाया गया है। इस में ११ वीं सदी के एक चालुक्य राजा रामनारायण के एक सेनापति और मंत्री मधुसूदन द्वारा स्थापित एक संस्था था उल्लेख मिलता है। इस संस्था में २५२ विद्यार्थियों की शिक्षा की व्यवस्था थी। ६ अध्यापक और ६ पुस्तकाध्यक्ष इस कालेज में थे। यह बात ध्यान देने की है कि विद्यार्थियों के लिए इतने पुस्तकाध्यक्षों की सेवा आवश्यक थी और इन पुस्तकाध्यक्षों को अध्यापकों के बराबर वेतन दिया जाता था। यह बात काफी प्रचलित है कि अमेरिका में विश्वविद्यालय पुस्तकाध्यक्ष का पद 'डीन अव फैकल्टी' के बराबर और कालेज पुस्तकाध्यक्ष का पद प्रोफेसर के बराबर होता है। साथ ही 'म्युनिसिपल पुस्तकाध्यक्ष का वेतन तथा पद 'स्वास्थ्य-अफसर', शिक्षा-अफसर, चीफ इंजीनियर इत्यादि जिम्मेदार अफसरों के बराबर होता है। यह भारतीयों की दूरदर्शिता का प्रमाण है कि उन्होंने प्राचीन काल में ही पुस्तकाध्यक्षों को उदारता के साथ वेतन और पद प्रदान किया था। आह, आजकल भारतीय पुस्तकालयों और पुस्तकाध्यक्षों की कैसी गई-गुजरी हालत है।

धार के राजा भोज (१२ वीं सदी) का पुस्तकालय ही पहला राजकीय पुस्तकालय है जिसका प्रमाण और उल्लेख मिलता है। राजा भोज स्वयं विख्यात विद्वान् थे। बहुत-सी पुस्तकें उनकी लिखी बताई जाती हैं। जब चालुक्य राजा सिद्धराज ने उनके राज्य को जीत लिया तब उनका राजकीय पुस्तकालय हटाकर चालुक्य राजकीय पुस्तकालय (पाटन) के साथ मिला दिया गया।

जब महमूद गजनवी ने आक्रमण किए तब उसने मन्दिरों का संहार किया और पण्डितों को कत्ल करवाना शुरू किया। उसी समय हिन्दू-सभ्यता के सुनहले युग का अन्त हो गया। बचे हुए पण्डित अपने साहित्यिक संग्रहों के साथ तिब्बत, नेपाल तथा पश्चिम भारत के जैसलमेर इत्यादि बीहड़ रेगिस्तानों में भागकर जा बसे। जब मुसलमान शासक भारत में बसने लगे तो उन्होंने अपनी संस्कृति के अध्ययन को प्रोत्साहन देना आरम्भ

किया। बाद को सम्राट् लोग हिन्दू-ग्रन्थों में भी दिलचस्पी लेने लगे।

गुलाम-वंश के शासन-काल में दिल्ली का महत्त्व बहुत बढ़ गया क्योंकि पुस्तकालयों-साहित्यिक संस्थाओं आदि को सरकारी प्रोत्साहन मिला और उनकी संख्या खूब बढ़ी। राजकुमार, रईस तथा सम्भ्रान्त व्यक्ति कवियों और विद्वानों की रचनाएँ सुनने के लिए एकत्र होते थे। कहा जाता है कि जलालुद्दीन खिलजी ने प्रसिद्ध विद्वान् और कवि अमीर खुसरो को राजकीय पुस्तकालय का पुस्तकाध्यक्ष नियुक्त किया था। अमीर खुसरो को उसने काफी वेतन दिया, कुरान के संरक्षक (महाफिज-ए-कुरान) की उपाधि दी और आगे चलकर दरबार में सम्मान का स्थान दिया। पुस्तकाध्यक्ष को इतना बड़ा सम्मान देने का शायद यह पहला ही उदाहरण है। नौ वर्ष पूर्व रोम के विख्यात धार्मिक पुस्तकालय के पुस्तकाध्यक्ष को पोप चुना गया और वे 'पायस दि एलेवेन' कहलाए।

मुगल-काल से पहले फीरोज तुगलक बहुत बड़ा विद्वान् और विद्वानों का संरक्षक हुआ। वह विदेश से विद्वानों को निमंत्रण देकर बुलवाता था और उन्हें बड़े आदर के साथ रखता था। उनके ठहरने के लिए उसने अपना प्रसिद्ध अंगूर-महल खाली करवा रक्खा था। उसने हिन्दुओं को सरकारी पदों पर नियुक्त किया और लोगों के भीतर हिन्दू-साहित्य में दिलचस्पी पैदा की। नगरकोट के मन्दिर में जब उसे एक अच्छा संस्कृत-पुस्तकालय मिला तो उसने कुछ पुस्तकों का अनुवाद फारसी में करने के लिए विद्वान हिन्दुओं को नियुक्त किया।

मुगल-राज्य की स्थापना के पूर्व बहमनी के राजाओं ने अहमदनगर में एक अच्छे पुस्तकालय का निर्माण किया था। १५वीं सदी में मुहम्मद गवन ने अपनी उदारता से शाही दरियादिली को भी मात कर दिया। वे राजा के मंत्री थे। उनकी कविताएँ आज भी दक्षिण भारत के कुछ पुस्तकालयों में मिलती हैं। उनके पास अपार धन था लेकिन उन्होंने सारा का सारा विद्वानों के संरक्षण में और विद्या की उन्नति में लगा दिया। स्वयं वे फकीर की तरह सादा जीवन व्यतीत करते थे। मरने पर उनके परिवार के पास कोई सम्पत्ति न रह गई। आदिलशाही राजाओं ने भी बीजापुर में

एक अच्छे पुस्तकालय का निर्माण किया था। मुगल-काल के अन्त में सांस्कृतिक संहार भी बहुत हुआ लेकिन फिर भी अभी नेपाल, कश्मीर, मैसूर, जयपुर, जोधपुर, भोपाल, अलवर आदि के नरेशों के पास अच्छे परम्परागत पुस्तकालय हैं। तंजोर के राजाओं की बातें तो अब इतिहास का विषय हो गई हैं लेकिन सौभाग्य से महाराजा सरफोजी के विशाल संग्रहों को मद्रास-सरकार ने सुरक्षित रक्खा है और उन्हें एक निःशुल्क सार्वजनिक पुस्तकालय के रूप में परिणत कर दिया है।

हस्तलिखित पुस्तकों का संरक्षण—पिछली आधी शताब्दि में इस बात की कोशिश प्रान्तीय सरकारों और देशी राज्यों ने की है कि हस्तलिखित पुस्तकों का संरक्षण हो और उनकी सूची तैयार हो क्योंकि ऐसा न होने पर वे नष्ट हो जायँगी। बम्बई-सरकार ने बहुत-से प्रमुख भारतीय तथा यूरोपीय विद्वानों को इस कार्य के लिए नियुक्त किया और इस प्रकार संरक्षित की हुई बहुत-सी पुस्तकें भण्डारकर-प्राच्य-केन्द्र में हैं। हमारी सरकारों तथा देशीराज्यों ने भी इस पथ का अनुसरण किया है और अप्रकाशित पुस्तकों में से अधिक महत्त्वपूर्ण पुस्तकों को प्रान्तीय सरकारें प्रकाशित करवा रही हैं। बड़ोदा, मैसूर, त्रावणकोर आदि राज्यों तथा 'एशियाटिक सोसाइटी अव बंगाल' आदि सांस्कृतिक संस्थाओंने भी इस कार्य को किया है। जैन-समाज ने अपने प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों के संरक्षण में बड़ी सावधानता का परिचय दिया है जिसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। जैसलमेर, पाटन, बड़ोदा, ग्वालियर, अहमदाबाद, काम्बे इत्यादि में स्थित जैन-मन्दिरों में बड़े ही महत्त्वपूर्ण हस्त-लिखित ग्रंथ हैं जिनका परिचय हाल में ही विद्वान्-जगत् को मिला है।

मुगलों के पुस्तकालय

भारत में मुगल-राज्य का संस्थापक और प्रथम मुगल सम्राट् बाबर स्वयं बहुत बड़ा विद्वान् और लेखक था। बाबरनामा के रूप में उसने एक श्रेष्ठ आत्मकथा लिख छोड़ी है जिसे संसार की सर्वश्रेष्ठ आत्मकथाओं में स्थान मिल सकता है। उसमें चित्रों के भी अच्छे नमूने हैं। मुगल-काल की विशेषताओं में एक विशेषता यह भी है कि उसने ही पहले पहल किताबों में

लिखे विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले चित्रों के भी किताबों के साथ प्रकाशन की परिपाटी चलाई। उसका बेटा और उत्तराधिकारी हुमायूँ अपनी अनेक लड़ाइयों के समय युद्ध-भूमि में भी चुनी हुई पुस्तकों का पुस्तकालय अपने साथ ले जाता था। इस प्रकार पर्यटनशील पुस्तकालयों के प्राप्त इतिहासों में हम इसे पहला पर्यटनशील पुस्तकालय कह सकते हैं। इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने की है कि नेपोलियन भी छोटे-छोटे आकार की पुस्तकों का पुस्तकालय अपने साथ युद्धक्षेत्र में ले जाता था। उसने अपने ऐश-महल को ही पुस्तकालय-भवन के रूप में परिणत कर दिया था और उसीमें उसकी मृत्यु भी हुई।

अकबर महान् बड़ा धुनी पुस्तक-संग्रहकर्त्ता था। उसने सिर्फ अपने जीते हुए गुजराती राजा का ही नहीं बल्कि अपने मंत्री फैजी का भी पुस्तकालय खरीद लिया। उसके समय में पुस्तकों से सम्बन्ध रखनेवाले चित्रों के भी प्रकाशन की परिपाटी खूब चली। पुस्तकालयों के भवनों की सुन्दरता और श्रेष्ठता पर भी पूरा ध्यान दिया जाता था।

मुगल बादशाह अपने पूर्वजों के पुस्तकालयों की रक्षा और वृद्धि करने में बड़ा गौरव मानते थे।

लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि ईरानी लुटेरे नादिरशाह ने उनके विशाल पुस्तकालयों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इसी प्रकार सन् १७९९ ई० में टीपू सुलतान का शानदार पुस्तकालय सिरिंगापट्टन के तूफानी आक्रमण के साथ नष्ट कर दिया गया और उसके ३५ वर्ष बाद लखनऊ के विजित होने पर अवधनरेश के पुस्तकालय का भी ऐसा ही दुर्भाग्य रहा।

खुदाबक्स

भारतीय पुस्तकालयों के निर्माण में केवल राजकीय शक्ति और साधन ही नहीं लगे हैं, बल्कि साधनहीन और एकाकी व्यक्तियों ने भी अपनी अद्भुत लगन, कर्तव्यनिष्ठा और तपस्या के द्वारा अद्भुत कार्य किया है। १९ वीं सदी के विद्वान मौलवी खुदाबक्स ने अपने अत्यन्त अल्प साधनों से अपने जीवन-काल में ही बाँकीपुर के खुदाबक्स सार्वजनिक

पुस्तकालय की स्थापना की। यह पुस्तकालय मुसलिम-साहित्य का एक प्रधान केन्द्र है जो संसार के किसी भी बड़े मुसलिम पुस्तकालय से मुकाबला कर सकता है।

आधुनिक पुस्तकालय-आन्दोलन

आधुनिक पुस्तकालय-आन्दोलन का जन्म इस प्राचीन भावना से हुआ कि पुस्तकों को सुरक्षित रखना चाहिये। आधुनिक काल में इस भावना का उदय हुआ कि पुस्तकों का अधिक से अधिक उपयोग होना चाहिये और अधिक से अधिक लोगों द्वारा होना चहिये। अब पुस्तकों की उपयोगिता थोड़े-से विद्वानों के लिए ही नहीं है बल्कि सारी-जनता के लिए है। इसमें जाति-पाँति धर्म, वर्ग, सम्प्रदाय, वर्ण आदि का कोई भेदभाव या प्रतिबन्ध नहीं है। आधुनिक पुस्तकालय-आन्दोलन पूर्णतः जनतांत्रिक है। पाठक पुस्तकों की खोज भले न करें लेकिन पुस्तकें पाठकों की खोज अवश्य करती हैं। वे गाँवों और वीरानों के बीहड़ स्थानों में भी जाकर पाठकों का दरवाजा खटखटाती हैं। पुस्तकालय एक गतिशील शक्ति है। यह उद्योग-धन्धों को प्रगति प्रदान करता है, राष्ट्रीय हित को आगे बढ़ाता है, स्थानीय प्रयत्नों को सफलता प्रदान करता है, व्यक्तियों का विकास करता है और जहाँ भी इसे उचित समर्थन मिलता है वहाँ बहुत बड़ी सामाजिक शक्ति का रूप धारण करता है।

इस आन्दोलन का सूत्रपात संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ और धीरे-धीरे इसका प्रसार यूरोप में भी हो गया। बड़ोदा के गायकवाड़ महाराज ने पाश्चात्य जगत् में इस आन्दोलन की उपयोगिता देखकर अपने राज्य में १६१२ में इसका श्रीगणेश किया। उस समय तक उन्होंने अपने राज्य में शिक्षा को निःशुल्क और अनिवार्य कर दिया था। उन्होंने अमेरिकन पुस्तकाध्यक्ष मि० बौर्डेन को अपने पुस्तकालय-विभाग का अध्यक्ष बनाया। बड़ोदा में केन्द्रीय पुस्तकालय की स्थापना हुई जिसमें महिलाओं और बच्चों के विभाग भी थे। उसके अतिरिक्त उन्होंने जिलों और शहरों में भी पुस्तकालयों की स्थापना की। महत्त्वपूर्ण गाँवों में

भी पुस्तकालय खोले गए और भ्रमणशील पुस्तकालय की पुस्तकें बक्सों में भर-भरकर दूर से दूर तथा बीहड़ से बीहड़ स्थानों में पहुँचाई जाने लगीं जिसमें पढ़ने की रुचि पैदा हो। इस समय बड़ोदा-राज्य में हजार से ऊपर पुस्तकालय और अध्यन-केन्द्र हैं। श्री जे० एस० कुधोलकर सार्वजनिक पुस्तकालयों के संचालक बनाए गए और श्री अमीन शिशु-विभाग के अध्यक्ष हुए। आगे चलकर मैसूर, त्रावणकोर, पुदाकोटिन, इन्दौर तथा भारतीय प्रान्तों ने बड़ोदा का अनुसरण किया।

भारतीय प्रान्तों में पंजाब ही सर्व प्रथम प्रान्त है जिसने पुस्तकालय-आन्दोलन का सूत्रपात किया। पंजाब-विश्वविद्यालय-पुस्तकालय का पुनर्निर्माण करने के लिए १९१६ ई० में अमेरिका से मि० ए०डी० डिकिनसन बुलाये गए। पुस्तकालय-शास्त्र पर उनसे व्याख्यानमाला का सूत्रपात कराया गया। अब भी यह व्याख्यानमाला चलती रही है। पंजाब में पुस्तकालय-आन्दोलन की बड़ी अच्छी प्रगति हुई है। मि० डिकिनसन की पुस्तक 'पंजाब लाइब्रेरी प्राइमर' पुस्तकालय से दिलचस्पी रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को पढ़नी चाहिये। हाल में पंजाब-सरकार ने १६०० ग्राम-पुस्तकालयों की स्थापना की है। वे अपर, लोअर और मिडिल स्कूलों के साथ सम्बद्ध हैं। लेकिन उनसे सिर्फ विद्यार्थी ही लाभ नहीं उठाते बल्कि ग्रामवासियों को भी बड़े पैमाने पर पुस्तकें दी जाती हैं। ये पुस्तकालय जिला-बोर्डों द्वारा संचालित होते हैं और सरकार भी सहायता देती है। पुस्तकाध्यक्षों से जनता में भाषण कराये जाते हैं। उनका काम शिक्षित व्यक्तियों को पुस्तकालय का उपयोग करना भी सिखलाना है। सरकार की ग्राम-समाज-समिति (रूरल कम्युनिटी बोर्ड) इस कार्य के लिए कृषि सहकारिता स्वास्थ्य आदि आवश्यक विषयों से सम्बन्ध रखने वाली अच्छी अच्छी पुस्तकें भी गाँवों को देती है। समिति ही पुस्तकाध्यक्षों का वेतन भी देती है।

१९१८ ई० में भारत-सरकार ने लाहौर में अखिल भारतीय पुस्तकालय-सम्मेलन का आयोजन किया। मि० डिकिनसन ने पंजाब-पुस्तकालय-संघ की स्थापना की। संघ ने कुछ समय तक तो बहुत अच्छी सेवा की

लेकिन मि० डिकिनसन के चले जाने पर वह बहुत समय तक न चल सका। १९२९ के अक्तूबर में उसका फिर से संघटन हुआ और अब तक वह सुचारु रूप से चलता आया। इस संघ की स्थापना का उद्देश्य है पुस्तकालयों की स्थापना और उनके विकास को आगे बढ़ाना, उनकी उपयोगिता में वृद्धि करना और जनता की शिक्षा में उन्हें महत्त्वपूर्ण बनाना। १९३० में संघ ने अंग्रेजी में 'मौडर्न लाइब्रेरियन' के नाम से एक त्रैमासिक पत्र का प्रकाशन भी आरम्भ किया। पुस्तकालय के सम्बन्ध में यह बड़ा ही उपयोगी पत्र है। इस पत्र के दो प्रधान लक्ष्य हैं—पुस्तकाध्यक्षों को यह बताना कि वे अपने देशवासियों के राजनीतिक, सामाजिक और बौद्धिक उत्थान में बहुत बड़ी सेवा कर सकते हैं और पाठकों को यह बताना कि वे पुस्तकों का उपयोग किस प्रकार कर सकते हैं। पंजाब-विश्वविद्यालय में १९१५ से ही पुस्तकालय-शास्त्र की शिक्षा भी दी जाती है। पंजाब-विश्वविद्यालय और कालेजों के पुस्तकालयों का संघटन अत्यन्त आधुनिक ढंग से किया गया है। सार्वजनिक पुस्तकालयों ने भी अच्छी सेवा की है। श्री गंगाराम बिजिनेस ब्यूरो और पुस्तकालय ने नवयुवकों के प्रश्नों पर प्रत्यक्ष रूप में अथवा पत्रव्यवहार द्वारा व्यवसाय तथा आजीविका के सम्बन्ध में परामर्श देकर उनकी बड़ी महत्त्वपूर्ण तथा निःशुल्क सेवा की है। संघ की पुस्तकालय-सेवा-समिति ने भी बड़ी अच्छी सेवा की है। पंजाब-पुस्तकालय-संघ ने पुस्तकालयशास्त्र पर उपयोगी पुस्तिकाओं का भी प्रकाशन किया है।

आन्ध्रदेश में पुस्तकालय-आन्दोलन का सूत्रपात १९१५ में हुआ। श्री एस० वी० नरसिंह शास्त्री ने इस आन्दोलन का संघटन किया। आन्ध्र के पुस्तकालय गाँवों की सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा समस्त उपयोगी प्रगतियों के केन्द्र बन गए। भारतीय पुस्तकालय संघ के लाहौर-सम्मेलन के लिए आन्ध्र ने भी प्रतिनिधि भेजने की अनुमति माँगी लेकिन सरकार ने अनुमति न दी। लाहौर सम्मेलन ने संघ को सिर्फ सरकारी पुस्तकाकयों के संघ का रूप दे दिया। इस पर आन्ध्र के पुस्तकालय-कार्यकर्त्ताओं ने समस्त भारत की सेवा के लिए एक

केन्द्रीय संघ की स्थापना की। श्रीनरसिंह शास्त्री और श्री इयांकी वेंकटरमैया की लगन तथा प्रयत्नों से १९१९ में श्री जे० एस० कुधोलकर (बड़ोदा-राज्य के पुस्तकालय-विभाग के संचालक) की अध्यक्षता में प्रथम अखिल भारतीय पुस्तकालय-सम्मेलन मद्रास में हुआ। इस सम्मेलन के पूर्व आन्ध्र अपने आठ प्रान्तीय सम्मेलन कर चुका था।

इस संघ का मुख्य उद्देश्य था देश के कोने-कोने में विद्या तथा ज्ञान का प्रकाश फैलाना और पुंजीभूत अज्ञान तथा अन्धविश्वास को मिटाना। १९२० में अखिल भारतीय सार्वजनिक-पुस्तकालय-संघ की स्थापना हुई। इसका लक्ष्य हुआ सार्वजनिक (गैरसरकारी) पुस्तकालयों का संघटन करना। इसके वार्षिक सम्मेलन के साथ-साथ अखिल भारतीय पुस्तकालय तथा पत्रपत्रिका-प्रदर्शनी भी हुई जिसका उद्घाटन मद्रास के गवर्नर लार्ड विलिंगडन ने किया। इस संघ का दूसरा सम्मेलन श्री एम० आर० जयकर की अध्यक्षता में १९२३ के दिसम्बर में कोकनद में हुआ। १९२४ की जुलाई से भारतीय-पुस्तकालय-पत्रिका (इण्डिया लाइब्रेरी जर्नल) का प्रकाशन शुरू हुआ। यह पंजाब-पुस्तकालय-संघ के 'मौडर्न लाइब्रेरियन' से छः वर्ष पूर्व ही प्रकाशित हुआ। सार्वजनिक पुस्तकालय-संघ के अगले सम्मेलन बेलगाँव, मद्रास, कलकत्ता, लाहौर, बेजवाड़ा आदि में हुए। इनमें सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन, श्री चित्तरंजन दास, डा० प्रमथनाथ बनर्जी, सर प्रफुल्लचन्द्र राय, डा० मोतीसागर कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर, डा० वी० एस० राम, डा० आर्कहार्ट, चल्लपल्ली के राजा साहब, श्री वामन नायक तथा अनेक अन्य विख्यात सार्वजनिक व्यक्तियों का भी सहयोग प्राप्त हुआ। इस प्रकार पुस्तकालय-आन्दोलन आगे बढ़ा और बंगाल, मद्रास तथा हैदराबाद में प्रान्तीय पुस्तकालय-संघों की स्थापना हुई। इसके पूर्व महाराष्ट्र, पुदाकोट और अन्ध्र में प्रान्तीय संघ स्थापित हो चुके थे जो इस समय तक काफी शक्तिशाली हो गए।

लेकिन १९३१ में जब एशियाई शिक्षा-सम्मेलन हुआ, उस समय दुर्भाग्य से कुछ विच्छिन्नतावादी प्रवृत्तियाँ उत्पन हो गईं और उक्त सम्मेलन के साथ एक पृथक् पुस्तकालय-सेवा-विभाग का जन्म हुआ। एक प्रस्ताव

स्वीकृत किया गया कि अखिल भारतीय पुस्तकालय-संघ प्रांतों में चलने वाले पुस्तकाध्यक्षों के कार्यों को सूत्रबद्ध करे। इस कार्य को सफल बनाने का भार पंजाब के स्वर्गीय श्रीमानचन्द को दिया गया था परन्तु कोई कार्य न हो सका। १९३३ के सितम्बर में कलकत्ता में एक सम्मेलन हुआ जिसका नाम रक्खा गया प्रथम अखिल भारतीय पुस्तकालय-सम्मेलन। लेकिन स्थिति यह है कि उसी वर्ष के अप्रैल में बेजवाड़ा में अष्टम अखिल भारतीय पुस्तकालय-सम्मेलन हो चुका था। ये सम्मेलन समय-समय पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन के साथ-साथ होते थे। कलकत्ता-सम्मेलन का यह कहना था कि अखिल भारतीय सार्वजनिक पुस्तकालय-सम्मेलन से सम्पर्क रखने से कोई लाभ न होगा क्योंकि उसमें इस पेशे से सम्बन्ध न रखनेवाले लोग ही अधिक थे। १९३२ के बड़े दिन के अवसर पर लाहौर में जो अखिल भारतीय शिक्षा-सम्मेलन होनेवाला था उसीके साथ एक अखिल भारतीय पुस्तकालय -सम्मेलन होने को था परन्तु उसी समय लाहौर में संक्रामक रूप से चेचक फैल जाने के कारण वह न हो सका। तब यह पुस्तकालय-सम्मेलन कलकत्ता में १२,१३ और १४ सितम्बर १९३३ को हुआ। इसके अध्यक्ष डा० एस० ओ० टामस और मंत्री डा० यू० एन० ब्रह्मचारी हुए। स्वागत-मंत्री हुए खाँ बहादुर के० एम० असादुल्ला और स्वागत-संरक्षक हुए सर आर० एन० मुखर्जी। भारत-सरकार के शिक्षा-कमिश्नर श्री आर० विलसन ने सम्मेलन का उद्घाटन किया। बहुत बड़े-बड़े सरकारी अफसर, शिक्षाशास्त्री, विद्वान् तथा पुस्तकालय-आन्दोलन से दिलचस्पी रखनेवाले अन्य महानुभाव इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए। भारत-भर से आए हुए करीब दो सौ आदमी शरीक हुए जिनमें सिर्फ ४० ही प्रतिनिधि थे। पटना सिटी के बिहार-हितैषी-पुस्तकालय के प्रतिनिधि के रूप में इन पंक्तियों का लेखक और श्री विनयकृष्ण रोहतगी शामिल हुए। पटना-कालेज के पुस्तकाध्यक्ष श्री अमरेन्द्रनाथ बनर्जी, साइंस-कालेज पुस्तकालय के पुस्तकाध्यक्ष श्रीशारदाप्रसाद सिन्हा और पटना-विश्वविद्यालय-पुस्तकालय के श्रीगंगाप्रसाद तिवारी भी प्रतिनिधि के रूप में शामिल हुए। पंजाब-विश्वविद्यालय के उपकुलपति मि० ए० सी० वुलनर भारतीय पुस्तकालय-संघ के अध्यक्ष और श्री के० एम०

असादुल्ला मंत्री चुने गए। संघ का प्रधान कार्यालय इम्पीरियल लाइब्रेरी (कलकत्ता) के साथ रक्खा गया।

पुराने अखिल भारतीय सार्वजनिक-पुस्तकालय-संघ और नए संघ, दोनों ने कलकत्ता में मिलकर बड़े सहयोग के साथ काम किया। दोनों ही संघ कायम रहे। अखिल भारतीय सार्वजनिक पुस्तकालय-संघ से १९२४ से ही भारतीय 'पुस्तकालय-पत्रिका' (इण्डियन लाइब्रेरी जर्नल) प्रकाशित होती थी जो काफी अच्छी थी। इन पंक्तियों के लेखक को भी १९३४-३५ में उसके सम्पादक-मण्डल में रहने का सौभाग्य प्राप्त था। १९३५ में डा० सच्चिदानन्द सिंह संघ के उपाध्यक्ष और इन पंक्तियों का लेखक उपमंत्री चुना गया। १९३७ तक संघ से इन पंक्तियों के लेखक का सम्पर्क रहा। अब पता नहीं संघ किस अवस्था में है। सम्भवतः वह मृतप्राय या निष्प्राण ही है। इस संघ के प्रधान कार्यकर्त्ता श्री इयांकी वेंकटरमैया और श्री डी० टी० राव, बार-ऐट-ला थे।

भारतीय पुस्तकालय-संघ १९४६ तक सन्तोषजनक कार्य करता रहा है। नियमपूर्वक प्रत्येक दो वर्ष पर सम्मेलन होते रहे। द्वितीय सम्मेलन १९३५ में लखनऊ में डा० ए० सी० वुलनर की अध्यक्षता में, तृतीय सम्मेलन १९३७ में दिल्ली में डा० वली मुहम्मद एम० ए०, पी० एच० डी०, आई० ई० एस० (लखनऊ-विश्वविद्यालय–पुस्तकालय के पुस्तकाध्यक्ष) की अध्यक्षता में और चतुर्थ सम्मेलन डा० सच्चिदानन्द सिंह (उस समय पटना-विश्वविद्यालय के उपकुलपति) और बिहार-पुस्तकालय-संघ के प्रत्यनों से पटना में डा० जौन सार्जेण्ट की अध्यक्षता में हुआ। डा० सच्चिदानन्द सिंह स्वागत-समिति के अध्यक्ष हुए और इन पंक्तियों का लेखक तथा श्रीइन्द्रदेव नारायण सिन्हा स्वागतमंत्री। पाँचवाँ सम्मेलन भी सार्जेण्ट साहब की ही अध्यक्षता में १९४२ में बम्बई में हुआ। इस सम्मेलन में श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने भी भाषण किया। छठा सम्मेलन १९४४ में जयपुर में श्री जे० सी० रौल्स की अध्यक्षता में और सातवाँ १९४६ की जनवरी में खाँ बहादुर अजीजुल हक (उस समय भारतीय शासन-परिषद् के सदस्य) की अध्यक्षता में बड़ोदा में हुआ। बड़ोदा के महाराज ने सम्मेलन का उद्‌घाटन किया।

पुस्तकालय-सेवा की नई भावनाओं के प्रचार तथा भारत में अशिक्षा-निवारण और पुस्तकालयों के जनतंत्रीकरण में ये सम्मेलन बहुत सफल रहे हैं। इन्होंने पुस्तकालयों के आधुनिक ढंग पर संचालन करने तथा भिन्न-भिन्न प्रान्तीय सरकारों और रियासती सरकारों पर पुस्तकालयों को प्रोत्साहन देने के लिए प्रभावित करने में संघ का अच्छा पथप्रदर्शन किया है।

१६३८ में भारतीय-पुस्तकालय-संघ ने भारतीय पुस्तकालयों की परिचय-पुस्तिका प्रकाशित की। १६४४ में उसका संशोधन-परिवर्द्धन सर्वश्री आर० गोपालन, सन्तराम भाटिया, वाई०एम० मुले, सैयद बशीरुद्दीन, सरदार सोहन सिंह और इन पंक्तियों के लेखक ने किया। संघ ने १६४१ से पुस्तालय-शास्त्र की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया है। अप्रैल १६४२ से यह एक त्रैमासिक पत्र भी प्रकाशित करता है। पुस्तकालय-विज्ञान तथा पुस्तकालय-सम्बन्धी अन्य विषयों का यह बड़ा उपयोगी पत्र है। उसने पुस्तकालयों के लिए आपस में पुस्तक-आदान-प्रदान की योजना बनाई, लेकिन वह व्यावहारिक न हो सकी। उसने वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं की सूची तैयार की है। इसने भारत-सरकार और प्रान्तीय सरकारों को पुस्तकालयों की सहायता करने के लिए प्रभावित किया और उनकी ग्रामोन्नति-योजना में पुस्तकालय-स्थापना को स्थान दिलाया। इसने म्युनिसिपैलिटियों और जिला बोर्डों से भी पुस्तकालयों की आर्थिक सहायता करने का अनुरोध किया। इसने प्रान्तीय सरकारों से सर्वाधिकार (कापी राइट) पुस्तकालय खोलने का भी अनुरोध किया जहाँ अनुसन्धान करनेवाले सार्वजनिक व्यक्ति पुस्तिकाएँ, पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ इत्यादि सुरक्षित पा सकें। समस्त प्रान्तीय संघ से गाँवों और शहरों के पुस्तकालयों का विवरण तैयार करने को कहा गया। मद्रास और बंगाल ने इस दिशा में कुछ कार्य किया और बंगाल ने कलकत्ता तथा हवड़ा के पुस्तकालयों का विवरण तैयार किया। पंजाब ने ही अपना काम पूरा किया। संघ ने एक भारतीय-पुस्तकालय-कानून की भी रूपरेखा तैयार की जिसके द्वारा सरकार निःशुल्क सार्वजनिक पुस्तकालयों के काम को आगे बढ़ा सके। कानून की रूपरेखा रावसाहब एस०आर० रंगनाथन ने तैयार की। संघ ने बिहार-सरकार को बिहार-पुस्तकालय-

संघ की आर्थिक सहायता करने के लिए प्रभावित किया। बिहार-पुस्तकालय-संघ ने एक पुस्तकालय-योजना बिहार के लिए तैयार की जिसे कार्यान्वित करने के लिए बिहार-सरकार पर प्रभाव डाला गया। बिहार-सरकार ने इस योजना के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की; परन्तु उसे कार्यान्वित करने में अपनी आर्थिक कठिनाई बताई। इस बात का प्रयत्न किया गया कि भारत की भिन्न-भिन्न भाषाओं में प्रकाशित उन पुस्तकों की सूची तैयार की जाय जिनका अनुवाद अन्य प्रान्तीय भाषाओं में करना चाहिए; क्योंकि इस प्रकार साहित्य के माध्यम से प्रान्तों में समीप्य पैदा होने की सम्भावना होगी। संघ ने एक सूचना-विभाग भी खोला है। जब से खाँ बहादुर के०एम० सादुल्ला ने संघ के मंत्रिपद तथा बुलेटिन (पुस्तिका) के सम्पादन से त्यागपत्र दे दिया है और वे स्वयं पाकिस्तान चले गए हैं तब से संघ की प्रगति धीमी पड़ गई है। फिर भी इस बात से सन्तोष का उदय हो रहा है कि श्री बी० एन० बनर्जी और रायसाहब इन्द्रदेवनारायण सिन्हा संघ को पुनरुज्जीवित करने की चेष्टा कर रहे हैं और शीघ्र ही संघ-पुस्तिका के प्रकाशित होने की आशा है। संघ का आगामी सम्मेलन भी ईस्टर की छुट्टियों में होनेवाला है।

भारतीय पुस्तकालय-संघ के विकास और प्रत्येक दो वर्षों पर उसके सम्मेलनों के आयोजन से पुस्तकालय-आन्दोलन का बड़ा प्रचार हुआ और प्रायः प्रत्येक प्रान्त में संघ कायम हो गया। पंजाब, मद्रास, आन्ध्रदेश और महाराष्ट्र में संघ की स्थापना के पूर्व से ही प्रान्तीय तथा जिला-संघ स्थापित थे। बंगाल में संघ की स्थापना सितम्बर १९३३ में हुई। स्वर्गीय श्रीगंगा-प्रसाद तिवारी (पटना-विश्वविद्यालय-पुस्तकालय के सहायक पुस्तकाध्यक्ष), श्रीअयोध्या प्रसाद (पटना सेक्रेटेरियट के पुस्तकाध्यक्ष) और इन पंक्तियों के लेखक की चेष्टाओं से बिहार में अक्तूबर १९३६ में संघ की स्थापना हुई। इसकी पहली बैठक बिहार-यंगमेन्स-इंस्टीट्यूट में श्रीगोकुलप्रसाद (वकील) के सभापतित्व में हुई। डा० सच्चिदानन्द सिंह संघ के अध्यक्ष चुने गए। प्रथम बिहार-पुस्तकालय-सम्मेलन गया में स्वर्गीय श्रीकुमार मणीन्द्रदेव राय महाशय (बंगाल-पुस्तकालय-संघ के अध्यक्ष) के सभापतित्व में हुआ। संघ

का सारा व्यय-भार श्रीमन्नूलाल पुस्तकालय (गया) के संचालक-मंत्री श्रीसूर्य-प्रसाद महाजन ने वहन किया। द्वितीय सम्मेलन दिसम्बर १९३७ में पटना-सिटी में बिहार-हितैषी-पुस्तकालय के निमंत्रण पर हुआ। श्रीकृपानारायण सिंह स्वागताध्यक्ष और इन पंक्तियों का लेखक स्वागतमंत्री चुना गया। सम्मेलन का उद्‌घाटन बिहार के प्रधान मंत्री माननीय श्रीश्रीकृष्ण सिंह ने और सभापतित्व अर्थमंत्री माननीय श्रीअनुग्रहनारायण सिंह ने किया। इस सम्मेलन का ही परिणाम था कि बिहार-सरकार के आय-व्यय-अनुमानपत्र में प्रथम बार ३००००) की रकम की गुंजाइश पुस्तकालय-कार्य के लिए की गई। २००००) की रकम वर्तमान पुस्तकालयों की सहायता के लिए तथा १००००) की रकम नए पुस्तकालयों की सहायता के लिए निश्चित की गई थी। बिहार-पुस्तकालय-संघ ने बिहार में पुस्तकालयों के संघटन और व्यवस्था की एक योजना बनाई। इस योजना के अनुसार प्रत्येक ५ गाँवों के लिए कम से कम एक पुस्तकालय की आवश्यकता बताई गई। इनके संचालन के लिए यह सुझाव रक्खा गया था कि बिहार-सरकार और बिहार व्यवस्थापिका-सभा के भी प्रतिनिधि केन्द्रीय समिति में रहें। ये सब पुस्तकालय प्रान्तीय संघ से सम्बद्ध हो जायँ और केन्द्रीय संचालन-समिति में इनकी ओर से प्रान्तीय संघ प्रतिनिधि चुने। पटना में केन्द्रीय पुस्तकालय हो, जिलों में जिला-पुस्तकालय, सबडिवीजनों में सबडिवीजनल पुस्तकालय और इसी प्रकार गाँवों में भी पुस्तकालयों की स्थापना की जाय जिसमें प्रत्येक ५ गाँवों पर कम से कम एक पुस्तकालय की स्थापना हो जाय। इस प्रकार बिहार में पुस्तकालयों की संख्या करीब १२००० हो जाती। इस समय करीब १५०० पुस्तकालय हैं। यह सुझाव रक्खा गया कि मिडिल स्कूलों को गाँवों के पुस्तकालयों का केन्द्र बनाया जाय। माननीय आचार्य बदरीनाथ वर्मा, स्वर्गीय श्रीगंगा-प्रसाद तिवारी और इन पंक्तियों के लेखक ने मिलकर यह योजना तैयार की।

बिहार में जिला और सबडिवीजनल पुस्तकालय-संघ भी कायम हो चुके हैं। हाजीपुर सबडिवीजन में बड़ा अच्छा काम हो रहा है। इसमें श्रीजगन्नाथ प्रसाद साह की बड़ी लगन है। श्रीभोलानाथ 'विमल' के सदय और सुयोग्य सहयोग से बिहार के पुस्तकालयों की एक परिचय-पुस्तक तैयार की

गई है। बिहार-पुस्तकालय-संघ के तत्त्वावधान में और पुस्तक-जगत् के सहयोग से पुस्तकालय-सम्बन्धी एक पुस्तक भी सम्पादित की गई है।

युक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त और सीमाप्रन्त में भी पुस्तकालय-आन्दोलन का सन्देश पहुँच चुका है। लेकिन यह विदित नहीं है कि वहाँ किस प्रकार काम हो रहा है। सर्वश्रेष्ठ प्रान्तीय-संघ मद्रास में है। पंजाब, महाराष्ट्र और बम्बई का स्थान उसके बाद है।

आशा की जाती है कि जनता की सरकार कायम हो जाने पर इस आन्दोलन को सारे भारत में बड़ा प्रोत्साहन मिलेगा और उसका विकास एक समुचित योजना के अनुसार होगा। इस आन्दोलन को आरम्भ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से बड़ी प्रेरणा मिली थी। आशा की जाती है कि इस आन्दोलन से राष्ट्रनिर्माण और अज्ञान तथा निरक्षरता के निवारण में बड़ी सहायता मिलेगी और इसका भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल होगा।

पुस्तकालय की विभिन्न सेवाएँ।

श्री राय मथुराप्रसाद

योो दद्याज्ज्ञानमज्ञानात् कुर्याद्वा धर्मदर्शनम्।
यः कृत्स्नां पृथिवीं दद्यात् तेन तुल्यं न तद्भवेत्॥

—मनुः।

पुस्तकालय केवल कौतुक संग्रहालय या "म्युजियम" नहीं है जहाँ निष्क्रिय दर्शक नियत समय पर जायँ और दूर से ही उसे देखकर उसकी प्रशंसा करें। पुस्तकालय भूतकालीन ग्रंथ-कर्त्ताओं की समाधि भी नहीं है जहाँ दर्शक उनके सत्कारार्थ जायँ और उन जीवन प्रदान करनेवाली शक्तियों से निष्क्रिय और मौन होकर मिलें। न तो यह केवल एक ऐसा संग्रहालय ही है जहाँ लोग कभी आवश्यकता पड़ने पर ही किसी विषय पर खोज की दृष्टि से जायँ। पुस्तकालय में "म्यूजियम" के समान कर्म की तत्परता, समाधि की गम्भीरता तथा संग्रहालय की उपयोगिता पाई जा सकती है। परन्तु केवल इन कार्यों से यह अपने उद्देश्यों को पूरा नहीं करता है और जन-समाज की सेवा भी पूर्ण रूप से नहीं करता।

पुस्तकालयों का मुख्य उद्देश्य अन्धकार और अविद्या का नाश करना है। आधुनिक पुस्तकालय सजीवता का घर है, अव्यवहार का घर नहीं; बल्कि एक ऐसी धर्मशाला है जहाँ पुस्तकें अपनी यात्राओं के बीच-बीच में केवल विश्राम करती हैं। क्रयडन साहब का कथन है कि "यह एक सजीव 'ऑरगेनिज्म' है जिसके भीतर अत्यन्त वृद्धि और पुनरुत्पत्ति की अमित शक्ति है। यह ऐसी विचारधारा प्रज्वलित कर सकती है जिससे लाभदायक आविष्कारों की उत्पत्ति हो तथा लोग अनेक महान् कार्यों के लिए प्रेरित हों। यह सदा बुद्धि, श्रम, मितव्ययिता, सदाचार, नगरिकता तथा अन्य ऐसे गुणों का प्रचार करता है जो किसी जाति की सम्पत्ति और वृद्धि के मुख्य कारण हैं" आधुनिक पुस्तकालय के कार्यों के विकास ने एक ऐसी नियमित व्यवस्था का रूप धारण कर लिया है जो स्कूली और

गैर स्कूली बालक-बालिकाओं, स्त्री, युवक, वृद्ध और धनी-गरीब समस्त जन समुदाय की शिक्षा का प्रबन्ध करता है। अतएव यह केवल पुस्तकों का ही नहीं वरन् शिक्षा के अन्य साधनों का भी संग्रह करता है, जैसे चित्र, चार्ट, नक्शे, मैजिकलैनटर्न और उसके 'स्लाइड्' 'एपिडायस्कोप, सिनेमायंत्र तथा फिल्म जिन से अपढ़ों को शिक्षा प्रदान की जा सकती है। पुस्तकालय में शिक्षा देने के लिए ग्रामोफोन और रेडियो का भी प्रयोग किया जाता है। आधुनिक पुस्तकालयों में एसेम्बली रूम और व्याख्यान-भवन भी होते हैं जहाँ छोटी-बड़ी सभाएँ हुआ करती हैं। अब पुस्तकालय हमलोगों के सामाजिक जीवन का एक केन्द्र बन गया है। अमेरिका के बहुतेरे पुस्तकालयों में भोज-सभा (डिनर-मीटिंग) शिशुपालनविभाग, किण्डरगार्टन 'प्रदर्शनी' कसीदे, बुनाई, संगीत तथा पाक-शास्त्र के क्लास भी होते हैं। किसी-किसी जगह पुस्तकालय ऐतिहासिक संघों से मिलकर अनेक बहुमूल्य हस्तलिपियाँ तथा कौतुकजनक और ऐतिहासिक वस्तुएँ एकत्र करते है। ऐसे पुस्तकालय ऐतिहासिक तथा प्राचीन समाचारों के केन्द्र बन जाते हैं और समाज के हितचिन्तकों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। किसी-किसी पुस्तकालय में विश्रामगृह का भी प्रबन्ध रहता हैं, जहाँ खूब आरामदेह कुर्सी और मेज तथा लिखने के सामानों का प्रबन्ध रहता है। पाठक इन कमरों में बैठ कर वर्त्तालाप करते हैं और उपयोगी बातों को नोट भी करते हैं। कहीं-कहीं पुस्तकालयों के साथ व्यायामशाला और उद्यान भी रहते हैं। यह सब वस्तुएँ मनुष्य के शारीरिक, मानसिक तथा आत्मबल की वृद्धि के लिए हैं

पुस्तकालय की सेवाविधि

पुस्तकालय की सेवाओं के तीन प्रकार हैं। प्रथम ज्ञान और मनुष्य के अनुभव जो कम या अधिक स्थायी रूप में अङ्कित किये गए हैं ताकि दूसरों को बतलाए जा सकें। ज्ञान और मनुष्य के अनुभवों को अंकित करने के साधनों में से पुस्तक भी एक साधन है, यद्यपि पुस्तकालय की दृष्टि से यह सुलभ तथा अत्यन्त आवश्यक साधन है। इसके अतिरिक्त तस्वीरें 'नक्शे' फिल्म, मैजिक लालटेन, स्लाइड, ग्रामोफोन रेकर्ड इत्यादि अन्य साधन भी हैं जिनसे वर्तमान पुस्तकालयों का सम्बन्ध है।

रक्खें कि यह अधिक से अधिक लाभ अधिक से अधिक पाठकों को मिले। इस सम्बन्ध में नियमों का ध्यान रखना।

(३) पाठकों द्वारा पुस्तकालय के उपयोग से असंतुष्ट होकर पुस्तकों के अध्ययन की तरफ चाव दिलाने के साधन खोज निकालना। इस सम्बन्ध में इसका भी ध्यान रखना कि कौन क्या पढ़ता है और उसके आँकड़े तैयार करना। इससे पुस्तकों के संग्रह में भी लाभ होगा कि किस विषय के अधिक पाठक हैं जिसमें अत्यधिक पुस्तकों की आवश्यकता है। साथ-साथ दूसरे किसी खास विषय की ओर जो नहीं पढ़ी जाती हैं, पाठकों की रुचि कैसे लाएँ, इसका भी प्रयत्न करना।

हम इसपर विचार करें कि पुस्तकालय की उपयोगिता बढ़ाने के लिए पुस्तकाध्यक्ष किन-किन साधनों का प्रयोग करता है। कुछ पुस्तकों का विशेष रूप से प्रचार किया जाय अथवा पाठकों में किसी खास विषय की पुस्तकों की ओर कौतूहल पैदा किया जाय। ऐसा करने से तीन प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति होती है (१) पुस्तकालय की उपयोगिता बढ़ती है; (२) अध्ययन की इच्छा बढ़ती है और (३) पाठकों के अध्ययन की रुचि किसी प्रमुख विषय की ओर निर्धारित होती है। पाश्चात्य देशों में और खासकर अमेरिका में लोगों में पुस्तकों की ओर रुचि जागरित करने के अनेक परीक्षित उपायों का व्यवहार किया गया है और बराबर नए-नए तरीकों का अनुसन्धान भी होता रहता है। ये तरीके दो वर्गों में आते हैं और इन प्रत्येक दो वर्गों के भीतर तीन प्रकार के साधन हैं। पहले वर्ग के पात्र अथवा खिलाड़ी पुस्तकाध्यक्ष तथा उनके सहकारी हैं और लोग मानों दर्शक हैं जिनकी दिलचस्पी खिलाड़ी अपनी ओर लाने का सतत प्रयत्न करता है। दूसरे वर्ग में लोग भी नाटक-मंच पर आकर भाग लेते हैं। वर्ग में कार्यप्रवाह सदा पुस्तकों से ही आरम्भ होता है। प्रत्येक वर्ग की प्रथम प्रणाली का आरम्भ पुस्तकों से होता है और पुस्तकों से ही अंत किया जाता है। दूसरे तरीके में अन्य अनुरागी भी रंग-मंच पर पुस्तकों के साथ भाग लेते हैं। और आखिरी तरीके में ऐसी प्रेरणाओं को भी, जिनका स्वतः पुस्तकों से कोई सम्बन्ध नहीं, लोगों के मस्तिष्क में अध्ययन की रुचि जागरित करने के लिए सम्मिलित किया जाता है।

हम पहले वर्ग पर विचार करें। इसका पहला तरीका केवल यह है कि पुस्तकालय की कुछ पुस्तकों को प्रमुख स्थान देकर लोगों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित करना। उदाहरणार्थ, नई आई हुई किताबों को अलग ऐसी आलमारी में रखना जो नई किताबों के लिए ही निर्धारित है और जो प्रमुख स्थान में, जैसे पुस्तकालय के द्वार पर ही रक्खी गई हो।

दूसरा तरीका यह है कि 'बुक-जैकेटों' को एक बोर्ड पर सजाकर प्रदर्शन कराना ताकि पाठकों का ध्यान उस ओर आकर्षित हो। ऐसे बोर्डों का उपयोग नई आई हुई पुस्तकों की सूची तथा पुस्तकों की विज्ञप्ति इत्यादि के प्रदर्शन में भी किया जा सकता है। ऐसे बोर्डों को वाचनालय और पुस्तकालय के बीच के रास्ते की दीवारों पर या अन्य प्रमुख स्थानों में रखना चाहिये। इन 'बुक-जैकेटों', विज्ञप्तियों तथा सूचियों या लेखक के चित्रों को क्रमशः बदलते रहना चाहिये। विज्ञप्ति-बोर्डों को सजाना भी एक कला है जिसका अध्ययन अमेरिकन पुस्तकाध्यक्षों ने भली प्रकार किया है।

जिन सूचियों का प्रदर्शन कराया जाय वे किसी खास विषय के सम्बन्ध में हों। केवल पुस्तकों पर जोर न देते हुए उनके विषयों पर जोर देना आरम्भ होता है। फिर जब इन सूचियों को इनके प्रकरणों की टिप्पणियों सहित प्रदर्शित किया जाता है तो जोर पुस्तकों से हटाकर दूसरी ओर अर्थात् उनकी उपयोगिता पर दिया जाता है। ऐसी अवस्था में विषयों को प्रधानता दी जाती है और पुस्तकें केवल उनकी चर्चा के उदाहरणमात्र दी जाती हैं।

पुस्तकों के प्रदर्शन का दूसरा तरीका यह है कि किसी खास विषय के सब या कुछ पुस्तकों को सजाकर बारी-बारी से प्रदर्शन करना। इसमें भी विज्ञापन की एक विशेष कला का व्यवहार होता है।

पहले वर्ग के तरीकों के दूसरे ढंग में भी विषयों को ही प्रधानता दी जाती है। किसी खास पुस्तक का वर्णन जरूर किया जाता है पर उसका उद्देश्य उसके विषय को समझाना तथा उसका कोई खास रूप देने का होता है। यहाँ पुस्तकाध्यक्ष केवल प्रदर्शन की कला पर नहीं अवलम्बित होता है, बल्कि उसके चर्चा-सम्बन्धी विषयों पर। पुस्तकाध्यक्ष को पुस्तकों का अथवा उनके मुख्य प्रकरणों का तुलनात्मक ज्ञान होना चाहिये जिससे वह

अपनी पुस्तक-चर्चा में सफल हो। यहाँ रंगमंच पर विषय की चर्चा ही पुस्तकों की सहपात्री होती है। प्रत्येक पुस्तक-चर्चा में वक्ता का ध्यान श्रोता में पुस्तकों के लिए कौतूहल पैदा करना होना चाहिये।

अब हम पहले वर्ग के तीसरे तरीके को देखें। यह तरीका अध्ययन और पुस्तकों से स्वतंत्र है, पर इससे जो दिलचस्पी उत्पन्न होती है उससे स्वभावतः अध्ययन की इच्छा बढ़ती है। इसका प्रधान जरिया किस्सा-कहानी, जीवनी तथा यात्रा-वर्णन का सुनाना है। इनको सुनकर कहानी, जीवनी तथा यात्रा-वर्णन में रुचि मिलने लगती है और रुचि की पूर्ति के लिए पाठक ऐसी पुस्तकों को पढ़ने लगते हैं। पहले वर्ग के तीसरे तरीके में भाषणों का स्थान भी है। यह भाषण तभी पुस्तकालय के लिए उपयोगी होंगे जब इनका निर्देश पुस्तकालय की सामग्रियों की ओर होगा। इसलिए भाषण के उपरान्त भाषण-विषय-सम्बन्धी पुस्तकालय में उपलब्ध पुस्तकों की एक सूची वितरण करनी चाहिये और उन पुस्तकों का विशेष रूप से प्रदर्शन करना चाहिये।

* निम्नलिखित साधन पुस्तक पढ़ने को प्रोत्साहित करने में लाए जाते हैं।

(१) विज्ञप्ति-बोर्ड के ऊपर पुस्तकों के कवरों को समालोचनसहित लगाया जाता है। इनको समय-समय पर बदला जाता है। पुस्तकाध्यक्ष इन पुस्तकों के विषय में पाठकों से चर्चा भी करता है।

(२) लेखकों तथा पुस्तकों के पात्रों की तस्वीरों का प्रदर्शन भी किया जाता है।

(३) जब कभी नई किताबें आती हैं तो उनकी सूची तथा उनके कवरों को एक विशेष विज्ञप्ति-बोर्ड पर लगाया जाता है।

(४) पुस्तकों के बारे में पुस्तकाध्यक्ष पाठकों से बातचीत करने का प्रबंध करता है।

(५) रेडियो द्वारा पुस्तकों पर बातचीत का प्रबन्ध कराना।

(६) पाठकों की रुचि की जानकारी आँकड़ों द्वारा करना और उसकी उन्नति करना तथा अन्य विषयों में रुचि दिलाना।

(७) पुस्तक सम्बन्धी पत्रिकाओं को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करना।

(८) खास-खास पुस्तकों का विशेष रूप से समय-समय पर प्रदर्शन करना।

(९) पुस्तकों पर पाठकों द्वारा समालोचना अथवा नोट लिखवाना।

(१०) कभी-कभी-पुस्तक-सप्ताह का आयोजन करके खास पुस्तकों का विशेष प्रचार करना।

अब हम दूसरे वर्ग के पुस्तक-प्रचार के तरीकों पर विचार करें। इसमें मुख्य भाग पाठक लेते हैं। वे केवल पुस्तकालय से लाभ ही उठाने-वाले नहीं रह जाते पर वे भी पुस्तकालय के कार्य को ही बढ़ाने तथा उसका खास रूप देने में सहयोग देते हैं।

पहले प्रकार का तरीका किसी खास पुस्तक से सम्बन्धित होता है। पाठक आपस में एक दूसरे से तथा पुस्तकाध्यक्ष से, जिन पुस्तकों का उन्होंने अध्ययन किया है, उनकी चर्चा करते हैं। वे अध्ययन की हुई पुस्तकों की सूची बनाएँ, उसपर अपने विचार प्रकट करें अथवा आलोचना करें, इसके लिए उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिये।

इस वर्ग के दूसरे तरीके के अनुसार पुस्तक में रुचि के होने के साथ-साथ अन्य पद्धतियाँ भी सम्मिलित होती हैं। इसका साधारण स्वरूप अध्ययन-क्लब अथवा अध्ययनगोष्ठी है।

इसका दूसरा ढंग है साहित्यिक तथा अन्य प्रकार की प्रतियोगिता पाठकों में कराना।

इस वर्ग का तीसरा तरीका पुस्तकों से स्वतंत्र है परन्तु उनको पुस्तकाध्यक्ष पुस्तक-अध्ययन के लिए स्फूर्ति प्रदान कराने के व्यवहार में लाता है, उनके मुख्य स्वरूप तीन हैं:—(१) किसी कहानी को नाटक का रूप देना, (२) नाटक खेलवाना और (३) प्रदर्शनी कराना। इन सभी कार्यों में पुस्तकों का सम्बन्ध जरूर रहना चाहिये जिससे उनमें रुचि बढ़े।

पुस्तकाध्यक्ष का चौथा कर्तव्य है अपने संरक्षकों को पुस्तकालय के पुस्तक-भंडार की व्याख्या करना तथा पुस्तकों द्वारा उनकी समस्याओं को सुलझाने में मदद करना। या श्रीरंगानाथन के शब्दों में यों कहिए कि पाठकों के लिए पुस्तक की खोज निकालना और पुस्तकों के लिए पाठक ढूँढना। विषय-सम्पर्क-सम्बन्धी सेवा के अन्तर्गत पाठक को विशेष

आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यथार्थ सामग्री जुटाना होता है। पुस्तकाध्यक्ष को इस सेवा की पूर्ति के लिए पुस्तकों के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान तथा कला और साधन पर्याप्त होना चाहिए।

पाठक लोग अनेक समस्याएँ पुस्तकालय में लाते हैं। पुस्तकालय का सन्दर्भ विभाग मानों एक विश्वविद्यालय है जहाँ से पाठक अपनी समस्याओं की पूर्ति की अपेक्षा करते हैं। पुस्तकाध्यक्ष तथा उसके सहकारी ही पाठकों का पथप्रदर्शक है। पुस्तकाध्यक्ष को इस विभाग का कार्य करते समय पाठकों की समस्याओं को अपना ही समझना तथा उनकी पूर्ति शान्तचित्त तथा प्रेम से करना चाहिये। जब तक वह स्वयं ग्रंथविद्या का ज्ञान न रक्खेगा और पुस्तकालय की पुस्तकों से परिचय न रक्खेगा, वह अपने अध्यक्ष की सेवा नहीं कर सकता। खेद की बात है कि हिन्दी-भाषा में ग्रंथविद्या पर पुस्तकों का अभाव है। इसलिए पुस्तकाध्यक्ष को अधिक परिश्रम कर अपने पुस्तकालय की पुस्तकों का परिचय प्राप्त कर अपने रजिस्टर में उनका नोट तैयार करके रखना होगा जिससे पता चले कि किस विशेष विषय पर कहाँ-कहाँ कौन-सी सामग्री मिल सकती है। ऐसे नोट तथा अन्य पुस्तक-परिचय संबन्धी ग्रंथों को पुस्तकाध्यक्ष अपनी मेज पर ही रक्खें ताकि अपना तथा पाठकों के समय की बचत हो।

सन्दर्भ-विभाग के पुस्तकाध्यक्ष के लिए कुछ पद्धति तथा नियम :——

(१) बिना विशेष पूछताछ के ठीक-ठीक जानने का प्रयत्न करो कि पाठक क्या चाहते हैं।

(२) जब कभी किसी सामग्री के सम्बन्ध में शक हो तो ऐसी अवस्था में प्रारम्भिक तथा समान लोकोपयोगी पुस्तिकाओं को तरजीह देनी चाहिये।

(३) यदि पाठक जल्दी में हो तो उसे जो सामग्री सन्दर्भ-पुस्तक में मिल सके, देकर और अधिक सामग्री यदि वे चाहें तो बाद में ले सकते हैं, ऐसा कहें।

(४) यदि पुस्तकाध्यक्ष को किसी विषय का ठीक रूप न मालूम पड़े तो सन्दर्भ-ग्रंथ का अवलोकन कराए।

(५) कभी अपने पाठकों को फौरन ऐसा न कहें कि जो वह चाहते हैं वह नहीं है।

(६) यदि आपको पहले पाठक के आवश्यकतानुसार पुस्तकालय में पुस्तकें न मिलें तो भी आप पाठक को स्वयं पुस्तकें देखने का आग्रह करें। यदि उनकी समझ में भी कोई मतलब की पुस्तक न मिले तो उनको किसी दूसरे दिन पूछने के लिए कहें। और फिर चेष्टा कर उनके मतलब की पुस्तक ढूँढ़ निकालें।

(७) यदि उन्हें आप कार्डसूची स्वयं देखने दें तो देखना चाहिये कि वे बुद्धिमानी से उनका उपयोग कर रहे हैं।

(८) पाठकों के लिए सब देखरेख स्वयं करने की आदत न लगाएँ, क्योंकि उन्हें खुद विषय-सूची इत्यादि देखना चाहिये।

(६) यदि प्रश्नविशेष अनुसन्धान से सम्बन्ध रखता हो तो उसे नोट कर लेना चाहिये और पाठक को एक-दो दिन के बाद बुलाना चाहिए।

(१०) हर अनुरोध की उचित विचार के साथ पूर्ति करनी चाहिए।

(११) पूर्णरूप से शिष्ट रहें जिसमें पाठक सेवाओं से असन्तुष्ट न हो।

(१२) जब विश्राम मिले तब फिर से देखें कि क्या किया है और यदि कोई अच्छी सामग्री छूट गई है जिसे बताना था, तो उसे पाठक तक पहुँचाना चाहिये और अपनी भूल मान लेनी चाहिये।

सन्दर्भ-ग्रंथ दो प्रकार के होते हैं :—

(१) लघुभ्रमण तथा (२) दीर्घभ्रमण। पहले में कोष, विश्वकोष, डायरेक्टरी इत्यादि और दूसरे में अनेक विषयों की पुस्तकें तथा अन्य अस्थायी सामग्रियाँ आती हैं जैसे अखबारों, पत्रिकाओं, पुस्तिकाओं इत्यादि के कटिंग। ऐसी सामग्रियों को बाजाब्ता विषय-सूचीके साथ रक्खा जाता है और अन्य प्रकार की सामग्री पुस्तकों की विषय-सूची, संक्षिप्त पुस्तकों का परिचय तथा पुस्तकालय की पुस्तक-सूची इत्यादि है।

समाज-सेवा

अभी ऊपर हमने पुस्तकालय की सेवा व्यक्तियों के प्रति देखी है। अब मैं उसकी सेवा समाज के प्रति कैसी होती है, यह बताने का प्रयत्न करूँगा। पुस्तकाध्यक्ष सन्दर्भ-विभाग की सेवा करते-करते जाति-सेवा की ओर बढ़ जाता

है। व्यक्ति की आवश्यकताओं को जान लेने के बाद वह इस बात की खोज करता है कि वह व्यक्ति किस पथ या संघ-समूह का है। और इस खोज के बाद यह पता चलता है कि ऐसे प्रश्न अमुक समूह अथवा संघ से आते हैं जैसे शिक्षा सम्बन्धी विद्यार्थियों से, कृषि-सम्बन्धी किसान से इत्यादि, इत्यादि। जब वह यह जान लेता है तो इसका अन्दाज लगाता है कि उसके पुस्तकालय में उन समूहों तथा संघों के लिए आवश्यक सामग्रियों की कमी है या नहीं। कमी होने पर वह उसको पूरा करने की कोशिश करता है। किसी विशेष समूह की सेवा के तीन उद्देश्य हैं। पहला उद्देश्य तो उस समूह की संस्कृति को ऊँचा उठाना, दूसरा उसके लिए आवश्यक पुस्तकों की पूर्ति करना और तीसरा उसको पथभ्रष्ट होने से बचाना अर्थात् असामाजिक तथा कुसामाजिक रास्ते पर जाने से रोकना है।

अस्पताल, अखाड़े, महिला-संघ, जेलखाने, मजदूर-संघ, किसान-संघ इत्यादि में अध्ययन के लिए पुस्तकें भेजना पुस्तकाध्यक्ष की समाजसेवा का अंग है

पुस्तकालय का उपयोग किस प्रकार से किया जाय, पाठकों को यह बताना पुस्तकाध्यक्ष का छोटा कर्त्तव्य है।

पुस्तकालय-शिक्षण के ५ उद्देश्य हैं:—

(१) पुस्तक का किस प्रकार व्यवहार करें।

(२) पुस्तकालय के नियमों की जानकारी कराना। यह भी बताना कि यह नियम मितव्ययिता के सिद्धान्त पर अवलम्बित है जिससे सर्वोत्तम सेवा अधिक से अधिक लोगों की हो सके।

(३) पुस्तकालय की विभिन्न सेवाओं की जानकारी कराना जैसे पुस्तकें देना, सन्दर्भ-विभाग की सेवाओं का ज्ञान देना।

(४) पुस्तकालय-संगठन के प्रमुख लक्षणों को बताना जिससे पाठकों को पुस्तकालय का उपयोग करने में सुलभता तथा लाभ हो।

(५) यह बताना कि किसी एक पुस्तक से अधिक से अधिक कैसे लाभ उठाया जा सकता है। विशेषतः यह बताना कि सन्दर्भ संबंधी ग्रंथों का व्यवहार कैसे किया जाय और उनमें से खास-खास पुस्तकों की जानकारी कराना परम-आवश्यक है।

——:०:——

स्कूल-कालेज के पुस्तकालय

श्रीरघुनन्दन ठाकुर

स्कूल-जीवन में पुस्तकालय का महत्त्व बहुत ज्यादा है। यह स्कूल का मस्तिष्क भले ही न कहा जाय लेकिन इसे फेफड़ा समझने में तो कुछ भी कमी न होनी चाहिये। लड़कों को यथोचित तरीके से शिक्षित करने में इसका बहुत ज्यादा हाथ है और इसी के सदुपयोग से कोई विद्यार्थी सच्चा नागरिक बन सकता है। नागरिक बनकर वह अपने उत्तरदायित्वों को समझता है जो कि जनतंत्रात्मक राज्य की सफलता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यही कारण है कि कभी-कभी मनुष्य इसे राष्ट्रीय विश्वविद्यालय समझने लग जाते हैं।

पुस्तकालय वस्तुतः छात्रों के मानसिक विकास के लिए एक उत्कृष्ट एवं अनिवार्य संस्था है। यदि पुस्तकालय अच्छी पुस्तकों तथा अच्छे पुस्तकाध्यक्ष से सुसज्जित रहे तो वहाँ के निवासियों का चरित्र उच्चकोटि का हो जाता है तथा पाठकों में उस सामाजिक जीवन एवं आचरण की परीक्षा करने की शक्ति हो जाती है जिनको वे स्कूल तथा घर में सीखते हैं। नागरिकता एवं मानवीय परिपूर्णता को प्राप्त करने के लिए पुस्तकालय का सद्व्यवहार एवं शिक्षकों की सहायता अनिवार्य है। विद्यार्थी जिस तरह के वातावरण में रक्खा जाता है उसी तरह के साँचे में वह ढल जाता है।

प्रगतिशील तथा स्वतंत्र राष्ट्र की सर्वतोमुखी उन्नति के लिए सब तरह के आवश्यक पदार्थों तथा आदर्श भावों से पूर्ण वातावरण की आवश्यकता है। इस वातावरण की सृष्टि में आदर्श शिक्षकों तथा अच्छे पुस्तकालयों का बहुत बड़ा हाथ है। पुस्तकालय का अपने इलाके के विद्यार्थियों की आवश्यकताओं से घनिष्ठ सम्बन्ध रहना चाहिये। स्कूल में केवल पुस्तकालय एक ऐसी संस्था है जिसके सद्व्यवहार से शिक्षक तथा विद्यार्थी स्कूल को उच्च कोटि का बना सकते

हैं। यह छात्रों का चरित्रनिर्माण कर तथा सद्गुणों को बढ़ाकर उनकी आध्यात्मिक शक्ति को उन्नत कर सकता है। महात्मा-गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू, राधाकृष्णन्, कवीन्द्र रवीन्द्र तथा और बहुत से दूसरे महानुभाव अच्छी पुस्तकों के सद्व्यवहार से ही इतने महान् हुए हैं।

पुस्तकालय का भवन बिलकुल अलग होना चाहिये जिसमें इसके सुचारु संचालन में कोई बाधा न हो, उसके कार्यालय में पुस्तकों की मरम्मत, वर्गीकरण, सूचीपत्र तथा और-और छोटे काम जो पुस्तकालय के कार्यक्रम के अन्दर आते हैं, करने की सुविधा मिलती है तथा पुस्तकाध्यक्ष इसका व्यवहार अपने काम को सम्पादित करने में कर सकता है। कार्यालय का व्यवहार पुस्तकालय के वर्ग-प्रतिनिधियों द्वारा होना है। आफिस का कमरा बिलकुल पुस्तकाध्यक्ष के काम में आता है। इसके अलावा एक वाचनालय तथा पुस्तकालयभवन का होना आवश्यक है। पुस्तकालय का भवन पुस्तकाध्यक्ष के अधीन होना चाहिये तथा उसे यह अधिकार होना चाहिये कि पुस्तकालय-सम्बन्धी सभी तरह के नियम वह बना सके। परन्तु इस बात के लिए उसे अपने हेडमास्टर से स्वीकृति भी ले लेनी चाहिये। पुस्तकालय को हर तरह से सुसज्जित करके पुस्तकों का वर्गीकरण भी कर लेना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि पुस्तकों का सुन्दर एवं बहुमूल्य व्यवहार इसी से हो सकता है।

प्रगतिशील स्कूलों में कई तरह के पुस्तकालयों का होना अनिवार्य है। १. शिक्षक-पुस्तकालय—जिसमें पाठ्य (टेक्स्ट) पुस्तकें रहती हैं और जिसका व्यवहार तथा संचालन शिक्षकों द्वारा ही होता है। २. छात्र-पुस्तकालय—जिसमें विद्यार्थियों के लिए अच्छी-अच्छी पुस्तकें रहती हैं तथा इसका खर्च भी विद्यार्थियों के पुस्तकालय-शुल्क तथा स्कूल के पुराने विद्यार्थियों के चन्दे से चलता है। ३. सन्दर्भ-पुस्तकालय—जिसका उपयोग शिक्षक एवं उच्च वर्ग के विद्यार्थी करते हैं और जिसका व्यय स्कूल देता है।

किसी-किसी स्कूल में छात्र-पुस्तकालय के बदले वर्ग-पुस्तकालय हरएक क्लास में क्लासमास्टर या वर्ग-प्रतिनिधि के अधीन रक्खा जाता है। इन पुस्तकालयों की पुस्तकें छात्रों की मानसिक योग्यता के अनुसार होती हैं। यह पुस्तकालय तो अधिकतर साधारण छात्रों के लिए ही उपयोगी होता है।

तीक्ष्णबुद्धि छात्रों की मानसिक उन्नति के लिए समुचित पुस्तकें इसमें नहीं मिलतीं। अतः उनका यथोचित विकास नहीं होने पाता तथा उनकी ज्ञानराशि विकसित न होकर स्थायी हो जाती है। अतः जहाँ तक हो सके छात्र-पुस्तकालयों का ही रखना श्रेयस्कर है, क्योंकि इसमें हर तरह की पुस्तकें रहती हैं और छात्र आवश्यकतानुकूल पुस्तकों को पढ़कर अपना मानसिक विकास करता है। यहीं छात्रों में आपस में विचार-विनिमय होता रहता है और वे यहाँ वर्ग-पुस्तकालय से कहीं अधिक लाभ उठाते हैं।

छात्र-पुस्तकालय से एक बहुत बड़ा लाभ यह है कि इसमें विद्यार्थी को योग्यता के अनुसार पुस्तकें मिल जाती हैं। एक ही क्लास के कुछ तीव्रबुद्धि लड़के अपने वर्ग की आगेवाली पुस्तकों को पढ़ते हैं और कुछ मंद-बुद्धि छात्र अपने वर्ग से नीचे की पुस्तकें पढ़कर अपने ज्ञान को परिपूर्ण करने में समर्थ होते हैं। इसमें हर तरह के विद्यार्थी को लाभ पहुँचता है और एक महान् अभाव की पूर्ति होती है जो वर्ग-पुस्तकालय से संभव नहीं। आर्थिक दृष्टि से भी छात्र-पुस्तकालय वर्ग-पुस्तकालय से अच्छा समझा जाता है, क्योंकि इसमें थोड़े ही खर्च में हर तरह के विद्यार्थियों के लिए पुस्तकें लभ्य हो जाती हैं। यहाँ पुस्तकाध्यक्ष को परिश्रम भी कम करना पड़ता है। इस कमरे को भी हर तरह के आकर्षित चित्रों एवं फोटो से सुसज्जित रखना चाहिये जिससे विद्यार्थियों की जिज्ञासा एवं मानसिक शक्ति की उन्नति हो। आदर्श चित्रों तथा सद्वचनों से पुस्तकालय-भवन की दीवारों को सुसज्जित रखना चाहिये। इस पुस्तकालय से एक विशेष लाभ यह है कि इसमें सन्दर्भ की पुस्तकें, मासिक पत्रिकाएँ, समाचारपत्र तथा सचित्र पत्रिकाएँ बालकों को मिलती हैं। निस्सन्देह इसको चालू करने में कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है तो भी इसके लाभ का विचार करके इसकी सभी कठिनाइयाँ नहीं के बराबर हैं। मेरा ख्याल है कि योग्य एवं स्वतंत्र पुस्तकाध्यक्ष इस काम को बहुत सुविधा के साथ सम्पादित कर सकता है।

यदि स्कूल प्रबंध कर सके तो स्कूल में एक शिशु-पुस्तकालय का होना भी कुछ कम आवश्यक नहीं है। इस पुस्तकालय को भी छात्र-पुस्तकालय के अंदर रखना चाहिये। इसमें चुनी हुई सचित्र पुस्तकें, सचित्र चार्ट,

स्थानीय नक्शे, कई-तरह की शिक्षाप्रद तस्वीरें तथा वैसे खेलों के सामान जो घर के अन्दर खेले जाते हैं और जो जल्दी टूटनेवाले न हों तथा ऐसी ही आवश्यक वस्तुएँ रखनी चाहिये। इन सामानों को लड़के, लड़कियाँ तथा शिक्षक अध्ययन के समय भी व्यवहार में ला सकते हैं। इन चीजों से छोटे-छोटे बच्चे पुस्तकालय की ओर आकर्षित होते हैं और उनमें पुस्तकालय से लाभ उठाने की इच्छा पैदा होती है।

प्रधानध्यापक तथा अन्य सहायक शिक्षकों का मुख्य कर्त्तव्य है कि वे पुस्तकालय को सभी प्रकार की आवश्यक पुस्तकों तथा सामग्रियों से सम्पन्न बनाने की चेष्टा करें। हर एक विभाग के प्रधान शिक्षकों को आधुनिक तथा सामयिक पुस्तकों, पत्रों और पत्रिकाओं का ज्ञान रखना चाहिये तथा उनको पुस्तकालय में खरीदने की कोशिश करनी चाहिये। हरएक साल की नई पुस्तकें पुस्तकालय के किसी विभाग में अवश्य खरीदनी चाहिये। लेकिन यह भी ध्यान रखना चाहिये कि जो किताब जिस पुस्तकालय के योग्य हो उसी में वह खरीदी जाय। प्रधानाध्यापक भी हमेशा अपनी शक्ति के अनुसार हर साल नई-नई लेकिन आधुनिक पुस्तकों को खरीदने में सतत सचेष्ट रहें।

प्रधानाध्यापक हमेशा देखते रहें कि शिक्षक तथा छात्र योग्यतानुसार पुस्तकों को अपने व्यवहार में लाते हैं या नहीं। हो सके तो जन-साधारण तथा पुराने छात्रों का ध्यान भी पुस्तकालय की तरफ आकर्षित करना चाहिये कि स्कूल-पत्रिकाओं में वे अपने लेख वगैरह दें और पुस्तकालय की उन्नति का मार्ग सोचें। उन्हें यह भी देखना चाहिये कि केवल पत्र या पत्रिकाओं से लाभ नहीं हो सकता; क्योंकि पूर्वकालिक तथा वर्त्तमान ज्ञान का भण्डार पुस्तकों में भरा पड़ा है। मिल्टन महोदय लिखते हैं—"Books are not absolutely dead things but contain the potency of the author treasuredup for the use of posterity. अर्थात् "पुस्तकें केवल निर्जीव पदार्थ नहीं हैं, परन्तु उनमें उनके रचयिताओं की वह शक्ति संचित रहती है जिसको वे अपने वंशजो के लिए छोड़ जाते हैं।" पुस्तकों को आलमारी के तख्ते पर रख कर पुस्तकालय की शोभा बढ़ाने तथा उनको चाट जानेवाले कीड़ों से बर्बाद कराना ही पुस्तकालय का उद्देश्य

नहीं वरन् उनका अध्ययन करके उनसे लाभ उठाना ही उनकी सार्थकता है।

यही ढाँचा प्रायः कालेज-पुतस्कालयों का भी होना चाहिये। स्कूल-पुस्तकालय से विशेषता उसके आकार में ही होती है। निश्चय ही कालेज-पुस्तकालय का आकार स्कूल-पुस्तकालय से बहुत बड़ा होता है। कालेजों में उच्च स्तर के चिन्तन तथा प्रयोगों से सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तकों का रहना अत्यन्त आवश्यक है। वहाँ यदि विभागीय पुस्तकालय रहें तो अधिक छात्रों को अधिक सुविधा हो सकती है। उदाहरणार्थ, इतिहास, दर्शन, साहित्य, गणित आदि के अलग-अलग विभागीय पुस्तकालय रहें तो छात्र अपने-अपने विषयों की पुस्तकें सुविधापूर्वक ले सकते हैं। स्कूल-पस्तकालयों में यह आवश्यक है कि शिक्षक या पुस्तकाध्यक्ष पुस्तकों में लिखे गूढ़ विषयों को लड़कों को समझाएँ और पुस्तकालय के उपयोग में उनकी सहायता करें। कालेज-पुस्तकालय के उपयोग में इस चीज की आवश्यकता नहीं है। हाँ, वर्ग में पढ़ाते समय अध्यापक छात्रों को अवश्य बता दें कि अमुक विषय या पाठ को अधिक स्पष्टता तथा पूर्णता से समझने के लिए वे पुस्तकालय से कौन-सी पुस्तकें पढ़ें।

गाँव का पुस्तकालय

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

जैसे अँधेरे घर में दीपक; उसी तरह गाँव में पुस्तकालय। घर सूना, यदि दीपक न हो; गाँव सूना यदि पुस्तकालय न हो। सुन्दर घर में सुन्दर दीपक, सोने में सुगन्ध। सुखी गाँव में सम्पन्न पुस्तकालय—सोने की अँगूठी में हीरे का नग।

आज के गन्दे, बदबूदार, बेढंगे, बेतरतीब, असुन्दर, विशृंखलित गाँव का नवसंस्कार करना होगा। उसे नए सिरे से बसाना होगा, उसे स्वच्छ, निर्मल, हवादार, सुन्दर, सुसंगठित बनाना होगा। मेरी कल्पना के उस गाँव के केन्द्रविन्दु में पुस्तकालय है। केन्द्र बिना वृत्त कैसा? यदि मेरी उस कल्पना के गाँव से आप पुस्तकालय हटा दें, फिर उस गाँव से मेरी कोई दिलचस्पी नहीं रह जाती है।

पुस्तकालय-पुस्तकालय की रट है, किन्तु, पुस्तकालय का क्या अर्थ? पुस्तकालय सिर्फ उस घर का नाम नहीं है, जिसमें बड़ी-बड़ी आलमारियों में पुस्तकें सजाकर रखी गई हों। वकीलों के घर में न आलमारियों की कमी है न पुस्तकों की। किन्तु मेरी परिभाषा के अनुसार वह पुस्तकालय नहीं है। पुस्तकालय एक सांस्कृतिक केन्द्र है जिससे ज्ञान की किरणें फूटकर जीवन को ज्योतिर्मय, जगमग और रंगीन बनाती रहती हैं।

पुस्तकालय का नाम ही बताता है कि उसका मुख्य उपादान है पुस्तक। और पुस्तक क्या है? मोटे-पतले कागज पर काले-पीले अक्षरों में कुछ छपवा दो, जिल्द लगा दो—सुनहरी जिल्दें क्यों न हों—वे पुस्तक नहीं कहला सकतीं। जिसे अमरता प्राप्त नहीं, वह पुस्तक नहीं। वेद. सहस्राब्दियों के बाद भी जीवित हैं। वेद पुस्तक हैं; रामायण महाभारत पुस्तक हैं, पुराण और जातक पुस्तक हैं, चरक और सुश्रुत पुस्तक हैं, शकुन्तला और उत्तरा राम-चरित पुस्तक हैं सूरसागर और रामचरित-मानस पुस्तक हैं। हजारों-सैकड़ों वर्षों

के संघर्षों और उथलपुथल के बाद भी वे जीवित हैं। पुस्तक अमर है। अमरता-प्राप्त या अमरता पाने योग्य पुस्तकों का संग्रह ही पुस्तकालय है। जहाँ ऐसी पुस्तकें नहीं, उस पुस्तकालय को कूड़ाघर समझो या कीड़ाघर।

गाँव में पहले से गन्दगी अधिक है। वहाँ कृपा कर कूड़ा मत ले जाइए। गाँव में कीड़ों की कमी नहीं, कुछ नए दिमागी कीड़े ले जाकर उन्हें और शीघ्र क्यों नष्ट करना चाह रहे हैं आप?

मैंने देखा है, पुस्तकालय के नाम पर आजकल देहातों में कूड़ाघर ही खोले जा रहे हैं। सस्ते उपन्यास, गन्दी कविताएँ, निकम्मे गद्यग्रंथ, विज्ञान आदि के नाम पर न समझने योग्य कुछ पुस्तिकाएँ, फिर विषैली मासिक पत्रिकाएँ, बासी साप्ताहिक और एकाध कुसम्पादित दैनिक—इन्हीं उपादानों के आधार पर कायम किये गए पुस्तकालय गाँव में जीवन और ज्योति का नहीं; कलह, विलासिता और मृत्यु का वातावरण उपस्थित कर रहे हैं। गाँव के थोड़े पढ़े-लिखे युवक, क-ट-प करनेवाली युवतियाँ ज्ञान की पिपासा से आतुर होकर इन पुस्तकालयों की शरण में आती हैं और इनसे अमृत न पाकर विष पाती और प्राण देती हैं।

पुस्तकालय को लेकर गाँव में मैंने प्रायः कलह होते देखा है। पहले लड़ने के लिए खेत की मेंड़ें थीं, अब पुस्तकालय का मंत्रित्व भी है। ऐसे पुस्तकालय गाँव में न हो तो अच्छा। जो दीपक घर में आग लगा दे, उस दीपक से अन्धकार भला।

अपनी कल्पना के गाँव में मैं जिस पुस्तकालय की स्थापना चाहता हूँ और जिसे गाँव के जीवन का केन्द्र मानता हूँ उसके लिए दूरदर्शिता चाहिये, अध्यवसाय चाहिये। रोम एक दिन में नहीं बना, पुस्तकालय भी एक दिन में नहीं बनता। रोम सब नहीं बना सकते, पुस्तकालय भी कोई-कोई बना सकता है।

आजकल सरकारी पुस्तकालय की स्थापना या उसकी सहायता की की बातें प्रायः सुनी जाती हैं। कुछ सरकारें पुस्तकालय के लिए पुस्तकें तैयार कराने को भी सोच रही हैं। सरकारें पुस्तकालय की मदद करें, बड़ी अच्छी

बात। किन्तु मैंने देखा है, सरकार की इस सहायता का दुरुपयोग भी कम नहीं होता। बहुत-से लेखक हैं, जिनकी न चलने लायक पुस्तकों की खपत का जरिया पुस्तकालयों को मिलनेवाली यह सहायता ही है! जिन्हें बाजार में न पूछा गया, उन्हें पुस्तकालय पर थोप दिया गया। सरकार के आर्डर पर तैयार की गई चीजों की बिक्री पर भी सन्देह करने की गुंजायश है। सरकारी चीजें बहुत बदनाम हो चुकी हैं—इस चोरबाजारी के जमाने में तो और! इसलिए सरकारें पुस्तकें लिखाएँ, यह विषय पुस्तकालय के हित की दृष्टि से विचारणीय है। हाँ, प्रामाणिक ग्रंथों का सस्ता संस्करण निकाल कर वह पुस्तकालयों को दे—यह कहीं अच्छा है।

पुस्तकालय के लिए पुस्तकों का चुनाव—सबसे कठिन कार्य है। गाँव में ऐसे लोगों का अभाव होना स्वाभाविक है। क्यों न कोई साहित्यिक संस्था विद्वानों की एक समिति बनाए और वे लोग ५००), १०००), ५०००), १००००) की कीमत की उत्तमोत्तम पुस्तकों की सूची तैयार कर दें। उस सूची में हर वर्ष नई पुस्तकों की वृद्धि होती रहनी चाहिये।

जब तक ऐसा नहीं होता, गाँव के पढ़े-लिखे लोग स्वयं पुस्तकों का चुनाव करें। अपने अभावों का ज्ञान उन्हें है; रुचि और प्रवृत्ति से भी वे अपरिचित नहीं। जैसी-तैसी पुस्तकों से बने पुस्तकालय की अपेक्षा उसका नहीं होना कहीं अच्छा है—ऐसा सोचकर जब वह चुनाव करेंगे, तो गलती की कम गुंजायश रहेगी।

मेरी कल्पना के गाँव में जो पुस्तकालय है वह महर्षियों, विद्वानों, कलाकारों, वैज्ञानिकों की उत्तमोत्तम कृतियों से भरा-पूरा है। दिनभर के कामधन्धों के बाद पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों का झुंड पहुँचता है। पुस्तकालय के बरामदे और अँगनाई में बैठने की जगहें हैं। पुस्तकालय फूलों और लताओं से वेष्टित है। उन फूलों और लताओं से बनी कई कुंजें भी हैं। लोग उन जगहों में अपनी-अपनी रुचि के अनुसार पुस्तकें लेकर बैठ जाते हैं। पढ़ने-पढ़ाने के बाद फिर सब पुस्तकालय के मुख्य भवन में एकत्र होते हैं। वहाँ संगीत होता है, नृत्य होता है—फिर किसी विषय पर प्रवचन या विवाद होता

है। अन्त में घर जाने के पहले लोग रात में या दिन में फ़ुर्सत के वक्त पढ़ने के लिए पुस्तकें ले जाने में नहीं चूकते।

पुस्तकालय की पुस्तक को गन्दा कर देना, उसपर कुछ लिखना या निशान बनाना, उसके चित्रों को नष्ट करना, आजकल की इन बुरी आदतों का मेरे उस गाँव में नाम-निशान भी नहीं है। अपने घर के दीपक को जिस प्रकार स्वच्छ और ज्योतिर्मय बनाये रखते हैं, गाँव के पुस्तकालय को उसी तरह सम्पन्न और सर्वांगपूर्ण बनाने में उस गाँव के लोग सतत सचेष्ट हैं। गाँव के पुस्तकालय के लिए एक सुन्दर पुस्तक मँगा लेने पर उन्हें वैसा ही आनंद प्राप्त होता है जैसे अपने-परिवार में एक बच्चे की वृद्धि होने पर।

मेरी कल्पना का गाँव अमर हो, उस गाँव का पुस्तकालय अमर हो, पुस्तकालय की अमर पुस्तकें ग्रामवासियों को अमरता प्रदान करती रहें!

पुस्तकालय-संचालन

श्री शि० रा० रंगनाथन, एम० ए०, एल० टी०, एफ० एल० ए०

भवन तथा सामग्री

स्थान

पुस्तकालय के लिए कोई केन्द्रीय स्थान चुना जाय जहाँ से उस प्रदेश के प्रत्येक भाग में सरलता से जाया जा सके। वह उस स्थान के निकट होना चाहिए जहाँ स्थानीय जनता का अधिकांश अपने जीवन के दैनिक कार्यों के लिए बहुधा आया करता हो। प्राचीन समय में जब कि धर्म की प्रधानता थी और मन्दिर दैनिक विश्रामस्थान थे, पुस्तकालय मन्दिरों में अथवा उनके सामने स्थापित किए जाते थे। आधुनिक समय में इलाके का सबसे अधिक कामकाजी भाग प्रधान बाजार होता है। वहीं इलाके के मुख्य-मुख्य मार्ग आकर मिलते हैं। अतः पुस्तकालय का स्थान ऐसे ही क्षेत्र में चुनना चाहिए। कुछ लोगों की यह धारणा है कि पुस्तकालय इलाके के बाहरी भागों में होना चाहिए, जहाँ शान्ति का एकच्छत्र साम्राज्य हो, यह धारणा अत्यन्त भ्रमपूर्ण है। उपर्युक्त सिद्धान्त का अन्ध अनुकरण उस समय किया जाता था जब पुस्तकालय केवल कुछ चुने हुए लोगों के लिए था। आज जब पुस्तकालय-शास्त्र का द्वितीय सिद्धान्त जोरों से घोषित करता है कि "पुस्तकें सबके लिए हैं" तब यह आवश्यक है कि पुस्तकालय "इलाके के बीच में स्थापित हो। मैंने यह देखा है कि यूरोप के अधिकांश प्रदेशों के लोक-पुस्तकालय ठीक व्यापार-केन्द्र में स्थापित हुआ करते हैं। मैंने यह भी देखा है कि गृहिणियाँ जब अपने हाथ में थैले लिए हुए बाजार जाती हैं, तब वे कुछ समय के लिए पुस्तकालय में भी चली जाती हैं और अपनी मनचाही पुस्तकें ले लेती हैं। मैंने यह भी देखा है कि बच्चे जब अपने-अपने स्कूलों से विदा होते हैं तब वे पुस्तकालयों में दौड़कर चले जाते हैं और घर चलने के पहले पुस्तकों से अपने थैलों को भर लेते हैं। मैंने

कारखानों के मजदूरों को और आफिसों के कर्मचारियों को अपना काम समाप्त कर लेने के बाद बाजार के काफी-हाउस में प्रवेश करते देखा है। उसी के बाद वे अपने घर चलने के पहले, निकट के लोक-पुस्तकालय में चले जाते और ग्रन्थों को लिए हुए अपने घर वापस लौटते हैं। लिसबन में मैंने 'उद्यान-पुस्तकालय' देखने का अवसर प्राप्त किया है। वह कारखानों के पास एक बड़े पेड़ के नीचे स्थित था। दोपहर की छुट्टी के समय कारखानों के कर्मचारी अधमैले वस्त्रों को पहने वहाँ आते। पुस्तकों की छानबीन करते और अपनी मन-चाही पुस्तकें पढ़ने के लिए घर ले जाते। इन प्रत्यक्ष प्रमाणों से यह भलीभाँति प्रमाणित हो जाता है कि पुस्तकालय का स्थान इलाके का 'हृदय' होना चाहिये जहाँ सर्वदा जनता का जमघट लगा रहता हो। किसी भी अवस्था में वह स्थान ऐसा न होना चाहिये जो बस्ती से दूर हो और सुनसान हो।

भवन

पुस्तकालय का आकार-प्रकार सेवा की जानेवाली जनसंख्या पर निर्भर है। यहाँ मैं एक छोटे पुस्तकालय-भवन का वर्णन करूँगा, जो प्रायः २०,००० जनसंख्या की सेवा कर सकता है और जिसमें प्रायः १०,००० ग्रन्थों को स्थान मिल सकता है। निम्नलिखित चित्र उसे स्पष्ट करता है:—

अ—कार्यालय

आ—सायकिल-स्टैंड आदि

इ—खुला आँगन

ई—प्रवेश-उपगृह

उ—दानादान-फलक (लेन-देन -टेबुल)

ऊ—सूची-आधार (आलमारियाँ)

ए—वाचनालय

ऐ—चयन-भवन

आधुनिक पुस्तकालय-प्रथा के अनुसार पाठकों को फलकों तक जाने की अनुमति दी जाती है। वे वहाँ स्वतन्त्रतापूर्वक जाते हैं और पुस्तकों की छानबीन स्वयं करते हैं। पुस्तकालय के अन्दर इस स्वतन्त्रता की सिद्धि के लिए यह आवश्यक है कि पुस्तकालय में प्रवेश करने तथा बाहर निकलने के द्वार पर कठिनतम नियन्त्रण और दृष्टि रक्खी जाय। कोई भी व्यक्ति निर्धारित द्वार के अतिरिक्त और किसी भी मार्ग से न तो प्रवेश कर सके और न बाहर निकल सके। इस निर्धारित द्वार को यांत्रिक साधनों के द्वारा पुस्तकालय के कर्मचारी नियन्त्रित रखते हैं। इन यान्त्रिक साधनों को परिचालित कर पुस्तकालय के कर्मचारी जब किसी पाठक को जाने की अनुमति देंगे तभी वह जा सकता है, अन्यथा नहीं। पुस्तकालय के कर्मचारी भी जबतक इस बात का निर्णय न कर लेंगे कि पुस्तकालय की कोई वस्तु अनधिकार नहीं हटाई जा रही है तबतक वे उस द्वार को खुलने नहीं देंगे। इस प्रकार पुस्तकालय से किसी वस्तु की चोरी सर्वथा अशक्य ही बना दी जाती है। इसी प्रकार बाहरी दीवार के सभी खुले भाग, अर्थात् दरवाजे, खिड़कियाँ और हवाकश आदि तार की जालियों से ढके होने चाहिये। इन जालियों के छिद्र इतने छोटे होने चाहिये कि उनके द्वारा कोई भी ग्रन्थ, पुस्तिका आदि बाहर नहीं जा सकें।

इसके अतिरिक्त एक बात और भी ध्यान देने की है। पाठकों का झुण्ड सर्वदा ही ग्रन्थफलकों के आसपास घूमता रहेगा और ग्रन्थों की छानबीन करता रहेगा। इसलिए फलकों के बीच का मार्ग कम से कम १॥ गज चौड़ा होना चाहिये।

पुस्तकालय की सतह

पुस्तकालय में ग्रन्थों को इधर-उधर एक भाग से दूसरे भाग तक अर्थात् चारों ओर ले जाना हो तो छोटी-छोटी गाड़ियों के द्वारा ले जाना आवश्यक है। बार-बार उनका उतारना चढ़ाना बहुत कठिन और समय का अपव्यय करनेवाला होगा। अतः सारे पुस्तकालय की भूमि (फर्श) समतल होनी चाहिये। उसमें देहली, चौखट आदि के रूप में किसी प्रकार की रुकावट न होनी चाहिये। पाठकों की दृष्टि से भी यह वाञ्छनीय है। सम्भव है, पाठकों में कुछ ऐसे चंचलमन अथवा ध्यनमग्न लोग हों कि वे उन रुकावटों को ध्यान से न देखें और उनसे टकराकर गिर पड़ें।

वायुसंचार और प्रकाश

पुस्तकालय में खिड़कियाँ इस प्रकार रक्खी जायँ और उनकी योजना इस प्रकार हो कि चयन-भवन तथा वाचनालय में पर्याप्त प्राकृतिक प्रकाश प्राप्त हो सके और वहाँ शान्ति के अतिरिक्त किसी समय कृत्रिम प्रकाश की आवश्यकता न पड़े। इस व्यवस्था से स्वयं स्वतन्त्र वायुसंचार का भी प्रबन्ध हो सकता है। भारत जैसे उष्ण देश में आकाश-प्रकाश (स्काईलाइट) पर निर्भर रहना मूर्खतापूर्ण है। हमें सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता है किन्तु सूर्य का प्रकाश उष्णतारहित नहीं हो सकता, अतः यह स्वाभाविक है कि प्रकाश के साथ उष्णता भी साक्षात् पुस्तकालय में आयगी और पाठक तथा ग्रन्थ दोनों के लिए हानिकारक सिद्ध होगी। इस प्रकार की उष्णता के आते ही क्षणभर में पाठक व्याकुल हो जायँगे, ग्रन्थ सूखकर टेढ़े-मेढ़े हो जायँगे और उनका जीवनकाल अत्यन्त अल्प हो जायगा। सूर्य के प्रकाश तथा उष्णता का सीधे प्रवेश हो, यह अनुचित है। इस अनौचित्य से यह भी सूचित हो जाता है कि चयनभवन पूर्व से पश्चिम की ओर फैला होना चाहिये। उसकी सब खिड़कियाँ उत्तरी तथा दक्षिणी दीवारों में होनी चाहिये। चयन-भवन में ग्रन्थों की आलमारियाँ एक छोर से दूसरे छोर तक समानान्तर पंक्तियों में लम्बतर भित्तियों से समकोण के रूप में रक्खी जानी चाहिये। इसके अति-

रिक्त, आकस्मिक बवण्डर-तूफान से ग्रन्थ गीले न हो जायँ तथा सूर्य की किरणें सीधे उनपर न पड़ें, इसलिए ग्रन्थों की आलमारियों के खुले सिरे उत्तरी और दक्षिणी दीवारों के बहुत निकट न रक्खे जायँ । इसके विपरीत, चयन-भवन की पूरी लम्बाई तक, ग्रन्थों की आलमारियों और दो लम्बी दीवारों के बीच, कम से कम २॥ फीट चौड़ा मार्ग अवश्य छोड़ा जाना चाहिये । इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यदि दो पार्श्वमार्गों के बदले एक ही मध्यवर्ती मार्ग रक्खा जाय तो स्थान की पर्याप्त बचत हो । किन्तु, इस विषय में, सूर्य की सीधी किरणों और वर्षा के द्वारा की जानेवाली हानियों को रोकना स्थान की बचत की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाना चाहिये ।

सौन्दर्य-शास्त्र

लोक-पुस्तकालय यथासंभव रमणीय होना चाहिये । और वहाँ प्रत्येक शक्य उपायों के द्वारा स्वच्छता, शान्ति और सुन्दरता से परिपूर्ण वातावरण उत्पन्न करना चाहिये । चित्रों के लिए दीवारों में पर्याप्त स्थान होना चाहिये और फूलों के गमलों के लिए भी यथा-संभव काफी जगह होनी चाहिये । सुन्दर परदे आदि लगाने की भी व्यवस्था होना चाहिये । दीवारें अच्छे रंगों में रंगा होना चाहिये । उदाहरणार्थ—चयनभवन में मुक्ताधूमिल रंग हो और वाचनालय में हरा आदि कोई शान्तिप्रद रंग होना चाहिये । फर्श चिकनी होनी चाहिये और उसमें छिद्र या रेखाएँ न हों जिनमें किसी प्रकार की धूल आदि जम सके ।

चयन-भवन

चयन-भवन के विस्तृत विवरण के पहले एकाकी ग्रन्थ—आलमारी (रेक) का विस्तृत विवरण करना अधिक उचित होगा । इसमें चार विभाग होते हैं । दो विभाग दो ओर होते हैं । दोनों मुखभाग चद्दर या जाली के विभाजक द्वारा विभक्त होते हैं । वे विभाग तीन खड़े तख्तों के द्वारा बनाये जाते हैं जिनका प्रमाण ७′ × १॥′ × १″ होता है । प्रत्येक विभाग में साधारणतः ३′ × ४॥″ × १″ प्रमाण के पाँच परिवर्तनीय फलकों का स्थान होता है । उनके अतिरिक्त दो जड़े हुए (स्थिर) फलक होते हैं जिनमें एक तो

तल से ६" ऊँचा होता है और दूसरा सिरे से ६" नीचे होता है। इस प्रकार उन चार विभागों में से प्रत्येक में ७ फलक होते हैं और एकाकी आलमारी में कुल २८ फलक होते हैं। इनमें ८४ लम्बे फीटों का स्थान होता है और उनमें प्रायः १,००० ग्रन्थ रक्खे जा सकते हैं। एकाकी आलमारी का बाहरी प्रमाण ७'×१॥'×६॥' होता है। प्रत्येक एकाकी आलमारी के सामने ४॥' चौड़ा मार्ग होता है। इस बात का हमें ध्यान रखना चाहिये। इस प्रकार प्रत्येक १,००० ग्रन्थों के लिए ३६ वर्ग फीट भूमि की आवश्यकता पड़ती है। हम यह कह सकते हैं कि १ वर्ग फुट भूमि २५ ग्रन्थों के बराबर है। १२,००० ग्रन्थों के लिए १२ आलमारियों की आवश्यकता पड़ती है। उन १२ आलमारियों के लिए भी, लम्बी दीवारों से सटे हुए खुले भाग को बन्द करते हुए, ५०० वर्ग फीट को आवश्यकता पड़ती है। यदि हम मार्गों का भी ध्यान रक्खें तो १ वर्ग फुट १५ ग्रन्थों के बराबर होगा और १२,००० ग्रन्थों के लिए ८०० वर्ग फीट भूमि की आवश्यकता पड़ेगी। इस क्षेत्रफल को प्राप्त करने का एक मार्ग तो यह है कि चयन-भवन का प्रमाण ७८'×११' रक्खा जाय और दूसरा प्रकार यह है कि ४२'×१८' रक्खा जाय।

वाचनालय

प्रत्येक पाठक के लिए १२ वर्ग फीट भूमि की आवश्यकता होती है। इस क्षेत्रफल में मेज, कुर्सी और कुर्सी के पीछे की भूमि इन सबका समावेश हो जाता है। वाचनालय में ४० पाठकों के समूह का समावेश करने के लिए ४८० वर्ग फीट भूमि की आवश्यकता होती है। अनुसन्धान-ग्रन्थों को वाचनालय में ही रखना श्रेयस्कर है। उनके लिए दो ग्रन्थ-आलमारियाँ अपेक्षित हैं। यदि उन दोनों को समानान्तर रखा गया तो उनके सामने के मार्ग तथा उनके सिरे और दीवारों के बीच के मार्ग को एकत्र कर प्रायः १०० वर्ग फीट भूमि की आवश्यकता पड़ेगी। समाचारपत्र के आधार तथा लेन-देन-टेबुल के सामने की खुली भूमि के लिए प्रायः ४०० वर्ग फीट स्थान की अपेक्षा होती है। वाचनालय की पूरी लम्बाई भर व्याप्त मध्यवर्ती मार्ग के लिए १२०

वर्ग फीट भूमि की आवश्यकता होती है। इस प्रकार मोटे तौर पर ४० पाठकों के वाचनालय के लिए १,१०० वर्गफीट क्षेत्रफल की आवश्यकता होती है। इस क्षेत्रफल को प्राप्त करने के लिए ६४१॥' × १८' प्रमाण का पूर्व से पश्चिम की ओर फैला हुआ भवन होना चाहिये।

लेन-देन-टेबुल

लेन-देन-टेबुल अथवा कर्मचारी-घेरा प्राय: १०० वर्ग फीट भूमि में व्याप्त होना चाहिये। इसे हम पूर्व से पश्चिम की ओर ११ फीट तथा उत्तर से दक्षिण की ओर ६ फीट विस्तृत बनाकर उपयोग के योग्य बना सकते हैं। इस घेरे को प्रवेश-उपगृह के अन्दर की ओर बनाया जा सकता है। यह प्रवेश-उपगृह १८' × १७' प्रमाण का होता है। यह घेरा वाचनालय की पूर्व से पश्चिम की दीवारों में से किसी एक के मध्यभाग से बाहर निकला होना चाहिए। इस प्रकार लेन-देन-टेबुल के प्रत्येक पार्श्व में आने-जाने के लिए ३ फीट चौड़ा मार्ग निकल आयगा। निरीक्षण की दृष्टि से यह बहुत अधिक सुविधाजनक होगा यदि लेन-देन-टेबुल को वाचनालय के अन्दर की ओर २ फीट घुसा हुआ बनाया जाय। इसका परिणाम यह होगा कि लेन-देन-टेबुल प्रवेश-उपगृह के केवल ७ फीट भाग को ही अधिकृत करेगा। फलतः प्रवेश-उपगृह में प्रदर्शनखानों के लिए तथा स्वतन्त्र आवागमन के लिए ११' × १७' अथवा प्रायः १६० वर्ग फीट स्वतन्त्र भूमि उपलब्ध हो सकेगी।

खिड़कियाँ

चयन-भवन के प्रत्येक प्रतिमार्ग में दोनों सिरों पर एक-एक खिड़की होनी चाहिये। प्रत्येक खिड़की ३' + ५' प्रमाण की हो सकती है। खिड़की का दासा (सिल) भूमि से २॥, ऊँचा होना चाहिये। खिड़कियों के दासों को लकड़ी के बनाना अधिक सुविधाजनक होगा, क्योंकि लकड़ी के बने होने पर वे अस्थायी रूप से ग्रन्थों के लिए मेज का काम दे सकते हैं। दीवारों के बाहरी ओर जड़े हुए जाली के झरोखों के अतिरिक्त प्रत्येक खिड़की में चौखट से लटके हुए शीशे के किवाड़ भी होने चाहिये और वह अन्दर की ओर खुलने

चाहिये। वाचनालय की खिड़कियाँ भी इसी प्रकार दूरी आदि का ध्यान रखते हुए लगाई जानी चाहिये। प्रवेश-उपगृह में भी पार्श्व की दोनों दीवारों में दो खिड़कियाँ होनी चाहिये।

पुस्तकालय का समय

पुस्तकालय कब और कितनी देर खुला रखा जाय, इस विषय में आदर्श तो यही है कि उसे उतनी देर और तबतक खुला रक्खा जाय जबतक मनुष्य जगे हुए हों और उनका वहाँ आना सम्भव माना जा सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि उसे प्रातःकाल ६ बजे से रात के १० बजेतक खुला रखना चाहिये। किन्तु आज हमारे शहरों और गाँवों में अध्ययन का अभ्यास उतना बढ़ा हुआ नहीं है, और ग्रन्थालय का उपयोग कर सकने-वाले पाठकों की भी संख्या सर्वथा नगण्य है। अतः उचित मार्ग तो यह है कि प्रदेश-विशेष की आवश्यकताओं के अनुसार पुस्तकालय के समय को भी परिवर्तित किया जाय। उदाहरणार्थ, कृषिप्रधान गावों में प्रातःकाल के पहले घंटों में और शाम के अन्तिम घंटों में खेतों आदि में लोग व्यस्त रहेंगे। अतः ऐसे स्थानों में, दिन के मध्यभाग में पुस्तकालय को खुला रखना उचित होगा। उद्योग-प्रधान केन्द्रों में पुस्तकालय को सूर्यास्त के बाद कुछ समय तक खुला रखना अधिक सुविधाजनक होगा। पुस्तकालय के समय को निश्चत करने का सर्वश्रेष्ठ मार्ग तो यह है कि स्थानीय जनता की सम्मति ली जाय और मौसिम के अनुसार उसमें परिवर्तन किया जाय जिससे अधिक से अधिक जनता को सरलता तथा सुविधा प्राप्त हो सके।

कार्य-प्रणाली

उपोद्घात

प्रबन्ध-कार्य-सम्बन्धी अनेक कार्य तो ऐसे हैं कि वे पुस्तकालय में और अन्य कार्यालयों में सर्वथा अभिन्न होते हैं। किन्तु कुछ विशिष्ट कार्य भी होते हैं जो कि केवल उन्हीं में पाये जाते हैं। उन विशिष्ट कार्यों में पुस्तक, उनका चुनाव; क्रय, मूल्य चुकाना, संग्रह में उनका समा-वेश अथवा आगम, उपयोगार्थ उनका प्रस्तुतीकरण और उनका

संचार आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इन कार्यों के सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि उपस्थापित ग्रन्थों में और सामाजिक प्रकाशनों में बड़ा अन्तर है। सामयिक-पत्रों के सम्बन्ध में यह बात है कि समस्त ग्रन्थ एकदम नहीं प्रकाशित होता। यह क्रमशः खण्डों में प्रकाशित होता है। ये खण्ड कादाचित् ही नियमपूर्वक प्रकाशित होते हैं। कारण, अधिकतर इनका प्रकाशन तथा वितरण बहुत ही अनियमित होता है। ज्योंही इनका एक भाग पूर्ण होता है त्योंही मुखपृष्ठ तथा अनुक्रमणिका आदि प्राप्त होते हैं। उसी समय उन सब खण्डों को एकत्र कर एक जिल्द के रूप में प्रस्तुत कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान देने योग्य है कि उनके खण्ड ज्यों-ज्यों पुस्तकालयों में आते जायँ त्यों-त्यों उन्हें उसी रूप में उपयोग के लिए प्रस्तुत कर देना आवश्यक है। यह कदापि उचित नहीं कि उन्हें योंही उपयोग किए बिना, एकत्र किया जाय और खण्ड के पूर्ण हो जाने के बाद जिल्द के रूप में ही उपस्थित किया जाय।

ग्रन्थों का चुनाव

पुस्तकालय-प्रबन्ध के विशिष्ट भाग का प्रथम कार्य ग्रन्थों का चुनाव है। इसमें तीन बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है:—

१. माँग

२. परिपूर्ति (सप्लाई) अथवा बाजार में ग्रन्थों की उपलब्धि का विस्तार और रूप। अच्छे कागजों पर बड़े टाइपों से छपे हुए चित्रयुक्त भव्य संस्करणों को प्रथम स्थान देना आवश्यक होता है।

३. कुल उपलब्ध अर्थ और योग्य अनुपात जिसके अनुसार उसका विभिन्न विषयों के लिए विभाजन किया जा सके। इस सम्बन्ध में यह भी विचारणीय है कि पहले से विद्यमान संग्रह कितना पुष्ट अथवा निर्बल है। और किस विषय को अधिक पुष्ट अथवा समबल बनाने की आवश्यकता है।

कार्य-प्रणाली

उपर्युक्त तीन बातों के द्वारा निर्धारित सीमा के अन्दर ग्रन्थों के चुनाव की आधार-समग्रियों का विधिवत् पर्यालोचन किया जाना चाहिये। ये आधार-सामग्रियाँ समय-समय पर प्राप्त हुआ ही करती हैं । ग्रन्थों का चुनाव कर चुकने के बाद प्रत्येक चुने हुए ग्रन्थ आदि पदार्थ के लिए एक ग्रन्थ-चुनाव-पत्रक प्रस्तुत करना चाहिये । इसका मोटी तौर पर वर्गीकरण भी करना चाहिये और उसका श्रेणीचिह्न भी परीक्षणात्मक रूप से उसपर अंकित किया जाना चाहिये । इन पत्रकों को विभिन्न अनुक्रमों के अनुसार, विभिन्न विषयों का ध्यान रखते हुए वर्गीकृत क्रम में रखना चाहिये । एकत्र किए हुए पत्रकों के सम्बन्ध में सुविधानुसार बीच-बीच में विचार किया जाना चाहिये और निश्चित चुनाव कर पुस्तकालय-समिति का अनुमोदन प्राप्त कर लेना चाहिये ।

उद्गम-स्थान

ग्रेटब्रिटेन के 'बुकसेलर' तथा 'पब्लिशर्स सर्कुलर' और युनाइटेड स्टेट्स का 'पब्लिशर्स वीकली' ये प्रधान उद्गमस्थान कहे जा सकते हैं। ये साप्ताहिक हैं। भारत के प्रान्तीय ग्रन्थ रजिस्ट्रारों के द्वारा प्रकाशित प्रकाशनों की सूचियाँ (लिस्ट), ग्रेटब्रिटेन का 'इंग्लिश केटलॉग' तथा 'युनाइटेड स्टेट्स केटलॉग' वार्षिक रूप में उपलब्ध हैं। विभिन्न प्रकाशकों के एवं पुस्तकविक्रेताओं के सूचीपत्र । ग्रन्थों में दी हुई वाङ्मय सूचियाँ; स्वतन्त्र वाङ्मय-सूचियाँ; सामयिक पत्रों में दी हुई समालोचनाएँ। गवर्न्मेण्ट तथा राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा निश्चित समयों पर अथवा बीच-बीच में प्रकाशित कतिपय ग्रन्थ-चुनाव-सूचियाँ । उदाहरणार्थ इण्डियन ब्यूरो ऑफ एजुकेशन द्वारा प्रकाशित भारतीय हाई स्कूलों में पुस्तकालय नाम की संख्यावाली पुस्तिका को उपस्थित किया जा सकता है। अमेरिकन लायब्रेरी असोसिएशन द्वारा आरम्भ किए हुए बाल-पुस्तकालय वार्षिक ग्रन्थों में चिल्ड्रेन्स लायब्रेरी इयरबुक, प्रतिवर्ष प्रकाशित की जानेवाली वाङ्मय सूचियाँ तथा

ब्रिटिश लायब्रेरी असोसिएशन द्वारा प्रकाशित 'युवकों के लिए ग्रन्थ' (बुक्स फॉर यूथ) उपर्युक्त सहायताओं के द्वारा पुस्तकालय के लिए इच्छानुसार अभीष्ट ग्रन्थों का चुनाव किया जा सकता है।

ग्रन्थ-संचयन-पत्रक

ग्रन्थ-संचयन-पत्रकों के निर्माण के लिए सफेद ब्रिष्टल वोर्डों का उपयोग उचित है। इन्हें ८ प्वाइण्ट टाइपों में छपाना चाहिये। इनके शीर्षक निम्नलिखित होने चाहिए—

अग्र

आगम सं० | दान सं० | विनिर्गम सं०

वर्ग सं०

शीर्षक

नाम

आकार | विवरण | संस्करण | वर्ष

प्रकाशक | प्रकाशित मूल्य

ग्रन्थमाला, इत्यादि

समालोचना

अनुसन्धान

पृष्ठ

विक्रेता

	तिथि	हस्ताक्षर
संचित		
स्वीकृत		
आर्डर		
प्राप्त		
मूल्यचुकाया		
आगम-लेख		
काटा		
वर्गीकृत		
सूचीकृत		
फलकीकृत		
जिल्द बाँधा		
विनिर्गम (बाहर गई)		

मूल्य
भारतीय
विदेशी
आर्डर सं०
वाउचर सं०

ग्रन्थ-आदेश (आर्डरिंग)

आज भारतीय पुस्तकालयों के लिए ग्रन्थों के आदेश देने का कार्य और देशों की अपेक्षा अधिक कठिन है। आज भारतीय पुस्तकालयों में विशेष कर के यूरोप के ग्रन्थ-उनमें भी इंग्लिश तथा अमेरिकन ग्रन्थ ही बहुतायत से पाये जाते हैं। इसलिए ग्रन्थों का बाजार यहाँ से हजारों मील दूर स्थित लन्दन तथा न्यूयार्क में है। फलतः भरतीय पुस्तकालय न तो

ग्रन्थों को पहले से देखकर ही चुन सकते हैं और न विभिन्न संस्करणों के गुण-दोषों की परीक्षा कर सकते हैं। किसी ग्रन्थ का कोई नया संस्करण प्रकाशित हुआ। अब यह निर्णय करना बड़ा ही कठिन होता है कि पुस्तकालय में विद्यमान संस्करण की अपेक्षा इसमें कोई अन्तर है अथवा नहीं। अतः भारतीय पुस्तकालयों के ग्रन्थ-आदेश-विभाग का उत्तरदायित्व यूरोपियन तथा अमेरिनक पुस्तकालयों के उन विभागों की अपेक्षा अत्यन्त अधिक है। उन्हें अपने संग्रह से नए बीजकों को मिलाने में अत्यधिक परिश्रम तथा सावधानता की आवश्यकता है।

भारतीय प्रकाशनों की तो और भी अधिक बुरी हालत है। भारतवर्ष में अब तक प्रकाशन-व्यवसाय का संगठन नहीं हुआ है। पाठ्य पुस्तकों के सिवा ग्रन्थ-विक्रय-व्यवसाय का भी अस्तित्व नहीं है। अनेक ऐसे उदाहरण पाये जाते हैं जहाँ स्वयं ग्रन्थकार ही प्रकाशक तथा विक्रेता का कार्य करता है। सम्भव है, ग्रन्थकार किसी कोने में रहता हो और उसे व्यापारी ढंग का ज्ञान भी न हो। बहुधा यह देखा गया है कि वह आदेश का उत्तर तक नहीं देता।

स्थायी विक्रेता

पुस्तकालयों को ग्रन्थ-प्रकाशकों से साक्षात् खरीदना चाहिए अथवा स्थायी विक्रेताओं से यह विषय विवादास्पद है। भारतीय ग्रन्थों के विषय में यह प्रश्न सरलता से हल किया जा सकता है और उत्तर प्रथम विकल्प के ही पक्ष में मिल सकता है। क्योंकि भारत में अब तक विश्वास पात्र, परिश्रमी और संघटित ग्रन्थ-व्यावसाय का अस्तित्व नहीं है। अतः साक्षात् प्रकाशकों से अथवा ग्रन्थकारों से व्यवहार करना ही एकमात्र उचित मार्ग सिद्ध होता है। यूरोपियन तथा अमेरिकन ग्रन्थों की अवस्था बिलकुल भिन्न ही है। इनके विषय में किसी स्थायी विक्रेता से सम्बन्ध रखना अधिक श्रेयस्कर होता है।

आदेश-दान

अन्तिम रूप से स्वीकृत ग्रन्थ-संचयन-पत्रकों को ग्रन्थकारों का ध्यान

रखते हुए अकाराद्यनुक्रम से व्यवस्थित कर लेना चाहिये और फिर अपने संग्रह से उनका मिलान कर लेना चाहिये जिससे अनिच्छित पुनरावर्तन न हो उन बचे हुए पत्रकों की सहायता से एक आदेश टाइप कर लेना चाहिये और स्थायी विक्रेता के पास भेज देना चाहिये। आदिष्ट ग्रन्थों के ग्रन्थ-संचयनपत्रक अब आदेशपत्रकों के पद को प्राप्त होते हैं और उनके आधार (ट्रे) आदेश-आधार कहे जाते हैं।

प्राप्ति-स्वीकार

जब ग्रन्थ आदि ग्रन्थालय में आएँ तब आदेश-आधारों में आदेश-पत्रकों को उठाकर प्रत्येक ग्रन्थ के मुखपृष्ठों में रख देना चाहिये। जब सब ग्रन्थों में उनके आदेश-पत्रक लगा दिए जायँ तब उन ग्रन्थों की भलीभाँति जाँच-पड़ताल कर लेनी चाहिये। उन ग्रन्थों को तभी स्वीकार करना चाहिये जब वे उनके आदेशपत्रकों में निर्दिष्ट सभी बातों का समन्वय रखते हों। तब उन ग्रन्थों को वर्गीकरण, सूचीकरण तथा फलक-पंजिकीकरण (शेल्फ रजिस्टरिंग) के लिए आगे बढ़ा दिया जाता है। इन अवस्थाओं में भी दोष पाए जा सकते हैं। अतः काटना, मुहर लगाना, आगम-लेखन तथा मूल्य चुकाना इन कार्यों को उपर्युक्त अवस्थाओं के समाप्त हो जाने तक रोक रक्खी जाती है।

इस परिपाटी का पूर्ण विवरण तथा अकस्मात् आ पड़नेवाली अनेक कठिनाइयाँ तथा उनपर विजय पाने के साधन हमारे पुस्तकालय-प्रबन्ध (लायब्रेरी ऐडमिनिस्ट्रेशन) नामक ग्रन्थ के चतुर्थ अध्याय में पाये जा सकते हैं।

सामयिक प्रकाशन

सामयिक पत्रादि विभिन्न प्रकार की विचित्रताओं को उपस्थित करते हैं। इनमें प्रकाशन तथा वितरण-सम्बन्धी अनियमितता एक ऐसी विचित्रता है जो लोक-पुस्तकालयों में बहुधा पाई जा सकती है। यदि किसी विशिष्ट संख्या की अप्राप्ति विक्रेता के ध्यान में शीघ्र ही न लाई गई तो बहुत सम्भव है कि वह पुस्तकालय को कदापि प्राप्त ही न हो। अतः सामयिक-पत्रादि-

प्रकाशनों के सम्बन्ध में सावधानता तथा तत्परता की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। इस सम्बन्ध में केवल स्मृति पर ही अनावश्यक भरोसा रखना अत्यन्त अनुचित है। इस सावधानता तथा तत्परता की सिद्धि के लिए एक अत्यधिक सरल पत्रक-प्रणाली का उपयोग करना उचित है। ५"+३" आकार का केवल एक पत्रक साप्ताहिकों के लिए ६ वर्षों तक और मासिकों के लिए २५ वर्षों तक काम दे सकता है। नीचे उसका नमूना दिया जाता है। उन पत्रकों के दोनों ओर रेखाएँ खिंची होनी चाहिये। योग्य खाने में केवल एक टिक्ट मार्क ही प्राप्ति की सूचना कर देता है। उसके बाद प्रत्येक संख्या पर मुहर लगाई जाती है और फिर उपयोग के लिए प्रस्तुत कर दी जाती है। सब सामयिकों को जिल्द बाँधकर सुरक्षित रखना वांछनीय नहीं है। किसका संरक्षण किया जाय, इसका निर्णय अधिकारी ही कर सकते हैं।

नाम विक्रेता वर्ग सं० काल आदेश सं० तथा तिथि	मूल्य चुकाना	
	संपुट या वर्ष	वाउचर सं० तथा तिथि
	वार्षिक शुल्क	

संपुट (वॉल्यूम)	वर्ष	जन०	फर०	मा०	अप्र०	मई	जून

संपुट (वॉल्यूम)	वर्ष	जुलाई	अगस्त	सित०	अक्टू०	नव०	दिस०

आगम-लेखन (एक्सेशनिंग)

आगम-लेखन (एक्सेशनिंग) पुस्तकालय के संग्रह में समाविष्ट किए जानेवाले प्रत्येक संपुट पर आगम-संख्या नामक एक अनुक्रमांक अवश्य ही लगना चाहिये। दान-प्राप्त ग्रन्थों पर आगम-संख्या के अतिरिक्त एक दान-संख्या और भी लगाई जाती है। ग्रन्थों का तथा रक्षणीय सामयिकों के परिपूर्ण संपुटों का वर्गीकरण तथा सूचीकरण ज्यों ही समाप्त हो त्यों ही खरीदे हुए ग्रन्थों को उनके बिलों में निर्दिष्टक्रम के अनुसार व्यवस्थित कर देना चाहिये और सामयिकों को तथा दानप्राप्त ग्रन्थों को उनकी संख्याओं के अनुसार व्यवस्थित कर लेना चाहिये। सम्बद्ध फलक-पंजिका-पत्रकों को और आदेश-पत्रकों को ठीक उसी क्रम में व्यवस्ति करना चाहिये। ग्रन्थाध्यक्ष इस बात का अवश्य ध्यान कर ले कि दानप्राप्त ग्रन्थों के लिए हरे तथा सामयिकों के पूर्ण संपुटों के लिए लाल पत्रकों को प्रस्तुत किया जाय। ये पत्रक विवरण में आदेश-पत्रकों के ही समान होते हैं। आगम-आलमारी में अनुसन्धानमात्र से यह पता लग जायगा कि किस आगम-संख्या तथा किस दानसंख्या से उसे आरम्भ करना चाहिये। इन संख्याओं से आरम्भ कर, वह फलक-पंजिका-पत्रकों पर और आदेश-पत्रकों पर यथार्थ संख्या निदिष्ट अनुक्रम के अनुसार आगम तथा आवश्यकतानुसार दान-संख्याओं का अंकन करता है। उसे दो ही प्रकार के पत्रकों पर अंकन करना है—एक तो पुराने सफेद रंग के और दूसरे नए रंगीन। इसके बाद वह इन संख्याओं को उन-उन ग्रन्थों के मुखपृष्ठों की पीठ पर प्रतिलिपि करता है और उन आगमसंख्याओं को खरीदे हुए ग्रन्थों के बिलों पर उनके सामने लिखता है। साथ ही अप्राप्त अथवा अस्वीकृत ग्रन्थों को काटता भी जाता है। अब उन बिलों को मूल्य चुकाने के लिए भेजा जा सकता है। आगम-संख्या प्राप्त कर लेने पर नये और पुराने दोनों प्रकार के आदेश-पत्रक आगम-पत्रक का पद प्राप्त कर लेते हैं और उन्हें उनकी आगमसंख्या के अनुक्रमानुसार आगम-आलमारियों में व्यवस्थित रूप से लगा दिए जाते हैं। उन्हें ताले में सुरक्षित रूप से बन्द रक्खा जाता है, कारण, वे पुस्तकालय में विद्यमान

समस्त ग्रन्थों के मूलभूत रिकार्ड माने जाते हैं और वे उन-उन ग्रन्थों के पूरे इतिहास का प्रदर्शन करने की क्षमता रखते हैं।

ग्रन्थों का प्रस्तुतीकरण

आगम-लेखन के समाप्त हो जाने के बाद, ग्रन्थों को उपयोगार्थ मुक्त करने के पूर्व ही कुछ परिपाटी और भी बाकी रहती है जिसे पूर्ण करना अनिवार्य है। अब उन ग्रन्थों का वर्गीकरण तथा सूचीकरण किया जाता है। सूची-पत्रकों को विधिवत् सूची-आलमारियों में लगा दिया जाता है। उनको लगाते समय कभी यह आवश्यकता पड़ सकती है कि। पहले से विद्यमान पत्रकों के संशोधन अथवा उनका नवीनों के साथ एकीकरण करना पड़े। इन कार्यों की यथार्थ परिपाटी हमारे ग्रन्थालय-प्रबन्ध-ग्रन्थ के पाँचवें अध्याय में विस्तारपूर्वक पाई जा सकती हैं।

काटकर खोलना

इसके अनन्तर ग्रन्थों को प्रस्तुत करना चाहिये। ग्रन्थ का पृष्ठभाग शिथिल करना चाहिये। इसके लिए निम्न प्रकार का उपयोग करना चाहिये। ग्रन्थ को प्रायः बीच से खोलना चाहिये। इसे किसी चौड़े टेबुल पर रखकर भीतरी मार्जिन पर सिरे से नीचे तक अँगूठा चलाना चाहिये। दोनों ओर के आवरणों की ओर दबाना चाहिये। एक ही साथ कुछ पत्रों को उलटकर कुछ दबाव डालना चाहिये। ग्रन्थ की पीठ की ओर की लेई (जोड़ने का पदार्थ) एकदम शुष्क रहती है, अतः यह शिथिलीकरण बहुत ही सावधानता के साथ तथा नरमी के साथ करना चाहिये। अन्यथा ग्रन्थ की पीठ टूट जाने का भय है। ग्रन्थ के पत्रों को काटने के विशिष्ट साधन से ही काटना चाहिये। अँगुली अथवा पेन्सिल आदि से काटने का कुफल यह होगा कि सिरे खराब हो जायँगे और सम्भव है कुछ ग्रन्थों में पाठ्य विषय भी नष्ट हो जाय। इसके बाद पुस्तकालय की मुहर लगानी चाहिये। ध्यान रहे कि छपा हुआ विषय खराब न होने पाए। मुहरें सुविधानुसार निश्चित पृष्ठों पर लगाई जाती हैं। उनके स्थान इच्छानुसार निश्चित किए जा सकते हैं। जैसे:—आख्या-नाम-पृष्ठ

(हाफ टाइटिल पेज) के निचले अर्द्धं भाग में; मुखपृष्ठ की पीठ के निचले अर्द्धं भाग में; प्रथम अध्याय के सिरे पर; पचासवें पृष्ठ के बाद समाप्त होनेवाले अध्याय के नीचे, अन्तिम पृष्ठ के नीचे; प्रत्येक मानचित्र तथा चित्र पर; इत्यादि इत्यादि।

अग्र-खण्ड-योजन (टैगिंग)

मुहर लगाने का कार्य समाप्त हो जाने पर ग्रन्थ की पीठ पर (स्पाइन) एक अग्रखण्ड लगाना चाहिये। यह कपड़े अथवा कागज का बना प्रायः अठन्नी के आकार का एक टुकड़ा होता है और इसी पर ग्रन्थ की अभिधान-संख्या लिखी जाती है। यदि ग्रन्थ पर जैकेट लगा हो तो उसे कुछ समय के लिए अलग कर लेना चाहिये। अग्रखण्ड-योजन के बाद उसे पुनः लगा देना चाहिये। अग्रखण्ड को ग्रन्थ के तल से ठीक एक इंच ऊपर लगाना चाहिये। इस कार्य के लिए यदि एक धातु के टुकड़े को लिया जाय तो अधिक सुविधा होगी। यह टुकड़ा आध इंच चौड़ा हो और समकोणों पर मुड़ा हुआ हो। इसका प्रत्येक बाहु ठीक एक इंच लम्बा हो जिससे अग्रखण्ड लगाने का ठीक स्थान सूचित हो सके।

यदि संपुट इतना छोटा हो कि उसकी पीठ पर अग्रखण्ड न लगाया जा सके तो उसे बाहरी आवरण पर ही लगाया जा सकता है। यथासम्भव उसे पीठ के निकट और यदि पीठ पर होता तो जिस स्थान पर लगाया जाता उसी के पास लगाना चाहिए।

खलीता-योजन

अग्र-खण्ड-योजन के पश्चात् ऊपरी आवरण के अन्य भाग में एक ग्रन्थ खलीते को चिपकाना चाहिए। इसका स्थान तल किनारे से एक इंच ऊपर तथा आवरण के पृष्ठ के किनारे से एक इंच की दूरी पर होता है।

तिथि-अंक-पत्र-योजन

ज्यों ही खलीता-योजन समाप्त हो त्यों ही ग्रन्थ में तिथि-अंक-पत्र लगाना चाहिये। इस तिथि-अंक-पत्र को केवल बाँए सिरे पर गोंद

लगाकर आवरण के बाद ही आनेवाले सर्वप्रथम पत्र पर लगाना चाहिये, चाहे वह पत्र अन्त-पत्र हो, अर्द्ध-मुखपृष्ठ हो, मुखपृष्ठ हो अथवा विषयसूची हो या पाठ्य विषय का प्रथम पत्र हो। ये दोनों बातें भारतीय ग्रन्थों में बहुधा पाई जाती हैं। तिथि-अंक-पत्र को लगाने में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इसके सिरे ग्रन्थ के सिरों के ठीक बराबर रहें। इसके अतिरिक्त यदि तिथि-अंक-पत्र का आकार ग्रन्थ के आकार से छोटा हो तो इसे योग्य स्थान में लगाना चाहिए। हाँ, इस बात का ध्यान रहे कि उसे चिपकाते समय ग्रन्थ के पत्र का बाँया हिस्सा ही काम में लाया जाय। यदि तिथि-अंक पत्र का आकार ग्रन्थ की अपेक्षा बड़ा हो तो उसे ग्रन्थ के आकार के अनुसार काट लेना चाहिये। काटते समय पत्र का निचला भाग और दाहिनी ओर का भाग कटे, इस बात का ध्यान रखना चाहिये।

प्रस्तुतीकरण-कार्य में जितने भी कर्म गिनाये गए हैं उन्हें करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय यह है कि जितने भी ग्रन्थों को प्रस्तुत करना हो उनका एक ही साथ एक-एक कर्म क्रमशः किया जाय। यह नहीं कि केवल एक ग्रन्थ को लिया जाय और उसके सब कर्म कर चुकने के पश्चात् दूसरा ग्रन्थ लिया जाय। इसमें समय का अत्यन्त अपव्यय तथा अत्यधिक असुविधा होना निश्चित है।

ग्रन्थ-अंकन-कार्य

ग्रन्थों पर संख्या लगाने के लिए यह अधिक योग्य होता है कि अभिधान-संख्याओं की तथा आगम-संख्याओं की सम्बद्ध आगम-पत्रक से प्रतिलिपि की जाय। उन्हें मुखपृष्ठों से लेना उचित नहीं है, क्योंकि उसमें प्रत्येक ग्रन्थ के अनेक पत्रों को उलटना तथा उन दीर्घ संख्याओं को मस्तिष्क में रखना अनिवार्य होता है। इसमें भूल होना भी अधिक संभव है। अनुक्रम चिह्नों की भी प्रतिलिपि करना आवश्यक होता है।

इस अंकन-कार्य को बाहरी आवरण, ग्रन्थ के पृष्ठ पर लगे हुए अग्रखण्ड, तिथि-अंक-पत्र, ग्रन्थ के अन्तिम पत्र के निचले भाग तथा पचासवें पृष्ठ

बाद आरम्भ होनेवाले अध्याय के सिरे पर करना उचित होता है ।

इसके बाद ग्रन्थ-पत्रक लिखना चाहिये और उसे ग्रन्थ-खलीते में प्रविष्ट कर देना चाहिये ।

जाँच

इस प्रस्तुतीकरण के समस्त कार्यों के हो जाने पर ग्रन्थों को क्रमानुसार व्यवस्थित कर लेना चाहिये । फलक-पंजिका-पत्रकों को भी उसी क्रम में व्यवस्थित कर लेना चाहिये । इसके अनन्तर ग्रन्थ में तथा अन्यत्र विभिन्न स्थानों में लिखी हुई सब संख्याओं की ध्यानपूर्वक जाँच करनी चाहिये । इसके बाद ग्रन्थों को उनके उचित स्थानों पर फलकीकृत कर देना चाहिये और फलक-पंजिका-पत्रकों को भी उनके योग्य स्थानों पर प्रविष्ट कर देना चाहिये ।

पुस्तकों का बाहर जाना

जब कोई पुस्तक पुस्तकालय से किसी कारणवश बाहर भेजी जाय तब उसके फलक-पंजिका-पत्रक को पुस्तक देनेवाले अधिकारी तथा तिथि से चिह्नित कर उसे विनिर्गम-क्रम में वर्गीकृत क्रमानुसार व्यवस्थित किया जाता है । ग्रन्थ के बाहर जाने के अनेक कारण होते हैं । सम्भव है, ग्रन्थ लुप्त हो गया हो अथवा नष्ट हो गया हो या ज्ञान के अग्रगामी होने के कारण निरुपयोगी हो गया हो या और किसी कारणवश उसका पुस्तकालय में रखना उचित न हो अथवा संभव न हो । ग्रन्थ के विनिर्गत होने पर उसके सम्बद्ध सूची-पत्रकों को विनिर्गत कर नष्ट कर देना चाहिये । इस बात का ध्यान रहे कि मुख्य-पत्रक के पृष्ठ द्वारा विनिर्गम-योग्य अतिरिक्त लेख पत्रकों की सूची तैयार की जाती है । उनका भी विनिर्गम आवश्यक है । इसके बाद आगम पत्रक पर भी विनिर्गम के अधिकारी का नाम तथा तिथि लिखनी चाहिये, किन्तु उसे उसके स्थान पर ही आलमारी में छोड़ देना चाहिये ।

फलक-कार्य

बड़े-बड़े पुस्तकालयों में कर्मचारियों का एक विशिष्ट विभाग होता है। इसका नाम फलक-विभाग कहा जाता है। इनके अधीन अनेक कार्य होते हैं। इस विभाग के कर्मचारी निम्नलिखित कार्यों को करते हैं:—नए ग्रन्थों को उनके उपयुक्त स्थानों पर फलकों में रखना, अवलोकन के बाद अथवा उधार लेने के बाद लौटाए हुए ग्रन्थों को पुनः उनके स्थानों पर रखना; फलकों पर रक्खे हुए ग्रन्थों का यथा क्रम स्थापित रखना (इसे फलक समाधान कहा जाता है), ग्रन्थों की साधारण मरम्मत, जीर्ण ग्रन्थों का पुनः जिल्द बाँधना, मरम्मत कर सकने के सर्वथा अयोग्य अथवा समय से पिछड़े हुए ग्रन्थों का बीच-बीच में विनिर्गम ; ग्रन्थालय-शास्त्र के सिद्धान्तों का परिपालन करने के लिए अनुभव के अनुसार ग्रन्थों का समय-समय पर पुनः व्यवस्थापन ; इसके परिणामस्वरूप समरूप-गति-न्याय के अनुसार फलकपंजिका-पत्रकों का पुनः व्यवस्थापन तथा संग्रह का प्रमाणीकरण। ये ही कार्य प्रधान हैं। इस कार्य के कर्म-विश्लेषण तथा परिपाटी का संपूर्ण विमर्श हमारे ग्रन्थालय-प्रबन्ध के ८ वें अध्याय में दिया गया है। उसी का सारांश यहाँ दिया जाता है।

परम्परा और परम्परा-चिह्न

ग्रन्थालय के समस्त ग्रन्थों को केवल एक वर्गीकृत क्रम में व्यवस्थित कर दिया जाय और पाठकों को न तो असुविधा हो और न ग्रन्थों को हानि पहुँचे, यह सम्भव नहीं है। उन्हें कतिपय वर्गीकृत परम्पराओं में रखना अनिवार्य है। उसका कारण चाहे यह हो कि उनके आकार-प्रकार में अनेक विचित्रताएँ होती हैं अथवा तो यह हो कि उनकी श्रेणी में महान् अन्तर हो। जब ग्रन्थों को हमें पुनः फलकीकृत करना हो तो उनपर कोई न कोई द्योतक चिह्न अवश्य होना चाहिये जिससे हमें यह ज्ञान हो कि अमुक ग्रन्थ अमुक परम्परा का है। इन परम्परा-चिह्नों को अभिधान-संख्याओं के साथ ही रखना सर्वश्रेष्ठ है। वे उन समस्त स्थानों में लिखे

जाने चाहिये जहाँ-जहाँ अभिधान-संख्याएँ लिखी जाती हैं, जैसे:—आगम-पंजिका, फलक-पंजिका तथा सूची।

स्थूल विचित्रताएँ

ग्रन्थों की स्थूल विचित्रताओं के कारण आवश्यक सिद्ध होनेवाली परम्पराओं के लिए निम्नलिखित परम्परा-चिह्नों की योजना प्रस्तुत की जा सकती है:—

१ पुस्तिकाएँ तथा लघु आकार ग्रन्थ-परम्परा	ग्रन्थ-संख्या का अधोरेखाङ्कन
बृहदाकार ग्रन्थ-परम्परा	ग्रन्थ संख्या का उपरि-रेखाङ्कन
अनेक चित्रोंवाले ग्रन्थ तथा वे ग्रन्थ जिनके लिए मुक्तप्रवेश देना उचित न हो—विशिष्ट परम्परा	ग्रन्थ-संख्या का अधः और ऊपर दोनों रेखाङ्कन

प्रस्तुत विषय-परम्परा

यह अत्यन्त आवश्यक है कि अस्थायी प्रस्तुत-विषय-परम्पराओं को समय-समय पर व्यवस्थित किया जाय। इन परम्पराओं के चिह्नों की आवश्यकतानुसार अपनी बुद्धि से योजना की जा सकती है।

समरूप-गति-न्याय

प्रत्येक ग्रन्थ के लिए केवल एक फलक-पंजिका-पत्रक होता है। इन पत्रकों को ठीक उसी क्रम में व्यवस्थित रखना आवश्यक है जिस क्रम में ग्रन्थ फलकों पर रक्खे जायँ। अतः यह स्वाभाविक ही है कि इन पत्रकों की भी उतनी ही परम्परा हो जितनी कि स्वयं ग्रन्थों की हो। जब ग्रन्थों का एक परम्परा से दूसरे में परिवर्तन किया जाय तब उनसे सम्बद्ध फलक-पंजिका-पत्रकों को भी एक से दूसरी परम्परा में परिवर्तित कर दिया जाय।

इसे समरूप-गति-न्याय कहा जाता है। इस न्याय से हमें जिस गति-योग्यता की प्राप्ति होती है उसका महत्त्व अत्यधिक है। कारण, इससे हम ग्रन्थों का इच्छानुसार तथा आवश्यकतानुसार, चाहे जब और चाहे जितना, परिवर्तन भलीभाँति कर सकते हैं। पुस्तकालय-शास्त्र के सिद्धान्तों के परिपालन के लिए इस परिवर्तन की नितान्त आवश्यकता है। प्रबन्ध-सम्बन्धी सुविधाओं के लिए आवश्यक जिल्दबन्दी-परम्परा, प्रतिलिपि-परम्परा इत्यादि अस्थायी परम्पराओं को भी इस न्याय के अनुसार बनाया जा सकता है और उनका योग्य नियन्त्रण भी किया जा सकता है।

चयन-भवन-दर्शक

मुक्त-प्रवेश-पुस्तकालय में पंक्तिदर्शक, मार्गदर्शक, भाग-दर्शक तथा फलकदर्शक आदि पर्याप्त दर्शकों के लगाने की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि सारे चयन-भवन के लिए एक दर्शक-योजना भी होनी चाहिये। जब-जब चयन-भवन में ग्रन्थों का पुनः व्यवस्थापन हो, तब-तब इस योजना का फिर से लिखना अनिवार्य है। इसे चयन-भवन के प्रवेशद्वार पर इस प्रकार लगाना चाहिये जिससे यह सरलता से दीख पड़े। इसी प्रकार जब जब पुनः व्यवस्थापन हो तब-तब पंक्तिदर्शकों का तथा मार्गदर्शकों का भलीभाँति परीक्षण किया जाना चाहिये। सम्भव है, उन्हें या तो पुनः लिखना पड़े अथवा केवल उनका स्थान परिवर्तित किया जाय। इसी प्रकार मार्गदर्शकों का भी सामयिक परीक्षण, पुनःलेखन अथवा परिवर्तन अपेक्षित है। भाग-दर्शकों का पंक्ति-दर्शकों की अपेक्षा अधिक परीक्षण अपेक्षित है।

इन दर्शकों को बनाने के लिए निम्नलिखित ढंग स्वीकार करना चाहिये। १५"×६" आकार के कटे कार्डबोर्ड पर सफेद कागज चिपका देना चाहिये। उसपर भारतीय स्याही द्वारा स्टेन्सिल से अक्षर लिखे जाने चाहिये।

फलक-दर्शकों पर और भी अधिक ध्यान देने की आवश्यकता होती है। इसके लिए यह उचित है कि मास में कम से कम एक बार ग्रन्थों के बीच से

गुजरते हुए फलक-दर्शकों का ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया जाय और आवश्यक पुनर्व्यवस्थापन तथा परिवर्तन किया जाय। कारण यह है कि ग्रन्थ तो किसी और विषय के हों और उनके नीचे दर्शक किसी और विषय का निर्देश करें, इससे बढ़कर झुँझलाहट का और कोई कारण नहीं हो सकता और यह भी वांछनीय नहीं है कि मलिन, फटा हुआ या धुँधला दर्शक लगा हुआ हो। बात यह है कि पाठक इन दर्शकों को अत्यधिक देखा करते हैं, अतः उन्हें सुन्दर और व्यवस्थित ढंग से रखना अत्यावश्यक है।

इन फलकदर्शकों को सफेद ब्रिस्टल बोर्ड की ५"×१/२" आकार की पट्टियों पर लिखना चाहिये।

छोटी-मोटी मरम्मतें

पुस्तकालय में की जानेवाली छोटी-मोटी मरम्मतों में सबसे अधिक की जानेवाली मरम्मत यह है कि ग्रन्थों की पीठ पर लगे हुए जीर्ण अथवा भद्दे अग्रखण्डों को फिर से नया किया जाय। नए अग्रखण्डों पर अभिधान-संख्याओं को ठीक-ठीक लिखा जाय और इस बात का ध्यान रहे कि ग्रन्थों को पुनः उनके स्थान पर रखने के पहले उन संख्याओं का भली भाँति निरीक्षण कर लिया जाय। ग्रन्थों में लगे हुए तिथि-अंक-पत्र भी यदि भर गए हों तो उन्हें भी बदल दिया जाय। इस कार्य में भी अभिधान-संख्या का यथार्थ रूप में लेखन तथा परीक्षण आवश्यक है। कारण, एक साधारण-सी भूल भी देन-कार्य में बाधा डाल सकती है। यह भी वाञ्छनीय है कि शिथिल बने चित्र तथा पत्र उचित रूप से चिपका दिये जायँ और जहाँ कहीं आवश्यक हो वहाँ ग्रंथों की पीठों की मरम्मत कर दी जाय।

जब ग्रन्थ पुनः अपने स्थानों पर रक्खे जायँ उस समय इन छोटी-मोटी मरम्मतों के लिए उन्हें चुन लेना सबसे अच्छा है। किन्तु जिन ग्रन्थों में तिथि-अंक-पत्रों को बदलना आवश्यक हो उन्हें उस समय चुनकर इस कार्य के लिए अलग कर लेना चाहिए जब कि वे उधार से लौटाए जा रहे हों।

ग्रन्थों की एक और उचित सेवा की जा सकती है वह यह है कि, यदि समय मिले तो, पाठकों के बनाए हुए पेन्सिल-चिह्नों को मिटा दिया जाय।

यदि इन चिह्नों को मिटाने के कार्य में पाठकों की सेवा प्राप्त की जा सके तो बड़ा अच्छा हो। इससे पठकों के हृदय में इस अनुचित अभ्यास को रोकने के लिए विशिष्ट बुद्धि तथा श्रेष्ठ सामाजिक सद्भावना की उत्पत्ति हो सकती है।

जिल्दबन्दी

लोक-पुस्तकालय के ग्रन्थ इतने सबल होने चाहिये कि वे भरपूर चीर-फाड़ को सहन कर सकें। अतः यह उचित है कि उनपर परिपुष्ट ग्रन्थालय-जिल्द बाँधी जाय। जिल्दबन्दी के लिए सब वस्तुओं का निर्धारण तथा इससे सम्बद्ध कार्यपरिपाटी का विवरण हमारे पुस्तकालय-प्रबन्ध-अध्याय में पाया जा सकता है।

संग्रह-प्रमाणीकरण

संग्रह-प्रमाणीकरण-कार्य में आवश्यक अव्यवस्था को अल्पतम करने के लिए केवल एकमात्र यही उपाय है कि फलक-पंजिका-पत्रकों को समरूप-गति-न्याय के अनुसार व्यवस्थित रक्खा जाय। इस कार्य के लिए न तो पुस्तकालय को बन्द ही करना पड़ेगा और न सब सदस्यों से समस्त ग्रन्थों को पुस्तकालय में मँगवा ही लेना पड़ेगा। यहाँ इस बात को स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि पुस्तकालय के प्रवेशद्वार पर कितनी ही निगरानी रक्खी जाय, यदि पुस्तकालय में मुक्त-प्रवेश-पद्धति प्रचलित होगी तो ग्रन्थों की कुछ-न-कुछ हानि तो अवश्यं होगी ही। हमें उसके लिए तत्पर रहना चाहिये। अतः कर्मचारियों की ओर से यदि नीच कर्म अथवा एकमात्र उपेक्षा-बुद्धि का सन्देह न किया जाय तो पुस्तकालय के प्रबन्धकों को प्रति-वर्ष कुछ ग्रन्थों को निष्कासन करने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिये। इसके लिए उधार अथवा अवलोकन के लिए दिए हुए प्रति २००० ग्रन्थों में एक ग्रन्थ का लोप होना स्वाभाविक है। आधुनिक व्यापार में वार्षिक लेखे में छूट के लिए भी व्यवस्था की जाती है। इस छूट के कालम में निकाले जाने-वाले ग्रन्थों के मूल्य को समाविष्ट करने की व्यवस्था होनी चाहिये। ग्रन्थों को

गुजरते हुए फलक-दर्शकों का ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया जाय और आवश्यक पुनर्व्यवस्थापन तथा परिवर्तन किया जाय। कारण यह है कि ग्रन्थ तो किसी और विषय के हों और उनके नीचे दर्शक किसी और विषय का निर्देश करें, इससे बढ़कर झुँझलाहट का और कोई कारण नहीं हो सकता और यह भी वांछनीय नहीं है कि मलिन, फटा हुआ या धुँधला दर्शक लगा हुआ हो। बात यह है कि पाठक इन दर्शकों को अत्यधिक देखा करते हैं, अतः उन्हें सुन्दर और व्यवस्थित ढंग से रखना अत्यावश्यक है।

इन फलकदर्शकों को सफेद ब्रिस्टल बोर्ड की ५"×$\frac{3}{4}$" आकार की पट्टियों पर लिखना चाहिये।

छोटी-मोटी मरम्मतें

पुस्तकालय में की जानेवाली छोटी-मोटी मरम्मतों में सबसे अधिक की जानेवाली मरम्मत यह है कि ग्रन्थों की पीठ पर लगे हुए जीर्ण अथवा भद्दे अग्रखण्डों को फिर से नया किया जाय। नए अग्रखण्डों पर अभिधान-संख्याओं को ठीक-ठीक लिखा जाय और इस बात का ध्यान रहे कि ग्रन्थों को पुनः उनके स्थान पर रखने के पहले उन संख्याओं का भली भाँति निरीक्षण कर लिया जाय। ग्रन्थों में लगे हुए तिथि-अंक-पत्र भी यदि भर गए हों तो उन्हें भी बदल दिया जाय। इस कार्य में भी अभिधान-संख्या का यथार्थ रूप में लेखन तथा परीक्षण आवश्यक है। कारण, एक साधारण-सी भूल भी देन-कार्य में बाधा डाल सकती है। यह भी वाञ्छनीय है कि शिथिल बने चित्र तथा पत्र उचित रूप से चिपका दिये जायँ और जहाँ कहीं आवश्यक हो वहाँ ग्रंथों की पीठों की मरम्मत कर दी जाय।

जब ग्रन्थ पुनः अपने स्थानों पर रक्खे जायँ उस समय इन छोटी-मोटी मरम्मतों के लिए उन्हें चुन लेना सबसे अच्छा है। किन्तु जिन ग्रन्थों में तिथि-अंक-पत्रों को बदलना आवश्यक हो उन्हें उस समय चुनकर इस कार्य के लिए अलग कर लेना चाहिए जब कि वे उधार से लौटाए जा रहे हों।

ग्रन्थों की एक और उचित सेवा की जा सकती है वह यह है कि, यदि समय मिले तो, पाठकों के बनाए हुए पेन्सिल-चिह्नों को मिटा दिया जाय।

यदि इन चिह्नों को मिटाने के कार्य में पाठकों की सेवा प्राप्त की जा सके तो बड़ा अच्छा हो। इससे पठकों के हृदय में इस अनुचित अभ्यास को रोकने के लिए विशिष्ट बुद्धि तथा श्रेष्ठ सामाजिक सद्भावना की उत्पत्ति हो सकती है।

जिल्दबन्दी

लोक-पुस्तकालय के ग्रन्थ इतने सबल होने चाहिये कि वे भरपूर चीर-फाड़ को सहन कर सकें। अतः यह उचित है कि उनपर परिपुष्ट ग्रन्थालय-जिल्द बाँधी जाय। जिल्दबन्दी के लिए सब वस्तुओं का निर्धारण तथा इससे सम्बद्ध कार्यपरिपाटी का विवरण हमारे पुस्तकालय-प्रबन्ध-अध्याय में पाया जा सकता है।

संग्रह-प्रमाणीकरण

संग्रह-प्रमाणीकरण-कार्य में आवश्यक अव्यवस्था को अल्पतम करने के लिए केवल एकमात्र यही उपाय है कि फलक-पंजिका-पत्रकों को समरूप-गति-न्याय के अनुसार व्यवस्थित रक्खा जाय। इस कार्य के लिए न तो पुस्तकालय को बन्द ही करना पड़ेगा और न सब सदस्यों से समस्त ग्रन्थों को पुस्तकालय में मँगवा ही लेना पड़ेगा। यहाँ इस बात को स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि पुस्तकालय के प्रवेशद्वार पर कितनी ही निगरानी रक्खी जाय, यदि पुस्तकालय में मुक्त-प्रवेश-पद्धति प्रचलित होगी तो ग्रन्थों की कुछ-न-कुछ हानि तो अवश्यं होगी ही। हमें उसके लिए तत्पर रहना चाहिये। अतः कर्मचारियों की ओर से यदि नीच कर्म अथवा एकमात्र उपेक्षा-बुद्धि का सन्देह न किया जाय तो पुस्तकालय के प्रबन्धकों को प्रति-वर्ष कुछ ग्रन्थों को निष्कासन करने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिये। इसके लिए उधार अथवा अवलोकन के लिए दिए हुए प्रति २००० ग्रन्थों में एक ग्रन्थ का लोप होना स्वाभाविक है। आधुनिक व्यापार में वार्षिक लेखे में छूट के लिए भी व्यवस्था की जाती है। इस छूट के कालम में निकाले जाने-वाले ग्रन्थों के मूल्य को समाविष्ट करने की व्यवस्था होनी चाहिये। ग्रन्थों को

बाहर करने के अनेक कारण होते हैं, यह पहले लिखा ही जा चुका है। वे समय से बहुत पिछड़े हो सकते हैं, इतने नष्ट-भ्रष्ट हो सकते हैं कि उनकी मरम्मत ही सम्भव न हो अथवा वे लुप्त पाए जायँ जब कभी कोई लुप्त ग्रन्थ पाया जाय, तब उसे पुनः संग्रह में समाविष्ट कर लिया जाय। इसकी सुव्यवस्था के लिए यह उचित है कि निकाले हुए सब ग्रन्थों के फलक-पंजिका-पत्रकों को किसी पृथक् आधार में व्यवस्थित रक्खा जाय।

वर्गीकरण

विषय-प्रवेश

पुस्तकालयों की पुस्तकों का अधिकतम उपयोग होने का केवल एकमात्र यही उपाय है कि उन्हें उनके प्रतिपाद्य विषय के अनुसार वर्गीकृत क्रम में फलकों पर व्यवस्थित किया जाय। इसका कारण यह है कि अधिकतम अवसरों पर पुस्तकों की ओर विषय के अनुसार ही झुकाव होता है। पाठक बहुधा किसी विशिष्ट विषय पर एक अथवा सब ग्रन्थों की माँग उपस्थित करता है। समय का अपव्यय किए बिना और कर्मचारियों की स्मृति पर अनावश्यक बोझ दिए बिना उस पाठक की आवश्यकताओं की पूर्ति करने का एकमात्र यही उपाय है— अन्य कोई भी नहीं—कि अपेक्षित विषय के समस्त ग्रन्थों को फलकों पर एक ही साथ रक्खा जाय और फलकों पर स्थान पानेवाले इस प्रकार के हजारों विषयों में हमारे अपेक्षित विषय का स्थान सबसे अधिक अन्तरङ्ग हो। इसके अतिरिक्त यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि जब ग्रन्थों को पुनः उनके स्थान पर (फलकों पर) रक्खा जाय तो यह आवश्यक न हो कि उनका नए सिरे से अध्ययन करना पड़े और फिर उनका स्थान निश्चित किया जाय, बल्कि ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि एक साधारण पढ़ा-लिखा मनुष्य भी एक बार देखकर उसका स्थान पहचान ले। तात्पर्य यह है कि उसे यंत्रवत् बना लिया जाय। इस फलक-सिद्धि के लिए पुस्तकालय के ग्रन्थ एक वर्गीकरण-पद्धति द्वारा वर्गीकृत किए जाते हैं। वह पद्धति ऐसे अंकन से युक्त होनी चाहिये जो ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय को क्रमात्मक संख्याओं के रूप में व्यक्त कर सके। इन संख्याओं को

वर्गसंख्या कहा जाता है। वह अंकन सुपरीक्षित, मानतुलित तालिकाओं के द्वारा निर्धारित किया जाता है। वास्तविक बात तो यह है कि वर्ग-संख्या एक प्रकार की कृत्रिम भाषा है जो विषयों के बीच अन्तरङ्गानुमोदित क्रम को व्यवस्थापित करती है और उन विषयों की व्यवस्था को यान्त्रिक बना देती है।

केवल इसी प्रकार की व्यवस्था (क्रमिक व्यवस्थापन) ही पुस्तकालय-शास्त्र के सब सिद्धान्तों का समाधान कर सकती है। वे सिद्धान्त निम्न-लिखित हैं:—

१ ग्रन्थ उपयोग के लिए हैं;
२ प्रत्येक पाठक अपना ग्रन्थ पाए;
३ प्रत्येक ग्रन्थ अपना पाठक पाए;
४ पाठकों का समय बचाना चाहिये; और
५ पुस्तकालय सदा उन्नतिशील अवयवी है।

वर्गीकरण-पद्धतियाँ

आज संसार में अनेक वर्गीकरण-पद्धतियाँ हैं। किन्तु उनमें निम्न-लिखित ६ पद्धतियाँ ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि वे वैज्ञानिक तथा विश्वव्यापक हैं।

	आविष्कार का वर्ष	पद्धति का नाम	आविष्कर्ता	उद्भव-देश
१	१८७३	दशमलव प०	मेलविल ड्यूई	संयुक्तराष्ट्र
२	१८९१	विस्तारशील प०	चार्ल्स एमी कटर	”
३	१९०४	कांग्रेस प०	लायब्रेरी ऑफ कांग्रेस	”
४	१९०६	विषय प०	जेम्स ड्यू ब्राउन	ग्रेट ब्रिटेन
५	१९३३	द्विबिन्दु प०	शि०रा०रंगनाथन	भारत
६	१९३५	वाङ्मयसूची विषय प०	हेनरी एवलिन ब्लिस	संयुक्तराष्ट्र

दशमलव-पद्धति

उपर्युक्त पद्धतियों में द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ तथा षष्ठ की चर्चा अनावश्यक

है, कारण, वे अधिक उपयोग में भी नहीं हैं और उनमें और भी असुविधाएँ तथा दोष हैं। दशमलव-पद्धति प्रायः सत्तर वर्षों से इस क्षेत्र में केवल एकमात्र प्रभावशाली पद्धति रही है और आज वह संसार के प्रायः १४००० पुस्तकालयों में काम में लाई जा रही है। किन्तु इसमें अमेरिकन पक्षपात अत्यधिक है। हम यदि इसकी समालोचना करने बैठें तो इसका तात्पर्य नहीं कि हम इसे तुच्छ सिद्ध करना चाहते हैं अथवा लोगों की दृष्टि में गिराना चाहते हैं। यह पद्धति सबकी अधिनेत्री है। किन्तु इसी कारण से यह स्वभावतः अव्यवहार्य हो गई है। इसका ढाँचा सीमित भित्ति पर अवलम्बित है। इसका अंकन पर्याप्तरूप से स्मृति-सहायक नहीं है। ज्ञान के अत्यधिक बढ़ जाने से इसकी समावेशकता नष्ट हो चुकी है। इसके द्वारा किए जानेवाले भाषाशास्त्र तथा भूगोल के व्यवहार ने इसे और भी अयोग्य सिद्ध कर दिया है। इतना ही नहीं, विज्ञान के निरूपण ने तो इसे किसी काम का नहीं रक्खा है।

ब्लिस महाशय पूरे अध्याय भर इस विषय की प्रामाणिकता की चर्चा करते हैं। वे लिखते हैं:—निर्माण और कार्य दोनों दृष्टियों से दशमलव-पद्धति अयोग्य सिद्ध हो चुकी है। इसमें स्वाभाविक, वैज्ञानिक, न्यायप्राप्त और शिक्षणात्मक क्रमों की कोई व्यवस्था नहीं है। इसमें वर्गीकरण के मौलिक न्यायों को समान रूप से उपयोग किए जाने का कोई लक्षण दृष्टि-गोचर नहीं होता। विशिष्ट विषयों के आधुनिक साहित्य को वर्गीकृत करने में यह सर्वथा असमर्थ है। लोग यह कहते हैं कि न केवल पुस्तकाध्यक्षों में, बल्कि वैज्ञानिकों में तथा व्यापारियों में भी इसका पर्याप्त प्रचार है, किन्तु इससे उसके गुणयुक्त होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। इसका जो कुछ भी प्रचार हो गया है, इसका एकमात्र कारण यह है कि उन उपयोगकर्ताओं के सामने और कोई पद्धति उपस्थित न थी। यह एक अप्रचलित, अत्यन्त प्राचीन और यथाकाल व्यवस्था करने के अयोग्य वस्तु है...और आज इसका किसी भी प्रकार पुनर्निर्माण नहीं किया जा सकता।

ई०बी० शोफील्ड महाशय साधिकार घोषित करते हैं;—

"परिवर्तित अवस्थाओं के अनुसार यथाकाल-व्यवस्था कर सकने के अयोग्य होने के कारण आज ड्यूई आधुनिक ज्ञान के सम्पर्क से बाहर है। जिन पुस्तकालयों में इसका उपयोग किया जाता है उनके संग्रह तथा माँग से भी इसका सम्बन्ध टूट गया है।

यही कारण है कि पाश्चात्य पुस्तकालय इसका परित्याग कर अपनी-अपनी पद्धतियों का स्वयं आविष्कार करने लगे हैं। भारतीय शास्त्रों के विषय में इसके द्वारा किए जानेवाले तुच्छ व्यवहार ने तो इसे भारतीय पुस्तकालयों के लिए सर्वथा अयोग्य सिद्ध कर दिया है। भारतीय शास्त्रों को इसमें बलात् प्रविष्ट करने का यह फल होता है कि यह एक प्रकार की खिचड़ी बन जाती है, जिसमें नए-पुराने की पहिचान ही असम्भव हो जाती है। साथ ही यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि जो विभिन्न पुस्तकालय अपनी नई पद्धतियों का आविष्कार करते हैं अथवा विद्यमान मानतुलित पद्धतियों में मनमाना परिवर्तन करते हैं वे शीघ्र ही विपत्ति में फँस जायँगे। उनकी रूपरेखा उन्हें भली भाँति सन्तुष्ट कर सकेगी और वह कुछ ग्रन्थों तक काम दे सकेगी। किन्तु वही रूपरेखा पुस्तकालय के बढ़ जाने पर भी उसी प्रकार सन्तोषजनक कार्य करती रहेगी, यह कहा नहीं जा सकता। इसलिए उचित मार्ग तो यह है कि जो पद्धति सुपरीक्षित तथा सुप्रमाणित हो, जिसमें नए-नए आविष्कृत विषयों को समाविष्ट करने की अनेक युक्तियाँ विद्यमान हो तथा जिसमें उन्नत समावेशकता हो, उसी का उपयोग करना चाहिये।

द्विविन्दु-वर्गीकरण

इन पद्धतियों में केवल एकमात्र द्विविन्दु-वर्गीकरण-पद्धति ही ऐसी है जो इन सब शर्तों को पूरा करती है। इसका उद्भव भारत में हुआ है। देशभक्ति के कारणों की ओर ध्यान न भी दें तो भी इसके स्वीकृत गुण ही इसे उपयोग में लाने की सिफारिश करते हैं। ब्लिस महाशय के अनुसार:—

"यह पद्धति सिद्धान्तभूत न्यायों का अवलम्बन कर बनाई गई है। "मूलभूत" वर्गीकरण अधिकतम विभागों में न्यायानुकूल है, विवरण में पूर्ण वैज्ञानिक है तथा व्याख्यान में विद्वत्तापूर्ण है।"

इसका आधार दशमलव के आधार की अपेक्षा सर्वथा भिन्न है। यह मेकानों-सिद्धान्त पर अवलम्बित है। अतः इसकी समावेशकता वस्तुतः अनन्त है। सचमुच यह उक्ति यथार्थ है कि प्रत्येक नया विषय पद्धति में अपनी वर्गसंख्या स्वयं उत्पन्न कर लेता है।

डब्ल्यू० होवार्ड फिलिप महाशय कहते हैं:—

"इस संश्लेषणात्मक विधि से जिन उद्देश्यों को सिद्ध करना अभीष्ट है वे निम्नलिखित हैं:—वर्गीकरण की अतिसूक्ष्मता, यहाँ तक कि पुस्तकालय में विद्यमान प्रत्येक ग्रन्थ की तत्त्वसिद्धि; अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्मृति-सहायक-योग्यता, समावेशकता; विस्तारशीलता; साथ ही साथ छपी हुई तालिकाओं का अत्यधिक संक्षिप्त विषयानुसार उपविभाग बनाने की विधि साधारणतः सरल है और अंकों का दशमलव के रूप में उपयोग किया गया है। किन्तु अनेक ऐसे विभाग हैं जिनमें भेदकों की परम्पराएँ क्रमशः उपयोग में लाई गई है। ये वस्तुतः लघु तालिकाएँ हैं और इसमें जिस न्याय का उपयोग किया गया है वह अन्य पद्धतियों के ज्ञाताओं के लिए पूर्ण परिचित है। विश्व-वाङ्मय-सूची को वर्गीकृत करने के लिए इसका अधिकतम उपयोग किया जा सकता है।"

इसके अतिरिक्त इस पद्धति में एक महान् गुण यह है कि भारतीय शास्त्रों के विषय पूर्णतया विवृत है। डब्ल्यू० सी० बरविक सेयर्स महाशय लिखते हैं:—

"इस पद्धति में भारतीय साहित्यों को व्यवस्थापित करने के लिए अतिप्रशंसनीय योजना है। मैं जहाँ तक जानता हूँ, यह सर्वाधिक परिपूर्ण है।"

यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि आज सारे संसार में वर्गीकरण की पाठ्य पुस्तकों में द्विबिन्दु-वर्गीकरण-पद्धति आदर के साथ समाविष्ट

की गई है। इससे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि यह भलीभाँति सुस्थिर और विश्वास योग्य है। भारत में अभी ग्रन्थालय हैं ही कितने और जो हैं भी वे वर्गीकृत नहीं हैं। अतः यह बड़ा अच्छा हो, यदि इस अत्यधिक समावेशक तथा पूर्णतया वैज्ञानिक पद्धति का सब ग्रन्थालयों में उपयोग किया जाय।

मुख्य वर्ग

	विज्ञान		विज्ञानेतर
१ से ६	सामान्य		अध्यात्मविद्या तथा गूढविद्या
क	विज्ञान (सामान्य)	त	ललित कला
ख	गणित	द	साहित्य
ग	पदार्थशास्त्र	न	भाषाशास्त्र
घ	पदार्थकला	प	धर्म
च	रसायनशास्त्र	फ	दर्शन
छ	रसायनकला	भ	मानसशास्त्र
ज	निसर्गशास्त्र (सामान्य) तथा जीवशास्त्र	म	शिक्षा
		य	(अन्य) सामाजिक शास्त्र
झ	भूगर्भशास्त्र	र	भूगोल
ट	वनस्पतिशास्त्र	ल	इतिहास
ठ	कृषिकला	व	राजनीति
ड	प्राणिशास्त्र	श	अर्थशास्त्र
ढ	देहशास्त्र	स	समाजशास्त्र
ण	(अन्य) विज्ञानोपयोगकला	ह	कानून (न्याय-धर्म)

सामान्य वर्ग

कं वाङ्मय-सूची

खं व्यवसाय

गं प्रयोगशाला

घं प्रदर्शनी, प्रदर्शनालय

चं यन्त्र, प्रयोग

छं मानचित्र

जं सूचीपत्र

टं संस्था

ठं प्रकीर्ण, अभिनन्दन-ग्रन्थ

डं ज्ञानकोश, कोश, अनुक्रमणिका

ढं समिति

णं सामयिक पत्रादि

तं वर्षिक ग्रन्थ, नामादिनिर्देशक, पञ्चाङ्ग, यंत्री

नं सम्मेलन

पं बिल, ऐक्ट, कोड

फं विवरण-ग्रन्थ, रिपोर्ट

भं अंकशास्त्र

मं कमीशन, कमिटी

र यात्रावर्णन

लं इतिहास

व चरित्र, पत्र

श संकलन, संग्रह

स विस्तार

ह सार

"लोकप्रिय पुस्तकालयों का वर्गीकरण" नामक एक ग्रन्थ प्रस्तुत किया जा रहा है। उसका हिन्दी-रूपान्तर शीघ्र ही प्रकाशित किया जायगा। इसमें लोकप्रिय पुस्तकालयों में स्थान पानेवाले प्रचलित विषयों की द्विबिन्दु-वर्ग संख्याएँ नागरी लिपि में दी जायँगी।

सूची

सूची का स्थूल रूप

छपी सूची

किसी भी वर्द्धनशील पुस्तकालय में छपी सूची का व्यवहार और कुछ नहीं केवल एकमात्र धन का अपव्यय है। वह ज्योंही प्रेस से बाहर आता है त्योंही समय से पिछड़ा एकदम पुराना हो जाता है। कारण मुद्रणालय के लिए प्रतिलिपि बनाने के समय से लेकर उसके छपने तक पुस्तकालय में अनेक नए ग्रन्थ आए होंगे और उनका उस सूची में समावेश सर्वथा असम्भव हो जायगा। और यह बात ध्यान में रखने की है कि वे ही ग्रन्थ पाठकों के लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं कारण वे सर्वथा नवीन वृद्धियाँ होती हैं। वर्द्धनशील लोकप्रिय पुस्तकालय की सूची को छपवाने की दोषपूर्ण परम्परा शीघ्रातिशीघ्र बिना किसी हिचकिचाहट के छोड़ देनी चाहिये।

पत्रक-सूची

भारतीय पुस्तकालयों को संसार के अन्य समान पुस्तकालयों का अनुसरण करना चाहिये और पत्रक-सूची का उपयोग करना चाहिये। सूची के इस रूप में प्रत्येक मानतुलित ५" × ३" पत्रक में केवल एक लेख रहता है। इन पत्रकों को आधारों (ट्रे) में व्यवस्थित किया जाता है। प्रत्येक पत्रक के तल भाग में बने हुए छिद्रों में से एक छड़ लगाई जाती है। इसी छड़ के बल पर वे पत्रक आधारों में खड़े रहते हैं। इन आधारों से आलमारियाँ बनाई जाती हैं। उनके आकार-प्रमाण आदि का विवरण हमारे पुस्तकालय-प्रबन्ध में पाया जा सकता है। इस व्यवस्था में नए पत्रक किसी भी स्थान में किसी भी अवसर पर प्रविष्ट किए जा सकते हैं। इसके लिए न तो वर्तमान पत्रकों को इधर-उधर करना पड़ेगा और न उनको फिर से लिखना आवश्यक होगा।

लेखन-शैली

सूचीपत्रकों को काली अमिट स्याही से लिखना चाहिये। आज यह

व्यवहारोचित और आवश्यक है कि सब प्रकार की लेख-सम्बन्धी व्यक्तिगत विशेषताओं का दमन किया जाय। तात्पर्य यह है कि सूचीकारों का हस्त-लेख ऐसा हो कि अमुक व्यक्ति विशेष का यह लेख है, इस बात का ज्ञान न हो पाए। पुस्तकालय-व्यवसाय ने पुस्तकालय हस्त नामक लेखन-शैली का आविष्कार किया है। इसकी यह विशेषता है कि अक्षर सीधे और खड़े होने चाहियें और एक अक्षर दूसरे से अलग होना चाहिये।

सूची का कार्य

फलक-पंजिका के आविष्कार ने पुस्तकालय-सूची को संख्यापत्र-भावना के दास्य से मुक्त कर दिया है। अब संख्या-पत्र का कार्य फलक-पंजिका सिद्ध करती है और सूची स्वतः अपना स्वतन्त्र कार्य करती है। आज सूची का एकमात्र कार्य यही है कि प्रत्येक पाठक के और साथ ही साथ पुस्तकालय के कर्मचारियों के) अभीष्ट विषय से सम्बद्ध रखने वाले समस्त ग्रन्थों को उसके सामने प्रकाशित करे। वह पाठक किसी भी कोण से सूची का अवलोकन कर सकता है। सूची का यही कार्य है कि उसे हर अवस्था में सन्तुष्ट करे। वह प्रकाशन-कार्य भी इतने व्यापक, इतने घनिष्ठ तथा इतने योग्य प्रकार से किया जाना चाहिये कि पुस्तकालय के समस्त सिद्धान्तों का समाधान हो। पाठक किसी विशिष्ट विषय पर किसी विशिष्ट ग्रन्थकार के द्वारा लिखित अथवा किसी विशिष्ट ग्रन्थमाला में मुद्रित पुस्तकालय के समस्त संग्रह को देखना चाहे यह सर्वथा स्वाभाविक हैं। और यह भी सम्भव है कि वह किसी ऐसे ग्रन्थ को चाहे जिसके विषय में केवल उसे उसके ग्रन्थकार का नाम ही स्मरण हो। सम्भव है ग्रन्थकार का नाम भी न याद हो बल्कि संपादक, अनुवादक टीकाकार अथवा चित्रकार आदि किसी सहयोगी का ही ध्यान हो। कोई पाठक ऐसा भी हो सकता है जिसे केवल ग्रन्थमाला के सम्पादक अथवा शीर्षक मात्र की स्मृति हो। कोई महाशय ऐसे भी आ सकते हैं जिन्हें और कुछ भी याद नहीं है। केवल इतना ही कि अपने ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय की कुछ धुंधला-सी स्मृति है। अल्पतम सूत्र (मार्गदर्शक) द्वारा भी यह

सम्भव होना चाहिये कि वह अत्यन्त अल्प समय में अपने ग्रन्थ को पा सके। आज पुस्तकालय-सूची की योजना इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए की जाती है। इस योजना में एक ग्रन्थ के लिए अनेक लेख लिखे जाते हैं।

लेख-भेद

मुख्य लेख

ग्रन्थविषयक इन लेखों में से एक लेख ऐसा होता है जो अन्य की अपेक्षा अधिक जानकारी उपस्थित करता है। यह जानकारी इतनी अधिक विस्तृत तथा पूर्ण होती है जितनी कि सूची में दी जा सकती है। इसी दृष्टिकोण के कारण इसे मुख्य लेख कहा जाता है। उदाहरणार्थ निम्न-लिखित लेख प्रस्तुत किया जाता है: –

द: १ चि५:१ तु५

बिल्हण

विक्रमाङ्कदेवचरित, मुरारिलाल नागर द्वारा संपा०

(प्रिन्सेस ऑफ् वेल्स, सरस्वती-भवन-ग्रन्थमाला, मंगलदेव शास्त्री द्वारा संपा० (२)

१-१२१२

इस लेख का कार्य यह है कि जो पाठक इस ग्रन्थ के केवल प्रतिपाद्य विषय को ही जानता हो उसके सामने यह ग्रन्थ प्रस्तुत किया जा सके। इसलिए इस लेख को ग्रन्थ-सम्बन्धी विषय-लेख कहा जाता है।

इसमें पाँच भाग होते हैं। प्रथम अग्रणी भाग होता है। इसमें ग्रन्थ की अभिधान-संख्या (द:१ चि५:१ तु५) लिखी जाती है। अत: इस लेख को ग्रन्थविषयक अभिधान-संख्या लेख भी कहा जा सकता है।

संयुक्त-लेख

ग्रन्थ के अन्य सब लेख संयुक्त लेख कहे जाते हैं। उनमें से कुछ तो

ऐसे होते हैं जो किसी ग्रन्थ-विशेष के विशिष्ट होते हैं (केवल उसी ग्रन्थ से सम्बद्ध होते है) और कुछ ऐसे होते हैं जो इस ग्रन्थ में तथा ग्रन्थान्तरों में सामान्य होते हैं। प्रथम वर्ग के विशिष्ट संयुक्त लेख कहे जाते हैं और द्वितीय वर्ग के साधारण संयुक्त लेख कहे जाते हैं।

प्रत्यनुसन्धान लेख अथवा विषय-विश्लेषक

ऊपर हम जिस ग्रन्थ का मुख्य लेख दे चुके हैं उसके सम्बन्ध में विचार करें। इसका मुख्य लक्ष्य विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य है। यह इसकी अभिधान-संख्या से प्रकट है। किन्तु इस महाकाव्य में तथा इसके प्रस्तुत संस्करण में और भी अनेक विषयों का वर्णन है। जैसे:—

(क) कल्याण चालुक्यों का इतिहास सर्ग १ १७ तथा उपोद्घात पृ०

(ख) कश्मीर-देश का भौगोलिक वर्णन

(ग) कश्मीर-देश का सामयिक इतिहास

(घ) महाकवि बिल्हण का जीवनचरित

(च) महाकवि बिल्हण की समालोचना

(छ) विक्रमाङ्कदेवचरित की समालोचना

(ज) कल्याण चालुक्यों के इतिहास की वाङ्मय सूची, आदि

इस प्रकार यह ग्रन्थ नानालक्ष्यक है। अतः ग्रन्थालय-सूची में इतनी क्षमता होनी चाहिये कि वह इन विषयों की ओर पाठक का ध्यान आकृष्ट करे। सम्भव है, ऊपर परिगणित विषय और कहीं भी न उपलब्ध हो। अगर हम उन्हें पाठकों के लिए उपलब्ध नहीं बना देते तो वे विषय निरन्तर हमें कोसते रहेंगे और पाठक भी ज्ञातव्य सामग्री के रहते हुए भी उससे वंचित रहेंगे। अतः सूची में निम्न प्रकार के प्रत्यनुसन्धान लेखों की व्यवस्था करना अनिवार्य है। इसे लेखों का विषय-विश्लेषक भी कहा जाता है। इनके द्वारा हमारे उद्देश्य की पूर्ण सिद्धि होती है।

क लि–२२५ नक १: चौ

और द्रष्टव्य

द: १ चि५:१ तु५

बिल्हण: विक्रमाङ्कदेवचरित सर्ग १-१७ तथा उपोद्घात पृ० १८-४०

ख रो:०२४१: चौ

और द्रष्टव्य

द: १ चि ५: १ तु ५

बिल्हण: विक्रमाङ्कदेवचरित सर्ग १८ तथा उपोद्घात पृ० ८-१०

ग लि ४१: १०: चौ

और द्रष्टव्य

द: १ चि५: १ तु५

बिल्हण: विक्रमाङ्कदेवचरित सर्ग १८ तथा उपोद्घात पृ० ८-१०

घ द: १ चि५ लं

और द्रष्टव्य

द: १ चि५: १ तु५

बिल्हण: विक्रमाङ्कदेवचरित सर्ग १८ तथा उपोद्घात पृ० ५-१८

च द: १ चि५: ६

और द्रष्टव्य

द: १ चि५: १ तु५

बिल्हण: विक्रमाङ्कदेवचरित उपोद्घात पृ० ५-८

छ द: १ चि५: १: ६
और द्रष्टव्य
द: १ चि५: १ ठु५
बिल्हण: विक्रमाङ्कदेवचरित उपोद्घात पृ० १६-१८

ज - लि-२२५ नक १: १ कं
और द्रष्टव्य
द: १ चि५: १ ठु५
बिल्हण: विक्रमाङ्कदेवचरित प्राक्कथन पृ० ६-७

इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि प्रत्यनुसन्धान इत्यादि लेखों में अध्याय अथवा पृष्ठों का पूरा अनुसन्धान देना आवश्यक है। साथ ही, यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि मुख्य लेख में हम ग्रन्थकार आदि के अग्रनाम तथा उपनाम दोनों का निर्देश करते हैं, जैसे:

रंगनाथन (शियाली रामामृत

किन्तु इन (प्रत्यनुसन्धान) लेखों में हम ग्रन्थकार के अग्रनाम का लोप कर देते हैं। जैसे:

रंगनाथन: स्कूल ऐण्ड कालेज लायब्रेरीज

वस्तुतः बात यह है कि सब प्रकार के संयुक्त लेखों में हम उनका लोप कर देते है और केवल उपनामों को लिखते हैं।

लोक-पुस्तकालय की सूची में चित्र, मानचित्र, वंशवृक्षादिनिर्देशक अनुबन्धों से भी प्रत्यनुसन्धान देना आवश्यक है। कारण, ये ग्रन्थों में इधर उधर बिखरे पड़े होते हैं और बिना प्रत्यनुसन्धान दिए उनका उपयोग सर्वथा आवश्यक हो जायगा।

ग्रन्थानुक्रम लेख

अन्य सब विशिष्ट संयुक्त लेख ग्रन्थानुक्रम लेख कहे जाते हैं। उनका

कार्य यह होता है कि जो पाठक ग्रन्थ के सम्बन्ध में केवल ग्रन्थकार के नाम का अथवा उसके किसी एक सहयोगी का अथवा जिस ग्रन्थमाला में वह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ हो उसका स्मरण रखता हो उसके सामने उसे प्रस्तुत कर दे। उदाहरणार्थ प्रस्तुत द्वितीय तथा प्रथम ग्रन्थ के लिए निम्न लिखित संयुक्त लेख लिखे जाने चाहिये:—

---

१ रंगनाथन (शियाली रामामृत)
स्कूल ऐण्ड कालेज लायब्रेरीज — २: ३१ — तु२

---

२ नागर (मुरारिलाल) संपा०
विक्रमाङ्कदेवचरित बिल्हणकृत — द: १ चि५: १ तु५

---

३ प्रिन्सेस ऑफ वेल्स, सरस्वती-भवन-ग्रन्थमाला, मंगलदेव शास्त्री द्वारा संपादित।
८२ बिल्हण : विक्रमाङ्कदेवचरित — द : १ चि ५: १ तु ५

इनमें से प्रथम लेख ग्रन्थकारानुक्रम-लेख कहा जाता है, क्योंकि इसके अग्रभाग में ग्रन्थकार का नाम दिया गया है। इसी प्रकार द्वितीय लेख के अग्रभाग में सम्पादक का नाम देने के कारण उसे सम्पादकानुक्रम लेख कहा जायगा। तथा तृतीय लेख के अग्रभाग में ग्रन्थमाला का नाम रहने के कारण उसे ग्रन्थमालानुक्रम-लेख कहा जायगा।

सामान्य संयुक्त लेख अथवा वर्गानुक्रम-लेख

एक प्रकार के सामान्य संयुक्त लेख का कार्य यह होता है कि पाठक को किसी विषय के नाम से उसकी वर्ग-संख्या की ओर प्रवृत्त करे जिससे वह सूची के वर्गीकृत भाग के उस उपयुक्त प्रदेश का अवलोकन करे और ग्रन्थालय में विद्यमान उस विषय के ग्रन्थों को पा सके। इस प्रकार के लेखों की आवश्यकता पड़ने का कारण यह है कि हम जब ग्रन्थों का

वर्गीकरण करते हैं तो ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय को साङ्केतिक भाषा में अनुवाद कर लेते हैं। साधारण पाठक उस भाषा को बिना मार्गदर्शन के जान नहीं सकते। उदाहरणार्थ, पाठक इतिहास शब्द से अवगत रहता है। वह इतिहास के ग्रन्थ को खोजता है। किन्तु यदि हमारी सूची में केवल 'ल' इस अनूदित रूपान्तर का ही अस्तित्व हो तो वह अपने अभीष्ट ग्रन्थ को कदापि नहीं पा सकता। अतः उसके परिचित इतिहास से हमारे पुस्तकालय-शास्त्र की भाषा के 'ल' इस साङ्केतिक रूप की ओर उसे प्रवृत्त कराना सर्वथा अनिवार्य है।

इन लेखों को वर्गानुक्रम-लेख कहा जाता है। ऊपर सूचीकृत प्रथम ग्रन्थ की ओर निम्नलिखित वर्गानुक्रम-लेखों द्वारा पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया जायगा:—

---

१ बिल्हण विक्रमाङ्कदेवचरित

इस वर्ग के तथा इसके उपविभागों के ग्रन्थों के लिए, द्रष्टव्य, सूची की वर्गीकृत भाग, वर्गसंख्या द: १ चि ५: १

---

२ विक्रमाङ्कदेवचरित बिल्हण

इस वर्ग के······

······वर्गसंख्या द: १ चि ५: १

---

३ काव्य संस्कृत

इस······

······वर्गसंख्या द: १

---

४ संस्कृत-साहित्य

इस······

······वर्गसंख्या द:

---

५ साहित्य

इस······

······वर्गसंख्या ८:

ऐसे पाठक इनेगिने ही मिलेंगे जो अपने विशिष्ट विषयों का ठीक-ठीक निर्देश कर सकें। अधिकतर ऐसा देखा जाता है कि वे अधिक व्यापक विषय का ही निर्देश करते हैं। वह विषय अपने केन्द्र से कितना ही हटा हुआ क्यों न हो, सूची का अकाराद्यनुक्रम भाग पाठक को यह बताए कि जिस विषय का आप निर्देश करते हैं उसके लिए तथा अन्य समस्त सम्बद्ध विषयों के लिए अमुक संख्या से संसृष्ट सूची का वर्गीकृत भाग के प्रदेश को देखें। जब उसकी दृष्टि उस प्रदेश में प्रवेश करती है तब वह वहाँ अपने पाठ्य विषय के संपूर्ण क्षेत्र को पाता है। जब वह उसमें और प्रवेश करता है, तब उसे वे सब विषय प्राप्त हो जाते हैं जिनकी आवश्यकता की उसे हल्का आभास हो रहा था, उसी अवस्था में उसे इस बात का ज्ञान हो पाता है कि उसे वस्तुतः किस वस्तु की आवश्यकता थी। यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सेवा है जिसे आधुनिक सूची परिपूर्ण करती है। इसी महत्त्व-पूर्ण उद्देश्य की सिद्धि के लिए यह आवश्यक माना जाता है कि ग्रन्थ के विशिष्ट विषयों के वर्गानुक्रम लेखों के साथ ही साथ उनके व्यापक विस्तृत विषयों के भी वर्गानुक्रम लेख दिए जायँ।

इसके अतिरिक्त उपरिनिर्दिष्ट ग्रन्थ के ६ प्रत्यनुसन्धान लेखों के कारण निम्नलिखित ६ अतिरिक्त वर्गानुक्रम लेखों की आवश्यकता पड़ती है:—

क कल्याणचालुक्य इतिहास

इस······

······वर्गसंख्या

लि—२२५ न क १: १: चौ

ख कश्मीर-यात्रा

इस······

······वर्गसंख्या रो २४१: चौ

ग राजनीतिक इतिहास कश्मीर

इस······

······वर्गसंख्या खि ४१: १: चौ

घ चरित

किसी विषय के इस सामान्य उपविभाग के लिए द्रष्टव्य सूची का वर्गीकृत भाग, इस उपविभाग से विशेषित विषय की वर्गसंख्या लं

च समालोचना

किसी विषय के इस

वर्गसंख्या :६

वाङ्मय-सूची

किसी विषय के इस······

वर्गसंख्या कं

मुख्य पत्रक का पृष्ठ (भाग)

इस प्रकार सूचीकृत प्रथम ग्रन्थ के बीस संयुक्त लेख हुए। मुख्य पत्रक के पृष्ठभाग में इनका निम्नलिखित रूप में संक्षिप्त निर्देश होना आवश्यक है जिससे संशोधन अथवा ग्रन्थ के विनिर्गम के समय विनिर्गम की आवश्यकता पड़ने पर उनका पता लगाया जा सके।

लि २२५ नक १: १: चौ बिल्हण विक्रमाङ्कदेवचरित
सर्ग १-१७ तथा उपो० पृ० विक्रमाङ्कदेवचरित *बिल्हण*
रो २४१: चौ सर्ग १८ तथा काव्य *संस्कृत*
उपो० पृ० संस्कृत साहित्य
लि ४१: १: चौ सर्ग १८ तथा साहित्य
उपो० पृ० कल्याण चालुक्य *इतिहास*
द: १ चि ५ लं सर्ग १८ तथा कश्मीर-*यात्रा*
उपो० पृ० राजनीतिक इतिहास *कश्मीर*
द: १ चि ५: ६ उपो० पृ० चरित
द: १ चि ५: १: ६ उपो० पृ० समालोचना
लि २२५ नक १: १ कं वाङ्मय सूची
नागर (मु०लू०) *संपा०*
प्रिंसेन्स ऑफ वेल्स, सरस्वती-भवन
ग्रन्थमाला मंगलदेवशास्त्री द्वारा संपा०
८२

यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि प्रत्यनुसन्धान-लेख वर्गानुक्रम-लेख तथा ग्रन्थानुक्रम-लेखों का किस प्रकार विभाजन किया गया है।

सह-ग्रन्थकार, अनुवादक तथा वैकल्पिक नाम आदि अनेक कारण और भी हैं जिनके होने से संयुक्त लेखों की आवश्यकता पड़ती है। नीचे उनके उदाहरण दिए जाते हैं:—

मुख्य लेख

२ तु ७
रंगनाथन (शियाली रामामृत) तथा ओहदेदार (ए० के०) पुस्तकालय मुरारिलाल नागर द्वारा अनुवादित ... १२३४५

नाम (टायटिल) विभाग में बिन्दुओं का तात्पर्य यह है कि ग्रन्थ के

मुखपृष्ठ के अनावश्यक शब्दों को लुप्त कर दिया गया है। यहाँ इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि नाम-विभाग की द्वितीयादि शेष पंक्तियाँ कहाँ से आरम्भ की गई हैं।

विशिष्ट संयुक्त लेख

प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रत्यनुसन्धान-लेखों की आवश्यकता नहीं है।

ग्रन्थानुक्रम-लेख

ग्रन्थकार-लेख

रंगनाथन (शियाली रामामृत) तथा ओहदेदार (ए० के०)

पुस्तकालय — २ तु ७

सह-ग्रन्थकार लेख

ओहदेदार (ए० के०)

पुस्तकालय, रंगनाथन तथा ओहदेदार कृत — २ तु ७

सम्पादक-लेख

भोलानाथ, संपा०

पुस्तकालय, रंगनाथन तथा ओहदेदार कृत — २ तु ७

अनुवादक-लेख

नागर (मुरारिलाल) अनुवा०

पुस्तकालय, रंगनाथन तथा ओहदेदार कृत — २ तु६

वर्गानुक्रम-लेख

पुस्तकालय शास्त्र

इस……

वर्गसंख्या — २

प्रत्यनुसन्धानानुक्रम लेख

सामान्य संयुक्त लेख का एक और भी भेद होता है। इसका कार्य यह होता है कि पाठक को अन्य किसी संभावित वैकल्पिक नाम से स्वीकृत नाम की ओर अथवा ग्रन्थमाला संपादक के नाम से ग्रन्थमाला के नाम की ओर आकृष्ट किया जाय। जैसेः—

मोहनदास कर्मचन्द

द्रष्टव्य

महात्मा गान्धी

मंगलदेवशास्त्री *सम्पा०*

द्रष्टव्य

प्रिन्सेस आफ वेल्स सरस्वती-भवन-ग्रन्थमाला

उपरिनिर्दिष्ट लेखों के द्वारा लेखन-शैली, विच्छेद, (इण्डेन्शन), संख्याओं के लेखन-स्थान, रेखाङ्कनीय पद, विराम आदि और अन्य विवरणों का भी उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है। इन बातों का विशेष विवरण हमारे क्लासिफाइड केटलॉग कोड में पाया जा सकता है। उसमें सब लेखों के शीर्षक का तथा अन्य विभागों का चुनना तथा उनका अनुरूपीकरण विस्तार से दिया गया है। इस सम्बन्ध में निश्चित नियम भी उसी में पाये जा सकते हैं।

सूचीकरण-नियम

यदि हम यहाँ सूचीकरण के समस्त नियमों के विवरण देने बैठें तो यह अध्याय अपने लक्ष्य से च्युत हो जायगा। विभिन्न प्रकार के लेखों की बनावट (ढाँचा) ऊपर के विभाग में दिए हुए उदाहरणों द्वारा स्पष्ट ही प्रकट हो जाती है। अतः उनसे सम्बद्ध नियम यहाँ नहीं दिए जाते। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के लेखों के शीर्षकों के चुनाव को शासित करने वाले नियमों को भी छोड़ दिया जा रहा है क्योंकि वे उन उदाहरणों द्वारा अनुमित किए जा सकते हैं। इनके द्वारा विराम आदि, अनुच्छेद-विधान,

विच्छेद आदि के नियम भी प्रकट होते हैं। इटालिक टाइप में छापे जाने वाले शब्दों को लिखित सूची में केवल अधोरेखाङ्कित कर दिया जाता है। अतः यहाँ जिन नियमों का उद्धरण किया जा रहा है वे केवल व्यक्तिगत नामों के, समुदाय नामों के तथा उपाधियों के अनुरूपीकरण से सम्बद्ध हैं। नियमों की संख्याएँ वे ही हैं जो 'क्लासिफाइड केटलॉग कोड' में दी गई हैं।

ईसाई तथा यहूदी नाम

आधुनिक ईसाई तथा यहूदी नामों के सम्बन्ध में उपनाम (कुलनाम) को प्रथम लिखना चाहिये और उसके बाद अग्र नाम को अथवा अग्र नामों को जोड़ देना चाहिये। जैसेः—

शेक्सपीयर (विलियम)
शा (जार्ज बर्नार्ड)
आइनस्टाइन (एल्फ्रेड)
पिकार्ड (एमिली)
क्विलर काउच (आर्थर टामस)

हिन्दू-नाम

आधुनिक हिन्दू नामों के सम्बन्ध में, नाम का अन्तिम विशेष्य पद प्रथम लिखना चाहिये और अन्य सब प्राथमिक पद तथा नामाक्षर [इनीशियल] उसके बाद जोड़े जाने चाहिये। किन्तु इसमें अपवाद यह है कि दक्षिण भारतीय नामों के सम्बन्ध में, यदि अन्तिम विशेष्य पद केवल जाति अथवा वर्ण सूचित करे और उपान्त्य पद मुखपृष्ठ पर पूर्ण रूप में दिया हो तो दोनों विशेष्य पद अपने स्वाभाविक क्रम में पहले लिखे जायँ।

१. ठाकुर (रवीन्द्रनाथ)	बंगाली
२. मालवीय (मदनमोहन)	हिन्दी
३. राय (लाजपत)	पंजाबी

४. गांधी (मोहनदास करमचन्द)	गुजराती
५. गोखले (गोपालकृष्ण)	मराठी
६. राधाकृष्णन (सर्वपल्ली)	तेलगू
७. शंकरन नायर (चेट्टूर)	मलयालम
८. चेट्टूर (जी० के०)	"
९. कृष्णमाचारी (पी०)	तमिल
१०. श्रीनिवास शास्त्री (वी० एस०)	"
११. रामचन्द्र दीक्षितार (वी० आर०)	"
१२. शिवस्वामी ऐयर (पी०एस०)	"
१३. ऐयर (ए०एस०पी०)	"
१४ रमन (सी०वी०)	"
१५ राजगोपालाचारी (सी०)	"
१६ चारी (पी०वी०)	"
१७ मंगेश राव (साबूर)	कन्नड़
१८ साबूर (आर०एम्०)	"

८,१३,१४,१६ तथा १८ उदाहरणों में जाति-नामों को अथवा अन्य किन्हीं अविशेष्य नामों को प्रथम स्थान देना अनिवार्य है, क्योंकि ग्रन्थकारों ने स्वयं मुखपृष्ठों पर उन रूपों को प्रथम स्थान देना अभीष्ट समझा है और जान-बूझकर अपने नामों के विशेष्य पदों को संक्षिप्त कर नामाग्राक्षर बना दिया है।

समुदित नाम

यदि समुदित ग्रन्थकार सरकार हो और उसका कोई विशिष्ट भाग न हो तो उसके द्वारा शासित अथवा प्रबन्ध-विषयीकृत भौगोलिक प्रदेश का प्रचलित नाम-शीर्षक होना चाहिये। यदि समुदित ग्रन्थकार सरकार का कोई भाग हो तो उपरिनिर्दिष्ट शीर्षक मुख्य शीर्षक होना चाहिये। यदि ग्रन्थकार पूर्ण सरकार न हो, अपितु क्राउन, एग्जिक्यूटिव, लेजिस्लेचर अथवा डिपार्टमेण्ट या इनमें से कोई एक भाग मात्र हो तो उस भाग अथवा विभाग का नाम, उपशीर्षक होना चाहिये और भिन्न वाक्य के रूप में लिखा जाना चाहिये।

उदाहरण

१ मद्रास

२ मद्रास-गवर्नर

३ मद्रास लेजिस्लेटिव असेम्बली

४ मद्रास इन्स्ट्रक्शन (डिपार्टमेण्ट ऑफ़)

यदि समुदाय ग्रन्थकार कोई संस्था हो तो उसका नाम शीर्षक होगा। मुखपृष्ठ, अर्धमुखपृष्ठ अथवा ग्रन्थ के अन्य किसी भाग में उपलब्ध नाम संक्षिप्ततम रूप में लिखा जाना चाहिये। उसके आरम्भ के अथवा अन्त के गौरवजनक अथवा निरर्थक शब्दों को निकाल देना चाहिये। यदि समुदाय ग्रन्थकार किसी संस्था का भाग, विभाग अथवा उपविभाग हो तो उसका नाम उपशीर्षक के रूप में प्रयुक्त करना चाहिये।

उदाहरण

१ लीग आफ नेशन्स

२ साउथ इण्डिया टीचर्स यूनियन

३ युनिवर्सिटी ऑफ़ मद्रास

४ रामानुजन्-स्मारक-समिति

५ इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया, पब्लिक-डेट-आफिस

६ मद्रास लेजिस्लेटिव असेम्बली, पब्लिक-एकाउण्टस-कमेटी

नाम-विभाग

मुखपृष्ठ पर दिए हुए अवगम के स्वरूपानुसार नाम-विभाग एक, दो अथवा तीन भागों से युक्त होता है जिसमें क्रमशः एक अनुच्छेद में निम्नलिखित वस्तुएँ दी जाती हैं:—

१ नाम

२ टीकाकार, सम्पादक, अनुवादक, संग्राहक, संशोधक, संक्षेपक तथा महत्त्वानुसार चित्रकार तथा भूमिका, उपोद्घात, परिशिष्ट अथवा ग्रन्थ के और सहायक अंगों के लेखक आदि के सम्बन्ध में अवगम।

३ संस्करण

वाक्य का प्रथम भाग नाम के ऐसे संगत अंश की प्रतिलिपि अथवा रूपान्तर होना चाहिये जिससे ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषयविस्तार तथा दृष्टिकोण का पूर्ण अवगम कराने के लिए आवश्यक हो तथा जिससे उद्धरण को भली भाँति पढ़ा जा सके।

नाम-विभाग के स्थान में लिखे जानेवाले अंश में विद्यमान जो शब्द लुप्त कर दिए जायँ वे यदि वाक्य के आरम्भ अथवा मध्य में हों तो तीन विन्दुओं के द्वारा और अन्त में हों तो 'इत्यादि' संक्षेप से सूचित किए जाने चाहिये।

ग्रन्थमाला-टिप्पण

ग्रन्थमाला-टिप्पण में क्रमशः निम्नलिखित वस्तुएँ होनी चाहियेः—

१ ग्रन्थमाला का नाम आरम्भ के सम्मान आदि सूचक पद यदि हों तो इन्हें लुप्त कर

२ अल्प विराम

३ द्वारा सम्पा० इन शब्दों से सहित ग्रन्थमाला के सम्पादक (अथवा सम्पादकों) का नाम (यदि ग्रन्थमाला में सम्पादक हो) और अल्पविराम

४ क्रम-संख्या

जब कोई ग्रन्थ ऐसा आ पड़े जिसका काम इन आरम्भिक नियमों के द्वारा न चल सके तब 'क्लासिफाइड केटलॉग कोड' के असंक्षिप्त रूप की ही शरण लेनी पड़ेगी। इसमें जटिल शीर्षक, छद्मनाम-शीर्षक लेख, जटिल ग्रन्थमाला-टिप्पण, मुख्य लेख का पृष्ठ, प्रत्यनुसन्धान लेख, ग्रन्थानुक्रम लेख, प्रत्यनुसन्धानानुक्रम लेख,,नाना संपुटक ग्रन्थ, मिश्र ग्रन्थ तथा सामयिक प्रकाशनों के विषय के नियम दिए हैं।

लेखों का (क्रमिक) व्यवस्थापन

अब यह समस्या उपस्थित होती है कि लेखों का किस प्रकार व्यवस्थापन किया जाय। ऊपर हम उदाहरणार्थ अनेक लेखों को प्रस्तुत कर चुके हैं। इनमें कुछ ऐसे हैं जिनके अग्रभाग में (अभिधान अथवा वर्ग की) संख्याएँ

लिखी हुई हैं। इनके अतिरिक्त कुछ लेख ऐसे हैं जिनके अग्रभाग में शब्द हैं। इन दो समुदायों का सम्मिश्रण नहीं किया जा सकता। यह अत्यन्त आवश्यक है कि इन दोनों का दो विभिन्न परम्पराओं में व्यवस्थापन किया जाय और उन दोनों को पृथक्-पृथक् रक्खा जाय। प्रथम परम्परा में लेख वर्ग-संख्याओं के क्रमिक मान के अनुसारी क्रम में व्यवस्थित किए जायँगे। कुछ लेख ऐसे होंगे जिनमें एक ही प्रकार की वर्ग-संख्या होगी किन्तु उनमें कुछ ऐसे होंगे जिनमें ग्रन्थसंख्या भी होगी। उन्हें प्रथम स्थान दिया जायगा और उनके भी आन्तरिक क्रमिक व्यवस्थापन के लिए अभिधान-संख्याओं के क्रमिक मान का आश्रय लिया जायगा। जो लेख ग्रन्थ-संख्या से रहित होंगे और जिन्हें प्रत्थनुसन्धान लेख कहा जाता है, वे बाद में रक्खे जायँगे और उनकी आन्तरिक व्यवस्था के लिए उनकी तृतीय पंक्ति में दी हुई ग्रन्थ-संख्याओं के क्रमिक मान का आश्रय लिया जायगा। इसके बाद और भी अनेक समस्याएं उपस्थित हो सकती हैं। उनके सुलझाव के लिए 'क्लासिफाइड कैटलॉग कोड' का अवलोकन करना चाहिये। लेखों की द्वितीय परम्परा की आन्तरिक व्यवस्था पूर्णतया वर्णानुक्रम के अनुसार की जायगी। सम्भव है, इस व्यवस्था को क-ख-ग के समान अत्यन्त सरल समझा जाय। किन्तु इसमें अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। उनके भी सुलझाव के लिए 'क्लासिफाइड केटलॉग कोड' के अवलोकन की सम्मति दी जाती है।

सूची-भेद

वर्गीकृत सूची

ऊपर जिस सूची का वर्णन किया गया है उस प्रकार की ग्रन्थालय-सूची में दो भाग होते हैं, यह स्पष्ट ही है। उनमें एक भाग 'अभिधान-संख्या अथवा वर्गीकृत अथवा विषय-भाग रहता है। और दूसरा वर्णानुक्रम अथवा अनुक्रम भाग रहता है। इस प्रकार की द्वैभागिक पुस्तकालय-सूची वर्गीकृत सूची कही जाती है। वर्गीकृत भाग में मुख्य लेख तथा प्रत्य-

नुसन्धान लेख दोनों प्रकार के लेख उपयुक्त वर्गीकरण पद्धति के द्वारा निर्धारित अन्तरंग क्रम में व्यवस्थित किए रहते हैं। इसी सुव्यवस्थित वर्गीकृत अथवा अन्तरंग व्यवस्थापन के कारण सूची के इस भेद का यह नाम निश्चित किया गया है। इस परम्परा में पत्रकों के द्वारा संसृष्ट विषयों को बतलानेवाले दर्शकपत्रकों को प्रविष्ट करने की प्रथा है। अनुक्रम-विभाग में समस्त ग्रन्थानुक्रम-लेख, वर्गानुक्रम-लेख तथा प्रत्यनुसन्धानानुक्रम-लेख कोश के समान वर्णानुक्रम के अनुसार व्यवस्थित किए रहते हैं।

कोश-सूची

पुस्तकालय-सूची का एक दूसरा भी भेद होता है जिसमें विषय-लेख भी वर्णानुक्रम-विभाग से सम्बद्ध रहते हैं; क्योंकि अग्रभागों में विषय वर्ग-संख्याओं के रूप में नहीं, प्रत्युत साधारण शब्दों में लिखे जाते हैं। परिणाम यह होता है कि सूची के समस्त लेखों से केवल एक वर्णानुक्रम-परम्परा बनती है और इसमें वर्गीकृत भाग नहीं रहता। यह स्पष्ट ही है कि इस प्रकार की सूची में विषय-लेख न तो पृथक् रक्खे जा सकते हैं और न उनकी अन्तरङ्ग व्यवस्था की जा सकती है। इसके विपरीत यह अनिवार्य है कि अपने वर्णानुक्रम के अनुसार वे अन्य लेखों में इधर-उधर बिखर जाते हैं। इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। इस प्रकार की सूची में ग्रन्थकार-लेख को पूर्णतम लेख अर्थात् मुख्य लेख बनाने की और विषय-लेख को गिराकर केवल एक संयुक्त लेख बना देने की प्रथा है। इस प्रकार की सूची में 'तथा द्रष्टव्य विषय लेख' नामक एक और प्रकार के लेखों का भी निवेश करना आवश्यक सिद्ध होता है। इनका कार्य यह होता है कि किसी विशिष्ट-विषय-सम्बन्धी जानकारी कुछ अन्य विषयों के लिखित ग्रन्थों में भी पाई जा सकती है, इस बात का ज्ञान पाठकों को कराए। उदाहरणार्थ—

१ संस्कृत काव्य
द्रष्टव्य
विक्रमाङ्कदेवचरित : बिल्हण, द: १ चि ५: १

२ संस्कृत साहित्य.

द्रष्टव्य

विक्रमाङ्कदेवचरित : बिल्हण. द' १ चि ५: १

३ साहित्य.

द्रष्टव्य

विक्रमाङ्कदेवचरित: बिल्हण. द: १ चि ५: १

४ विद्यालय पुस्तकालय.

द्रष्टव्य

अनुसन्धान-सेवा | शिक्षा
शिक्षण-विद्यालय | संचार-कार्य
पुस्तकालय-शास्त्र | सूचीकरण
वर्गीकरण

श्रेष्ठ भेद

पुस्तकालय-सूची के और भी अनेक भेद हैं। किन्तु उपर्युक्त दो ही प्रधान माने जाते हैं। वे या तो महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो चुके हैं अथवा अब हो रहे हैं। कोश-सूची अमेरिकन पुस्तकालयों में अधिक प्रचलित है। ब्रिटिश लोग इसे लोक-ग्रन्थालयों के लिए श्रेयस्कर मानते हैं और शिक्षण-संस्था-सम्बन्धी ग्रन्थालयों के लिए वर्गीकृत सूची की सम्मति देते हैं। मेरी यह दृढ़ धारणा है कि कोश-सूची प्रचार का अतिक्रमण कर चुकी है। अब वर्गीकृत सूची के दिन आ गए हैं और यह तब तक सर्वश्रेष्ठ मानी जाती रहेगी जब तक इससे अच्छा अन्य कोई भेद इसे प्रचारहीन न बना दे। भारतवर्ष में अभी पुस्तकालय-युग का श्रीगणेश ही हो रहा है। कोश-सूची अब प्रचारहीन हो रही है। इस बात का विचार किए

विना ही यदि उसका यहाँ उपयोग किया गया तो बड़ी भारी भूल होगी। भारतवर्ष को सूची के उसी भेद को स्वीकार करना चाहिये जो उन्नति के उच्च शिखर पर स्थित है और वह भेद है वर्गीकृत सूची। उसको स्वीकार करते हुए हमें कुछ सन्तोष का अनुभव होगा, क्योंकि इस प्रकार की वर्गीकृत सूची के लिए केवल एकमात्र कोड भारतीय उत्पत्ति का है।

देन-कार्य

विषय-प्रवेश

पुस्तकालयों के देन-कार्य की सामग्री का आधुनिकीकरण अत्यन्त आवश्यक है। 'पाठकों का समय बचाओ' पुस्तकालय शास्त्र के इस चतुर्थ सिद्धान्त का यह कहना है कि ग्रन्थों की देन का वह पुराना धीमा प्रकार पाठकों की मानसिक भावना की हत्या करता है, क्योंकि वे पाठक अभी-अभी- पुस्तकालयों का उपयोग करने लगे हैं। ग्रन्थों को बन्द-ताले की आलमारियों में बन्द रखने की पुरानी प्रथा को प्रचलित रखना अब घोर अन्याय है। पाठकों को कठोर बाधाओं के द्वारा ग्रन्थों से अलग रखना अत्याचार है। आज यह सर्वथा अनुचित है कि पाठकों से सूची की सहायता के द्वारा ग्रन्थों को माँगने के लिए कहा जाय। आपस में धक्का-मुक्की करनेवाले अत्युत्सुक जन-समुदाय को ग्रन्थों का विभाग करते हुए देना बड़ी ही भारी बात है। उन पाठकों में से कुछ का ग्रन्थों के बाहर रहने के कारण निराशापूर्वक लौट जाना और भी हृदय-विदारक है। आज अधिकांश पुस्तकालयों में बेचारे पुस्तकाध्यक्ष को ही सब कार्य करने पड़ते हैं। उस सर्वकार्यकारी पुस्तकाध्यक्ष का सारा दिन बड़े-बड़े बही-खातों को लिखने में और लेखों को काटने में ही नष्ट हो जाय, यह भी अवाञ्छनीय है।

पुस्तकालय-शास्त्र-सिद्धान्तों की प्रेरणा के कारण, पिछले पाँच दशकों में पुस्तकालय-व्यवसाय ने एक देन-विधि का आविष्कार कर लिया है जिसे हम साक्षात् सरलता कह सकते हैं। साथ ही साथ इसके

द्वारा विद्युद्-वेग की सिद्धि होती है। यह पाठक को पुस्तकालय में सर्वथा व्यस्त रखती है। इसके रहने से प्रतीक्षा में लेशमात्र भी समय नष्ट नहीं करना पड़ता। इस नई विधि को हम 'मुक्त-प्रवेश पाठक-चिटिका और ग्रन्थ-पत्रक' कह सकते हैं।

मुक्त प्रवेश

आधुनिक पुस्तकालयों की लोकतन्त्रात्मक भावना पाठकों को पुस्तकाध्यक्ष जैसी ही स्वतन्त्रता तथा सुविधा प्रदान करती है। वे बिना किसी रुकावट के ग्रन्थ-चयनों में घूम सकते हैं, ग्रन्थों की छानबीन कर सकते हैं, इच्छानुसार ग्रन्थों को खींच सकते हैं, उनमें डूब सकते हैं और चयन-भवन में ही वस्तुतः आस्वाद लेने के बाद अपने आवश्यक ग्रन्थों को चुन सकते हैं। इसे "मुक्त-प्रवेश-प्रणाली" कहा जाता है। पुस्तकालय के अन्दर की इस अत्यन्त स्वतंत्रता का अर्थ यह होता है कि प्रवेश तथा निर्गम स्थानों पर अत्यन्त सावधानी तथा निगरानी रक्खी जाय। ये दोनों पुस्तकालय के लेन-देन टेबुल के पास होते हैं। अन्य सब द्वार बन्द कर दिए जाते हैं। प्रवेश तथा निर्गम-द्वार खटके के दरवाजों से युक्त होते हैं। ये तभी खुल सकते हैं जब लेन-देन-सहायक अपने पैर के नीचे के खटके को दबाकर उन्हें खोले। उसके बिना वे कदापि नहीं खुल सकते। लेन-देन-सहायक को अत्यन्त सावधान रहना चाहिये और खटके की व्यवस्था सर्वदा ठीक-ठीक रखनी चाहिये।

देन-कार्य

देन की 'पाठक-चिटिका, ग्रन्थपत्रक-विधि' में पुस्तकालय के प्रत्येक ग्रन्थ के लिए एक छोटे ग्रन्थ-पत्रक की व्यवस्था होती है। वह पत्रक अग्र-आवरण के अन्दर चिपकाए हुए खलीते में रक्खा जाता है। इस पत्रक में ग्रन्थ की अभिधान-संख्या, उसके ग्रन्थकार तथा उसके नाम का उल्लेख रहता है। प्रत्येक पुस्तक लेनेवाले को उतनी ही चिटिकाएँ दी जाती हैं जितने ग्रन्थ एक साथ ले जाने का वह अधिकारी होता है। यह चिटिका भी

एक खलीते के रूप में होती है जिसमें ग्रन्थ-पत्रक रक्खा जा सके। ग्रन्थ में भी सर्वथा प्रथम पृष्ठ पर एक तिथि-अंक-पत्र चिपकाया रहता है। ग्रन्थ के देने का कार्य यह होता है कि तिथि-अंक-पत्र पर उचित तिथि छाप दी जाय, ग्रन्थ के खलीते में से ग्रन्थ-पत्रक को निकाल लिया जाय और उसे पुस्तक लेनेवाले की चिटिका में प्रविष्ट कर दिया जाय। जुड़े हुए 'ग्रन्थ-पत्रक तथा पाठक-चिटिका' 'न्यास आधार' (चार्जिङ् ट्रे) में तिथि-दर्शक के पीछे, अभिधान-संख्याओं के क्रमानुसार लगाए जाते हैं। वे दर्शक उस तिथि को बतलाते हैं जिसके पूर्व वह ग्रन्थ पुस्तकालय में अवश्य लौटा दिया जाना चाहिये। इस 'न्यास-आधार' के द्वारा उन सब बातों की जानकारी होती रहेगी जिन्हें 'न्यास-प्रणाली' के द्वारा बतलाया जाना आवश्यक और सम्भव हो सकता है।

जब ग्रन्थ को लौटाया जाय, उस समय ग्रन्थ की अभिधान-संख्या तथा उसके तिथि-पत्रक पर छपी उचित तिथि की सहायता से लेन-देन-सहायक न्यास-आधार में सम्बद्ध ग्रन्थ-पत्रक को बड़ी सरलता से ढूँढ़ लेता है। तब वे संयुक्त 'ग्रन्थपत्रक तथा पाठक-चिटिका' बाहर निकाल लिए जाते हैं। ग्रन्थपत्रक ग्रन्थ के खलीते में लगा दिया जाता है और चिटिका पुस्तक लेनेवाले को लौटा दी जाती है।

सदस्य

पुस्तकालय से ग्रन्थों को बाहर ले जाने के अधिकारी लोग सदस्य कहे जाते हैं। नाम लिखाने के बाद प्रत्येक सदस्य को उतनी ही चिटिकाएँ दी जानी चाहिये जितने ग्रन्थों को वह एक साथ ले जाने का अधिकारी हो। प्रत्येक चिटिका में सदस्य का नाम तथा पता निर्दिष्ट होना चाहिये। इसमें सदस्य की अनुक्रम-संख्या भी लिखी रहनी चाहिये। सदस्यों की एक पंजिका (रजिस्टर) भी होनी चाहिये जिसमें उनकी अनुक्रम-संख्या के सामने उनके नाम लिखे रहने चाहिये।

अतिदेय-पंजिका

मुक्त-पत्र-रूप में एक अतिदेय पंजिका भी होनी चाहिये जिसमें प्रत्येक

पत्र एक-एक पाठक को दिया जाना चाहिये। पत्रों को सदस्यों के नाम के अनुसार वर्णानुक्रमरूप से व्यवस्थित करना चाहिये। जब कभी कोई ग्रन्थ उचित तिथि पर न लौटाया जाय तब उस सदस्य के लिए निर्धारित पत्र में उसका उल्लेख कर दिया जाय। उसमें अतिदेय ग्रन्थ की अभिधान-संख्या तथा देय-तिथि का उल्लेख होना चाहिये। जब वह ग्रन्थ लौटाया जाय तो लौटाने की तिथि अगले खाने में लिख देनी चाहिये। उसके अगले खानों में क्रमशः अतिदेय रहने के दिनों की संख्या, अतिदेय लगाए हुए द्रव्य का परिमाण तथा उसके संग्रह की जानकारी होनी चाहिये।

पुस्तकालय-नियम

आदर्श-पुस्तकालय-नियमों के कुछ रूप यहाँ उपस्थित किए जाते हैं।

खुलने का समय

पुस्तकालय के खुलने का समय यथासमय पुस्तकालय-समिति के द्वारा निश्चित किया जायगा।

पुस्तकालय-समिति ने वर्तमान समय के लिए निम्नलिखित निर्णय किया है।

पुस्तकालय सब दिन प्रातः ७ से रात्रि के ६ बजे तक खुला रहेगा।

विशेष सूचना—लेन-देन-विभाग पुस्तकालय के बन्द होने के आधा घंटा पहले बन्द हो जायगा।

पुस्तकालय में प्रवेश

छड़ी, छाता, सन्दूक तथा अन्य आधार और इस प्रकार की अन्य वस्तुएँ जो कि लेन-देन-सहायक के द्वारा रोक दी जायँ, वे प्रवेश-द्वार पर ही रख देनी चाहिये।

कुत्ते तथा अन्य पशु अन्दर प्रवेश न पा सकेंगे।

पुस्तकालय में सर्वथा मौनावलम्बन रखना चाहिये।

थूकना तथा धूम्रपान सर्वथा निषिद्ध है।

जिस सदस्य की चिटिका खो जाय उसे चाहिये कि वह इस बात की लिखित सूचना समिति को दे।

इस प्रकार की सूचना के तीन महीने बाद ही उनकी प्रतिलिपि (डुप्लिकेट) दिया जा सकेगा। उस समय के बीच पाठक को चाहिये कि यदि सम्भव हो तो उस चिटिका के पता लगाने का तथा उसके पुनः पाने का उद्योग करे और समय के बीत जाने पर इसकी दूसरी सूचना दे और उसमें अपने उद्योगों के परिणाम सूचित करे।

यदि चिटिका का पता किसी तरह न लगे तो पाठक को स्वीकृत पत्र पर 'क्षतिपूर्ति प्रतिज्ञा' (इण्डेम्निटी बॉण्ड) लिखनी पड़ेगी और प्रत्येक प्रतिरूप चिटिका के लिए...आने शुल्क देना पड़ेगा।

'क्षतिपूर्ति-प्रतिज्ञापत्र तथा शुल्क प्राप्त हो जाने पर प्रतिरूप चिटिका दे दी जायगी।

उधार लेने की शर्तें

प्रत्येक पाठक अधिक से अधिक तीन पृथक् सम्पुटों को एक साथ उधार ले जा सकता है।

लेन-देन टेबुल को छोड़ने के पहले पाठक को इस बात की जाँच कर लेनी चाहिये कि उसे उधार दिया हुआ ग्रन्थ अच्छी अवस्था में है। यदि वह अच्छी अवस्था में न हो तो इस बात की ओर पुस्तकाध्यक्ष का अथवा उसकी अनुपस्थिति में उसके सहायक का ध्यान आकृष्ट करना चाहिये। अन्यथा उस ग्रन्थ को अच्छी प्रति से बदलने का उत्तरदायित्व उसपर आ पड़ेगा। यदि समुदाय का एक ग्रन्थ लुप्त हो अथवा खो जाय तो पूरे समुदाय को बदलना पड़ेगा। उसका मूल्य उसी क्षण पुस्तकालय में जमा कर देना पड़ेगा और वह समुदाय के सचमुच बदल देने के बाद लौटा दिया जायगा।

सामयिक प्रकाशन, कोश तथा वे कृतियाँ जिन्हें सरलता से बदला नहीं जा सकता तथा अन्य ऐसी कृतियाँ जो पुस्तकाध्यक्ष के द्वारा अनुसन्धान-ग्रन्थ घोषित हों, उधार नहीं दी जा सकेंगी।

पुस्तकालय के ग्रन्थों को सदस्य और किसी को उधार नहीं दे सकते।

प्रत्येक ग्रन्थ देन–तिथि के एक पक्ष बीत जाने पर लौटा देना चाहिये। वे ग्रन्थ जो अस्थायी रूप से विशिष्ट माँगवाले बन जायँ उन्हें आवश्यक अल्पतर समय के लिए उधार दिया जायगा अथवा नियम के अन्दर अस्थायी रूप से अनुसन्धाम ग्रन्थ घोषित किये जायँगे। ग्रंथालय की आज्ञा के अनुसार किसी भी समय उधार की समाप्ति की जा सकती है।

यदि कोई ग्रंथ देय होने पर भी उचित तिथि पर नहीं लौटाया गया तो प्रतिदिन प्रत्येक ग्रंथ पर एक आना देना पड़ेगा।

उधार की अवधि को पुनः एक पक्ष के लिए बढ़ाया जा सकता है, यदि–

(क) प्रार्थनापत्र पुस्तकाध्यक्ष के पास ग्रन्थ देने की तिथि से कम से कम तीन और अधिक से अधिक छः दिन पूर्व आ जाय।

(ख) इस बीच कोई अन्य पाठक उस ग्रन्थ के लिए माँग उपस्थित न करें।

(ग) उसी ग्रन्थ के लिए अधिक से अधिक तीन लगातार पुनर्नवीनीकरणों की अनुमति दी जा सकेगी, जिनके लिए ग्रन्थ को पुस्तकालय में निरीक्षण के लिए उपस्थित करने की आवश्यकता न होगी।

यदि (ख) शर्त पूरी न हो तो ग्रन्थाध्यक्ष उस पाठक के पास पत्र भिजवाएगा और इस ग्रन्थ को उचित तिथि पर लौटा देना पड़ेगा।

जिस सदस्य पर किसी प्रकार का अतिदेय अथवा अन्य पावना बाकी रहेगा वह पुस्तकालय के ग्रन्थों को उधार नहीं ले जा सकेगा।

—:०:—

पुस्तकालय से पुस्तकों की चोरी

श्री भूपेन्द्रनाथ बनर्जी एम० ए०, डी० एल० एस-सी०
पब्लिक लाइब्रेरी (इलाहाबाद) के पुस्तकाध्यक्ष

पुस्तकालयों से पुस्तकों का चोरी जाना लाइब्रेरियन के लिए एक महान् समस्या है। इस अपराध को रोकने के लिए जितने उपाय किए गए, सभी व्यर्थ गए। न जाने जादू से या लाइब्रेरी के कर्मचारियों की आँख में धूल डालकर मान्य पाठक महोदय एकाध पुस्तक उड़ा ले जाते हैं। इस सम्बन्ध में मैं एक अवतरण जास्ट कृत "पुस्तकालय और समाज" से उद्धृत करता हूँ :—

"हरएक पुस्तकालय में पुस्तकों की चोरी की घटना सदैव होती रही है—गुप्त रीति और चाल से। हमेशा होती भी रहेगी, सुरक्षा का प्रबन्ध चाहे जो भी हो। लेखक को एक विचित्र घटना स्मरण है कि लन्दन के दक्षिणी प्रान्त में एक मनुष्य ने नियमानुसार जिले भर की कई लाइब्रेरियों से पुस्तकें चुराई थीं। जब उसने उस 'ब्रांच लाइब्रेरी' से एक पुस्तक उड़ाना चाहा जिसका उत्तरदायित्व लेखक पर था, तब वह पकड़ा गया। पुलिस ने उसके घर की तलाशी ली तो पुस्तकों का एक जमघट मिला। केवल उन्हीं पुस्तकालयों की पुस्तकें न थीं जिनमें बहुत कम पहुँच हो सकती है, बल्कि ऐसे पुस्तकालयों की पुस्तकें पाई गईं जिनका अस्तित्व ही अब न था अथवा वे नाममात्र के लिए कायम थे। महान् आश्चर्य की बात तो यह थी कि उन पुस्तकों में से कुछ ऐसी भी बड़ी-बड़ी 'डाइरेक्टरीज' थीं जिनको लेकर चुपके से और बचकर पुस्तकालय के बाहर चला जाना नितान्त असम्भव था।"

पंजाब-विश्वविद्यालय-पुस्तकालय

भारत के विभिन्न पुस्तकालयों का मुझे जो भी कुछ अनुभव हुआ है, मैं जानता हूँ कि पुस्तकें प्रायः सभी पुस्तकालयों से चोरी जाती हैं।

जब मैं पंजाब-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में 'पुस्तकालय-विज्ञान' का छात्र था तो कुछ विद्यार्थी पुस्तकालय से पुस्तकें चोरी करते हुए पकड़े गए थे। उन्हें पुलिस के हवाले किया गया और उन्हें अदालत से दण्ड मिला। पंजाब-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में सभी सम्भव उपायों का प्रयोग किया गया किन्तु पुस्तकें चोरी जाती रहीं।

मैंने कितने ही पुस्तकालयाध्यक्षों से इस विषय में सलाह ली किन्तु कोई भी सन्तोषप्रद उपाय न बतला सके और कहा कि वे अपने सारे उपाय करके हार चुके हैं। पुस्तकालय से लाभ उठानेवालों में कुछ को पुस्तक चुराने की बीमारी होती है और वे अपने को वश में नहीं कर सकते यद्यपि वे इस पाप से बचने की कभी-कभी कोशिश भी करते हैं। केवल वे ही नहीं जिनके 'पर्स' में गिने-गिनाए सिक्के हैं—बल्कि जो लोग सरलतापूर्वक पुस्तकें खरीद सकते हैं, वे भी पुस्तकें उड़ाने के मर्ज से छुटकारा नहीं पाते।

वे लोग जो आगे चलकर जीवन में महान् पुरुष होंगे और उत्तर-दायित्व का भार ग्रहण करेंगे, वे भी पुस्तक चुराने के मरीज हैं। इससे हमारा तात्पर्य यह है कि वे लोग जिन्हें उचित शिक्षा मिल रही है और जिन्हें हम 'सभ्य' कह सकते हैं, पुस्तकालय की पुस्तकों से लाभ उठाते हैं। उन्हीं में से कुछ लोग अनुचित रीति से पुस्तक चुराने की बुरी लत में फँस जाते हैं। और खेद तो यह है कि उन्हीं सज्जनों के कारण सर्वथा सच्चे-सीधे भी पुस्तकालय के कर्मचारियों के अविश्वास-पात्र बने रहते हैं। किन्तु कुछ इने-गिने लोगों के कारण, जो इस अपराध के भागी होते हैं, सारे सत्यप्रिय पाठकों को दण्ड देना नितान्त अनुचित है जब तक कि चोरी से इतनी अधिक हानि न हो जाय कि इसके सिवा उनके हित के लिए कोई रास्ता ही न सूझे।

इलाहाबाद की पब्लिक लाइब्रेरी

जब मैं उपर्युक्त लाइब्रेरी का अध्यक्ष नियुक्त किया गया तो 'लीडर' में यह सूचना प्रकाशित हुई कि अमुक व्यक्ति पुस्तकालय से पुस्तकों की

चोरी को भविष्य में निर्मूल करने के लिए नियुक्त किया गया है। इसको पढ़कर मैं अत्यन्त चिन्तित हुआ; क्योंकि पुस्तकालय से पुस्तक की चोरी को बन्द करना अत्यन्त दुःसाध्य है। इलाहाबाद-पब्लिक-लाइब्रेरी की इमारत पुस्तकालय के लिए सर्वथा अवांछनीय है अतः मैंने भार ग्रहण करते ही अत्यन्त सतर्कता ग्रहण की। एक शाम को मैं एक ऐसे व्यक्ति को ऐन मौके पर पकड़ने में सफल हुआ जो पुस्तकें चुपके से लेकर हवा होने ही वाला था। पुस्तकाध्यक्ष और जनता का सेवक होने के नाते मुझे उस व्यक्ति को पुलिस के सिपुर्द करना पड़ा। जो सज्जन पकड़े गए थे, संकोचवश कहते ही बनता है कि वे एक इंटरमिजियट कालेज के विद्यार्थी थे।

पुतस्कों के अनेक चोर अदालत से दण्ड पा चुके हैं परन्तु फिर भी इस गुरुतम अपराध के घटने या बन्द होने का कोई लक्षण नहीं प्रतीत हो रहा है। यह कहा जा सकता है कि पुलिस और सी० आई० डी० के होते हुए भी आमतौर से अपराध बन्द नहीं हो सकता। यह शत-प्रतिशत ठीक है। अन्य प्रकार के अपराधी या तो चरित्रहीन और अपढ़ होते हैं या उसे वे अपना उद्यम ही बना लेते हैं। किन्तु पुस्तकालय से पुस्तक चुरानेवाले ऐसे नहीं होते। अतएव उनका यह दुर्व्यवहार कदापि नहीं सहन किया जा सकता। वे लोग जो बहुधा पुस्तकालयों में जाते हैं, या तो किसी बड़े शिक्षा-केन्द्र में विद्या प्राप्त करनेवाले होते हैं या किसी विश्वसनीय पद (ओहदा) पर होते हैं। और यदि ऐसे लोग पुस्तकालय की पुस्तकों पर हाथ साफ करते हैं तो उनकी शिक्षा एवं सभ्यता बिलकुल व्यर्थ हैं।

पुस्तकों की चोरी कई तरह की हो सकती है। कुछ में पूरी पुस्तक ही उड़ा दी जाती है और कुछ में सिर्फ कोई अंशविशेष ही। तस्वीरों और मानचित्रों के चोर भी कम नहीं हैं। पुस्तकों पर अपने विचार प्रकट कर देना या पंक्तियों और गद्य-पद्यांशों के नीचे पेंसिल या स्याही की लकीरें खींचकर उसको नष्ट करना भी एक नियमोल्लङ्घन ही है। मैगजीन (पत्रिका) और पैम्फलेट के चोर तो गिनती में नहीं आ सकते।

कुछ चोर सज्जन भी होते हैं जो कुछ समय तक पुस्तक को अपने पास रखकर काम हो जाने पर उसे इतनी होशियारी से पुस्तकालय में वापस कर जाते हैं कि कर्मचारिगण को जरा भी पता नहीं होने पाता। जो लोग पुस्तकालय से पुस्तकें चुराते हैं (किसी भी रूप में) वे समाज तथा अपने साथियों के सबसे बड़े शत्रु हैं।

यह ऊपर कहा जा चुका है कि अनेकशः प्रयत्नों के होते हुए भी कुछ हद तक पुस्तकों की चोरी अवश्य होती रहेगी। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि बचाव का कोई मार्ग ही न ग्रहण करें। पुस्तकालयाध्यक्ष जो पुस्तकालय-विज्ञान की समुचित शिक्षा पा चुके हैं, प्रबन्धात्मक ज्ञान से पूर्ण हैं, वे चोरी रोकने के बहुत-से तरीके प्रयोग कर सकते हैं। परन्तु कुछ तो आर्थिक सहायता के लोभ में और कुछ अधिकारियों की सहयोगहीनता के कारण ऐसा करने में असमर्थ रहते हैं। यदि सुरक्षा के सभी सम्भव उपायों का उचित प्रयोग किया जाय तो चोरी बहुत अंश तक कम की जा सकती है, यद्यपि सर्वथा बन्द नहीं हो सकती। "हानि का सारा प्रश्न उपयोगिता के सम्बन्ध में विचारणीय है। वास्तविक हानि पुस्तकों की गिनती नहीं, बल्कि पाठकों द्वारा प्रयोग में लाई गई पुस्तकों और खोई पुस्तकों की संख्याओं का अनुपात ही विचारणीय प्रश्न है।

उपायों का निर्देश

बहुत से उपाय पुस्तकों की चोरी की सम्भावना को कम करने के लिए काम में लाए जा सकते हैं। मैं उन सम्भव नियमों का विवरण नहीं देना चाहता जो लाइब्रेरी-विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों से ज्ञात किए जा सकते हैं और न उनका ही उल्लेख करना चाहता हूँ जिनका प्रयोग बहुत से पुस्तकालयों में किया जाता है। सबसे आवश्यक नियमों का ही मैं निर्देश करूँगा जो मुझे डर है, पाठक-जनता को कड़वे न लगेंगे, बल्कि पुस्तकालयाध्यक्षों को सहायक प्रतीत होंगे। अतः उन्हें जानने की आशा सभी पुस्तकालयाध्यक्षों से है—

१—वाचनालय और संग्रहालय दूर-दूर न हों।

२—पाठक और कर्मचारी दोनों के लिए केवल एक प्रवेश और बहिर्गमन-द्वार होना चाहिये।

३—द्वारपाल—चपरासी लोगों को सदैव दरवाजे या फाटक पर रहना चाहिये।

४—पुस्तकें देनेवाले 'क्लर्क' को सदा काउण्टर (बुकिंग--चेयर) पर रहना चाहिए।

५—पाठक को अपने साथ वाचनालय के अन्दर ओवर कोट, चादर, अपनी निजी पुस्तकें और कापियाँ और ऐसी चीजें जो दशा-विशेष में अनुपयुक्त हों, कभी न ले जाने देना चाहिये।

६—पुस्तकें निकालनेवाले अधिकाधिक संख्या में नियुक्त होने चाहिये। जब उनमें से एक पुस्तक निकालने जाय तो दूसरे को वाचनालय में निरीक्षण करते रहना चाहिये।

७—दरवाजों और खिड़कियों पर तार की जाली लगी रहनी चाहिये।

८—पुस्तकालयाध्यक्ष को सख्त निगरानी रखनी चाहिये।

९—सबसे पहले पुस्तकालय के कर्मचारी और पाठकों को सच्चा होना चाहिये।

स्कूलों और कालेजों में अध्यापकों को इस बात पर अधिक ध्यान देना चाहिये कि वे विद्यार्थियों में सत्यप्रियता का उचित भाव और जनता के प्रति सार्वजनिक कर्तव्य की भावना भरें। और कभी-कभी यह भी लाभदायक होगा कि वे अतिरिक्त भाषण (पाठ के अतिरिक्त व्याख्यान) द्वारा उनमें नागरिक की मर्यादा, कर्तव्य और उत्तरदायित्व के प्रति अनुराग उत्पन्न करें ताकि अन्ततोगत्वा इन सब प्रभावों से पुस्तकों की चोरी पर एक रोक-सी लग जाय। "यह आशा की जाती है कि पाठशालाओं में नागरिकशास्त्र पढ़ाया जायगा और पाठक-गण सामाजिक सम्पत्ति और सामाजिक सुविधाओं के अत्यन्त सावधान रक्षक होंगे। हत्या भी कभी-कभी सरलता से बोधगम्य अपराध हो सकती है किन्तु पुस्तकालय से, जिसमें सभी को स्वच्छन्दतापूर्वक जाने का अधिकार है, कोई पुस्तकें मार ले जाता है, यह समझ के बाहर की बात है। यह निम्नतम और सर्वथा अक्षम्य अपराध है।

———:०:———

लोक-पुस्तकालयों की अर्थ-समस्या

श्री शि० रा० रंगनाथन

पूर्व पीठिका

लोक-पुस्तकालयों की अर्थ-समस्या इस प्रस्तुत विषय के तीन पहलू हैं। उनमें से प्रथम का परिज्ञान करने के लिए हम एक लोक-पुस्तकालय पर स्वतंत्र रूप से विचार करते हैं। हम उसके कार्य का परीक्षण करते हैं। हम उसके कार्य की प्रत्येक बात का समन्वय करते हैं। उसके उपयोग में आनेवाली वस्तुओं के अर्थशास्त्र का रूप हम अंकित करते हैं।

दूसरे पहलू का परिज्ञान करने के लिए हम पूरे देश अथवा प्रांत की सम्पूर्ण पुस्तकालय-व्यवस्था पर विचार करते हैं। प्रांत शब्द से हमारा अभिप्राय एक भाषा-भाषी प्रदेश से है। हम उनमें पाई जाने-वाली सामान्य क्रियाओं का परीक्षण करते हैं। हम उनका समन्वय करते हैं और यह विचार करते हैं कि उसमें सम्भावित अपव्यय का निराकरण किया जा सकता है अथवा नहीं। तीसरे पहलू का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हम किसी देश की पुस्तकालय-व्यवस्था के उद्देश्य पर पूर्ण सामाजिक संस्था के रूप में विचार करते हैं। हम उसके सामाजिक लक्ष्य का परीक्षण करते हैं और सामाजिक मितव्ययिता के प्रति उसकी क्या देन है, इसका भी विचार करते हैं। हम अब इन पहलुओं में से प्रत्येक पर सूक्ष्म विचार करते हैं।

एकाकी पुस्तकालय की आर्थिक समस्या

आरम्भ में हम पहले पहलू पर विचार करें। हमारा विचारणीय विषय है—एकाकी पुस्तकालय की आर्थिक समस्या। इसके संचालन में नीचे लिखे विषय आवश्यक हैं।

(१) ग्रन्थों का चुनाव, (२) ग्रन्थ-क्रम, (३) सामयिक क्रम,

(४) आगम लेख तथा विनिर्गम लेख, (५) वर्गीकरण, (६) सूचीकरण, (७) जन-उपयोग के लिए ग्रन्थों का प्रस्तुतीकरण, (८) संचार (६) फलक-क्रम। भौतिक पक्ष में हमें (१) भवन, (२) सामग्री तथा (३) लेख का विचार करना है।

भवन

भवन-निर्माण की आर्थिक समस्या को हल करने के लिए यह आवश्यक है कि कर्मचारी तथा प्रकाश, इन दो वस्तुओं पर होनेवाले आवर्तन-शील व्यय को न्यूनतम कर दिया जाय। इसकी सिद्धि के लिए यह आवश्यक है कि भवन संगठित हो और एक छोटे पुस्तकालय में उसका प्रत्येक भाग 'लेन-देन-टेबुल' से देखा जा सके। उसमें चक्करदार घुमाव या कोने न हों जो दृष्टि का अवरोध कर सकें। जिस स्थान में ग्रन्थों का संग्रह किया जाय वहाँ लम्बरूप स्थान खाली न छोड़ा जाय। इसके विपरीत जहाँ पाठक बैठें तथा पढ़ें वहाँ छत काफी ऊँची हो जिससे पाठकों को यह दुर्भावना न हो कि वे दबाए जा रहे हैं। इससे यह प्रकट होता है कि छोटे पुस्तकालय का भवन समकोण चतुर्भुज होना चाहिये। किसी एक लम्बी दीवार के लगभग बीच में लेन-देन-टेबुल होना चाहिये। हम कल्पना करते हैं कि हमारा काल्पनिक-भवन लम्बी दीवारों की समानान्तर एक रेखा-द्वारा दो भागों में विभक्त है। लेन-देन-टेबुल के निकट-वाला उसका अर्द्धांश अध्ययन-भवन है। उसकी छत प्रायः ६ गज ऊँची है। दूसरा अर्द्धांश दुमंजिला है, और उसकी प्रत्येक मंजिल ३ गज ऊँचाई की है। इसमें ग्रन्थ रक्खे जाते हैं।

खिड़कियाँ

प्रकाश तथा हवा, इन दो का पुस्तकालय-सेवा की उपयुक्तता तथा श्रेष्ठता में बहुत बड़ा हाथ है। लोग इसे अच्छी तरह समझते नहीं। पुस्तकालयों के मानवीकरण की आर्थिक समस्या को सुलझाने के लिए यह आवश्यक है कि पुस्तकालय में भरपूर खिड़कियाँ हों। उनकी योजना

इस प्रकार हो कि लम्बी दीवारों में ४ फीट की खिड़कियाँ हों और बीच-बीच में २ फीट की दीवार हो।

फलक

एक सक्रिय ग्रन्थालय में ग्रन्थों का स्थान बराबर बदलता रहेगा। इसका कारण यह है कि नित्य ही नए ग्रन्थ आते रहेंगे। पुराने ग्रन्थों का विनिर्गम भी होता रहेगा। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि हमें प्रत्येक ग्रन्थ के लिए पाठक ढूँढ़ना आवश्यक है। इसके लिए बीच-बीच में कम से कम वर्ष में एक बार ग्रन्थों का पुनः क्रमिक व्यवस्थापन नितान्त आवश्यक है। अनेक ग्रन्थालय केवल इसीलिए निष्फल सिद्ध होते हैं कि उनके फलक (आलमारियाँ) स्थिर तथा अनेक आकार-प्रकार के होते हैं और इसीलिए उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकता। ग्रन्थालयों की यथार्थ आर्थिक समस्या यह आवश्यक सिद्ध करती है कि ग्रन्थालय के सब फलक घटाए-बढ़ाए जा सकें और सब एक ही परिमाण के हों। लम्बे अनुभव के बाद हम जिस मानतुला पर पहुँचे हैं वह यह है कि आलमारियाँ ३'×८ ३।४ इंच×१ इंच परिमाण की हों तथा प्रत्येक फलक लम्बरूप पार्श्व के प्रत्येक इंच पर लगाए जा सकें। इतनी अधिक व्यवस्थापनीयता इसलिए भी आवश्यक है कि ग्रन्थों की ऊँचाई में बहुत अन्तर होता है। इसी के द्वारा स्थान की वास्तविक मितव्ययिता सम्भव हो सकती है।

निकट भविष्य में प्रकाशित होनेवाले "पुस्तकालय-भवन तथा सामग्री" नामक अपने ग्रन्थ में हम सब प्रकार के ग्रन्थालय-भवनों तथा फरनीचर के मानचित्र तथा विशेष वर्णनों को प्रस्तुत कर रहे हैं। उसमें इस बात का पूरा ध्यान रक्खा गया है कि मानतुला समीकरण हो सके तथा अपने देश की परिस्थितियों की भी अनुकूलता रह सके।

लेखन-सामग्री (स्टेशनरी)

पुस्तकालय के उपयोग में आनेवाली लेख-सामग्री में, उनके आधारों में तथा उनके संग्रह के प्रकार में भी इसी प्रकार के मानतुला-समीकरण

के द्वारा मितव्ययिता प्राप्त की जा सकती है। जहाँ कहीं भी पत्रक (कार्ड) उपयोग में लाए जाते हैं वहाँ उनका मानतुलित प्रमाण ५ इंच × ३ इंच × १।१०० इंच होना चाहिये। पत्रकों को १००-१०० की संख्या में बाँधना चाहिये, कारण अनुभव के द्वारा यह पाया गया है कि इस प्रकार के पैकेट को भिजवाने में अधिक सुविधा होती है। लेख-सामग्री की पूरी नामावली तथा उनका मानतुलित प्रमाण हमारे 'पुस्तकालय-प्रबन्ध' ग्रन्थ में पाए जा सकते हैं।

लेख (रिकार्ड)

पुस्तकालय के विशेष लेख वे होते है जिनका ग्रन्थों से सम्बन्ध रहता है। मितव्ययिता की सिद्धि के लिए यह, आवश्यक है कि वे सरल कर दिए जायँ तथा वे न्यूनतम बना दिए जायँ। एक ही पत्रक यदि भली भाँति आयोजित हो तो वह ग्रन्थ-वरण, आदेश-कार्य, आगम तथा विनिर्गम के काम में लाया जा सकता है। प्रत्येक ग्रन्थ के लिए फलक-पत्रक तथा सूची पत्रकों की भी आवश्यकता है। उनके रेखाचित्र अध्याय में दिए गए हैं। ये आगम-संख्या, अभिधान-संख्या, तथा परम्परा-चिह्नों के द्वारा एक-दूसरे से सम्बद्ध होते हैं।

आर्थिक-समस्या

आर्थिक समस्या के सम्बन्ध में अनुभव के द्वारा यह पाया गया है कि एकाकी ग्रन्थालय की व्ययसम्बन्धी व्यवस्था के लिए योग्य अनुपात निम्न प्रकार से निश्चित करना चाहिये। हमारे व्यय के तीन मार्ग है— (१) ग्रन्थ तथा सामयिक पत्रादि, (२) जिल्दबन्दी तथा अन्यान्य व्यय और (३) सेवा के लिए कर्मचारी। उनमें ४, १ तथा ५ का अनुपात होना चाहिये।

प्रान्तीय पुस्तकालय-व्यवस्था की आर्थिक समस्या

समष्टिरूप से निर्धारित किसी प्रान्तविशेष की आर्थिक समस्या को हम तीन दिशाओं से विचार कर हल कर सकते हैं। (१) ग्रन्थ-साधन, (२) सेवा से पहले ग्रन्थों के साथ अवैयक्तिक कार्य तथा (३) पाठकों की वैयक्तिक

सेवा। यहाँ हम यह दिखलाएँगे कि आर्थिक समस्या को ठोस रूप से हल करने के लिए उपयुक्त तीन पदार्थों में प्रथम के सम्बन्ध में एकीकरण की आवश्यकता है, द्वितीय के सम्बन्ध में केन्द्रीकरण तथा तृतीय के सम्बन्ध में प्रत्येक पुस्तकालय का स्वावलम्बन।

ग्रन्थसाधनों का एकीकरण

यदि प्रत्येक पुस्तकालय अपने प्रदेश के किसी एकाकी पाठक-द्वारा कदाचित् किसी समय माँगे जानेवाले प्रत्येक ग्रन्थ का संग्रह करे तो वह वस्तुतः अपव्यय ही होगा। साथ ही साथ, यदि वह ग्रन्थालय केवल इसी बात का विचार करे कि वह ग्रन्थ अगले अनेक वर्षों तक किसी और पाठक के द्वारा नहीं माँगा जायगा; अतः उसे उस पाठक के लिए भी न दिया जाय जिसे उसकी इस समय वास्तविक आवश्यकता है तो वह पुस्तकालय-सूत्रों का उल्लंघन होगा। इन दोनों दोषों का एक ही साथ निराकरण करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रान्त के समस्त पुस्तकालय के ग्रन्थ-साधनों का एकत्रीकरण हो और उसके फलस्वरूप पुस्तकालय-व्यवस्था में समष्टिरूप से ग्रन्थवरण का एकीकरण हो। लोक-पुस्तकालयों की आर्थिक समस्या इसे आवश्यक सिद्ध करती है।

किन्तु इस सम्बन्ध में एक बात का ध्यान रखना ही पड़ेगा। कुछ ग्रन्थ ऐसे होते है जिन्हें मौलिक अनुसन्धान-ग्रन्थ कहा जाता है। कुछ ग्रन्थ ऐसे होते हैं जिनकी माँग निरन्तर बनी रहती है। इसके अतिरिक्त कुछ ग्रन्थ ऐसे भी होते हैं जिनका उस विशेष समय के लिए बड़ा महत्त्व होता है। ऐसे ग्रन्थो का प्रत्येक ग्रन्थालय को संग्रह करना ही पड़ेगा। किन्तु राष्ट्रीय मितव्ययिता की सिद्धि के लिए यह आवश्यक है कि जिन प्रदेशों की जनसंख्या ५०,००० से कम हो वहाँ के पुस्तकालय अपने जिले के महान् केन्द्रीय पुस्तकालय की शाखाएँ बनने में ही अपना कल्याण मान लें। इसके अतिरिक्त पूर्वोक्त प्रकार के जिला-केन्द्रीय पुस्तकालय भी प्रान्तीय केन्द्रीय पुस्तकालय से सम्बद्ध होने चाहिये। इसी प्रान्तीय केन्द्रीय पुस्तकालय का यह कर्तव्य है कि अपने अंगभूत प्रान्त

के सब पुस्तकालयों के ग्रन्थ-वरण का एकीकरण करे।

पुस्तकालय-व्यवस्था के सम्पूर्ण ग्रन्थ-साधनों का एकत्रीकरण तथा एकीकरण किस प्रकार हो सकता है, उसकी रूपरेखा हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं। हम इस बात की कल्पना करें कि किसी एक भारतीय को किसी ग्रन्थ की आवश्यकता है। हमें इस बात का कोई भी विचार नहीं करना चाहिये कि वह भारतीय कहाँ रहता है अथवा वह कौन है अथवा वह क्या चाहता है। वह अपने अभीष्ट ग्रन्थ के लिए अपने स्थानीय पुस्तकालय में अपनी माँग पेश करता है। यदि वहाँ उस ग्रन्थ की प्रति है तो वह उसे उसी क्षण मिल जाती है। किन्तु यदि वहाँ वह ग्रन्थ नहीं रहता और वह पुस्तकालय यह सोचता है कि उस ग्रन्थ के पुनः किसी पाठक के द्वारा माँगे जाने की सम्भावना नहीं है और इसीलिए उस ग्रन्थ को खरीदने की कोई आवश्यकता नहीं है तो वह पुस्तकालय उस ग्रन्थ के लिए अपने प्रान्तीय केन्द्रीय पुस्तकालय को सूचित करता है। वहाँ प्रान्त के समस्त पुस्तकालयों की संघ-सूची (यूनियन केटलॉग) रहती है। उसके द्वारा यह जान लिया जाता है कि प्रान्त के किस पुस्तकालय में वह आवश्यक ग्रन्थ प्राप्त हो सकता है। अब प्रान्तीय पुस्तकालय (जहाँ वह ग्रन्थ होता है) उस पुस्तकालय को सूचित करता है कि वह आवश्यक ग्रन्थ उस पुस्तकालय (जहाँ से माँग की गई है) में भेज दिया जाय। यदि संघ-सूची में उस ग्रन्थ का निर्देश नहीं होता तो प्रान्तीय केन्द्रीय पुस्तकालय उस ग्रन्थ को खरीदकर प्रार्थी पुस्तकालय को वह ग्रन्थ भेज देता है। इसके विपरीत यदि वह ग्रन्थ अप्राप्य होता है या ऐसी भाषा में होता है जो कि उस प्रान्त के लिए नई होती है अथवा ऐसी सम्भावना होती है कि भविष्य में अनेक वर्षों तक उस प्रान्त में किसी पाठक-द्वारा वह ग्रन्थ माँगा नहीं जा सकता तो प्रान्तीय केन्द्रीय पुस्तकालय राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय-द्वारा किसी अन्य प्रान्त से उस ग्रन्थ को माँग लेता है। 'ग्रन्थ-वरण तथा अन्तःपुस्तकालय आदान-प्रदान के स्तर पर किसी प्रान्तविशेष के समस्त पुस्तकालयों का आर्थिक एकीकरण उपर्युक्त प्रकार का होना चाहिये।

कला-कार्य का केन्द्रीकरण

जब कोई नया ग्रन्थ पुस्तकालय में आता है तो उसका वर्गीकरण तथा सूचीकरण करना आवश्यक होता है। कारण यह है कि उस ग्रन्थ के लिए पाठक ढूँढ़ने की तथा उस ग्रन्थ को उसके प्रत्येक सम्भावित पाठक के सामने, उसका लेशमात्र भी समय नष्ट किए बिना, लाने की नितान्त आवश्कता है। ये दोनों कार्य अवैयक्तिक हैं और उसके सम्भव उपयोग-कर्ताओं के विषय में परिज्ञान के बिना भी किए जा सकते हैं। अतः यह कार्य ग्रन्थ की समस्त प्रतियों के लिए किसी केन्द्रीय संस्था के द्वारा किया जा सकता है। यह संस्था ग्रन्थ की अभिधान-संख्या को निश्चित कर सकती है, उसके सूचीपत्रकों को प्रस्तुत कर सकती है और उन्हें सम्बद्ध पुस्तकालयों में भिजवा सकती है। कला-विषयक, अवैयक्तिक इस कार्य के केन्द्रीकरण की आर्थिक समस्या का स्पष्ट परिज्ञान करने के लिए हम थोड़ी गणना करना चाहते हैं। हम यह कल्पना कर लें कि एक ग्रन्थ के वर्गीकरण तथा सूचीकरण में पूरा व्यय आठ आने होते हैं। हम इसकी भी कल्पना कर लें कि भारत में प्रतिवर्ष प्रकाशित होनेवाले ग्रन्थों में से कम से कम २००० ग्रन्थ भारत के सभी पुस्तकालयों में खरीदे जा सकते हैं। इन २००० ग्रन्थों के वर्गीकरण तथा सूचीकरण में कुल १००० रुपयों का व्यय अवश्यम्भावी है। निकट-भविष्य में प्रकाशित होनेवाले "पुस्तकालय-उन्नति-योजना और भारत के लिए पुस्तकालय-बिल" नामक अपने ग्रन्थ में हमने यह निरूपण किया है कि भारत में १५४ नगर-केन्द्रीय पुस्तकालय, ३२१ ग्राम-केन्द्रीय पुस्तकालय, २४ प्रान्तीय केन्द्रीय पुस्तकालय, १ राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय तथा ४८६२ शाखा-पुस्तकालय अर्थात् कुल ५३१२ पुस्तकालय अवश्य हों। यदि प्रत्येक पुस्तकालय उन २००० ग्रन्थों के वर्गीकरण तथा सूचीकरण का काम दोहराए तो ५३, १२,००० रुपयों का व्यय होगा। किन्तु यदि उस कार्य का केन्द्रीकरण कर दिया जाय तो विभिन्न पुस्तकालयों में सूचीपत्रकों के वितरण का खर्च मिलाकर भी, कुल व्यय केवल ६००० रु० होंगे। इस प्रकार लगभग आधे करोड़ रुपयों की बचत होगी। लोक-

पुस्तकालयों की ठोस आर्थिक समस्या इस वस्तु की उपेक्षा नहीं कर सकती।

संयुक्तराष्ट्रों में तथा रूस में इस दिशा में निजी तौर पर उद्योग किया जा रहा है। पुस्तकालय-आन्दोलन के सूत्रपात के बहुत दिनों बाद और कतिपय ग्रन्थालयों में इस कला-कार्य को अपने ही हाथों में रखने की एक प्रकार की आत्म-प्रतिष्ठा जग चुकने के बहुत बाद इस कार्य के केन्द्रीकरण का उद्योग किया जा रहा है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि अमेरिका तथा रूस में धन का बहुत बड़ा भाग निरर्थक नष्ट किया जा रहा है, किन्तु हमारे देश में अभी पुस्तकालय-आन्दोलन अपने पैरों पर आप खड़ा होने के लिए हमारे अथक उद्योग की अपेक्षा रखता है। हम दूसरों के अनुभव से लाभ उठा सकते हैं। हम यदि चाहें तो आरम्भ से ही ध्यानपूर्वक आयोजित कानून के द्वारा सब प्रकार के अवैयक्तिक कला-कार्यों में केन्द्रीकरण तथा राष्ट्रीय मितव्ययिता की सिद्धि कर सकते हैं। इस विषय की विशद सम्मति हमने अपने "पुस्तकालय-उन्नति-योजना और भारत के लिए पुस्तकालय-बिल" नामक नए ग्रन्थ में दी है।

अनुसन्धान-सेवा में स्वावलम्बन

लोक पुस्तकालयों की आर्थिक समस्या इस बात की आग्रह के साथ सम्मति देती है कि उपर्युक्त दोनों कार्यों में पूर्ण केन्द्रीकरण तथा एकीकरण किया जाय। किन्तु वही आर्थिक समस्या विभिन्न पाठकों की व्यक्तिगत सेवा के विषय में उतने ही आग्रह के साथ केन्द्रीकरण न करने की जोरदार सम्मति देती है। यह कार्य प्रत्येक पुस्तकालय के अनुसन्धान-कर्मचारियों का है। जीवन-क्षेत्र का यह एक नियम है कि सजीव मनुष्यों की सेवा चरमावस्था में संजीवक नेत्रों के ही द्वारा की जानी चाहिये। अवैयक्तिक यांत्रिक सहायताएँ उस अवस्था तक कदापि नहीं पहुँच सकतीं। इसके लिए हम हॉकी-खेल के इस नियम को उपस्थित कर सकते हैं कि केवल घेरे में रहनेवाला खिलाड़ी ही गेंद को गोल में डाल सकता है। अतः हाकी-खेल की आर्थिक समस्या यह आवश्यक मानती है कि घेरे में एक व्यक्ति ऐसा होना ही चाहिये जो गेंद को गोल में डाल सके। अन्यथा दूसरे सब खिलाड़ियों का

सब उद्योग सर्वथा निरर्थक सिद्ध होगा। लोक-पुस्तकालयों की सेवा के सम्बन्ध में भी यही बात है। अतः प्रत्येक लोक-पुस्तकालय में योग्य, पर्याप्त अनुसन्धान-कर्मचारियों की नितान्त आवश्कता है। उनका यह कार्य होता है कि वे पाठकों को ग्रन्थों के प्रति आकृष्ट करें और उनका समय नष्ट किए विना ही प्रत्येक पाठक को उसके अनुरूप ग्रन्थ प्राप्त करने में उनकी सहायता करें। पुस्तकालयों की आर्थिक समस्या सेवा की आर्थिक समस्या है, वस्तुओं की नहीं। अतः उसकी आर्थिक समस्या की दृढ़ता अनुसन्धान-कर्मचारियों द्वारा की जानेवाली सेवा की योग्यता तथा तत्परता के द्वारा नापी जायगी। अतः प्रत्येक पुस्तकालय का यह पवित्र दायित्व है कि योग्य अनुसन्धान-कर्मचारियों को रक्खे तथा प्रत्येक अनुसन्धान-सहायक का यह पवित्र दायित्व है कि वह पुस्तकालय के प्रत्येक पाठक को पूर्ण सन्तोष दिलाने का पूरा-पूरा प्रयत्न करें।

लोक-पुस्तकालयों की आर्थिक समस्या का सामाजिक दृष्टिकोण

अन्त में हम इस विषय का विचार करेंगे कि देश की सामाजिक मितव्ययिता में लोक-पुस्तकालय-व्यवस्था का क्या स्थान है। इसके लिए हम क्रमशः निम्नलिखित बातों का विचार करना चाहते हैं:— १ लोक-पुस्तकालय-व्यवस्था का सामाजिक उद्देश्य, २ धन-विनियोग पूँजी लगाना के रूप में उसपर होनेवाला खर्च, ३ लोक-अर्थ के सिद्धान्त और ४ पुस्तकालय के अर्थ में हिस्सा बँटाना।

सामाजिक उद्देश्य

पुस्तकालय-व्यवस्था का सामाजिक उद्देश्य केवल यही नहीं है कि आगे आनेवाली पीढ़ियों के ग्रन्थों की सुरक्षा-मात्र की जाय अथवा तो मनोविनोद-मात्र के लिए अध्ययन-सामग्री प्रस्तुत की जाय। बल्कि देशवासियों के स्थायी-स्वाध्याय-उन्नयन-कार्य का सक्रिय साधक बनना ही इसका सामाजिक उद्देश्य है। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि मानव-साधनों की निरन्तर पूर्ण उन्नति के न करने पर देश का

अधःपतन अवश्यम्भावी है। इस बात का विचार करने पर ही हम जान पाएँगे कि सामाजिक मितव्ययिता में लोक-पुस्तकालय-व्यवस्था का क्या महत्त्व है। यह केवल सिद्धान्त की ही बात नहीं है। न्यूयार्क की मेट्रोपौलिटन इन्श्योरेन्स कम्पनी ने हिसाब लगाकर निश्चित किया था कि संयुक्तराष्ट्र अमेरिका की सम्पत्ति एक अरब रुपये है। इतना ही नहीं, उसी कम्पनी ने उस देश के निवासियों का आर्थिक मूल्य लगभग पाँच अरब आँका था। इस प्रकार की जाँच से ही यह मालूम पड़ सकता है कि मानव-साधनों की उन्नति का कितना अधिक महत्त्व है और साथ ही उस उन्नति के साधक पुस्तकालयों का आर्थिक मूल्य कितना ऊँचा है।

धनविनियोग (लाभ के लिए पूँजी लगाना)

संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका की सरकार दृढ़ विश्वास रखती है कि लोक-पुस्तकालयों पर जो भी व्यय किया जाता है वह धन का सबसे अच्छा विनियोग है। साथ ही वह इस बात का भी ध्यान रखती है कि लोक-पुस्तकालयों पर जो कुछ भी धन खर्च किया जाय वह लोक-कर के द्वारा ही प्राप्त किया जाय, निजी निधियों से नहीं। इसका कारण निम्नलिखित है। क्रयवस्तुएँ और सेवा, ये दोनों अलग-अलग वर्गों में विभक्त हैं। क्रयवस्तुएँ वे हैं जो कि चुकाये जानेवाले मूल्य के अनुपात में ही खरीददार को मिल सकती हैं। किन्तु सेवा के बारे में ऐसा नियन्त्रण नहीं है। सेवा का प्रार्थी व्यक्ति उसके बदले में चाहे जो कुछ भी दे, सम्भव है वह कुछ भी न दे, किन्तु उसे सेवा उस अनुपात में ही प्राप्त होगी जितनी कि उसे आवश्यक है। प्रथम वर्ग के लिए मूल्य साक्षात् और वह भी प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा उस समय चुकाया जाता है जब कि वह व्यक्ति उस वस्तु पर अपना स्वत्व स्थापित करता है। दूसरे वर्ग के लिए मूल्य कर के रूप में चुकाया जाता है और कर की मात्रा निश्चित करते समय यह नहीं सोचा जाता कि अमुक व्तक्ति वस्तु का किस मात्रा में उपयोग करता है। बल्कि यह देखा जाता है कि अमुक व्यक्ति की कर देने की कितनी शक्ति है अर्थात् उसकी जेब कहाँ तक बोझ उठा सकती है।

वस्तुएँ बड़ी शीघ्रता के साथ प्रथम से दूसरे वर्ग में बदलती चली जा रही हैं। जब यह देखा जाता है कि अमुक वस्तु की अथवा सेवा का उपयोग देश के प्रत्येक व्यक्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक है और उसके बिना देश की उन्नति अशक्य है, तब वह वस्तु या सेवा प्रथम वर्ग से दूसरे वर्ग में चली जाती है। इसके विपरीत यदि प्रत्येक नागरिक अनिच्छापूर्वक उसका आश्रय ले और उसका मूल्य चुकाए तो वह प्रथम वर्ग में ही रखी जायगी। किन्तु यदि वह ऐसी हो कि प्रत्येक व्यक्ति उसकी उपयोगिता स्वयं उसके लिए तथा देश के लिए कितनी है, इस बात को न आँक सके और अनिच्छा-पूर्वक उसकी चाह न करे और न उसका मूल्य चुकाए तो वह द्वितीय वर्ग में रख दी जायगी।

उदाहरणार्थ हम सिनेमा को पहले ले सकते हैं। आज यह आवश्यक नहीं माना जाता कि देश की भलाई के लिए प्रत्येक व्यक्ति को सिनेमा देखने जाना चाहिये। अतः सिनेमा-खेल के दाम निजी तौर पर प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा चुकाए जाते हैं, लोक-कर के द्वारा नहीं। साथ ही साथ, देश की भलाई के लिए यह आवश्यक माना जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति भरपूर खाना खाए। साथ ही साथ, यह बात भी लोक-विदित है कि पेट की ज्वाला लोगों को अन्न पाने के लिए तथा उसका मूल्य चुकाने के लिए बाध्य करती है। अतः अन्न का मूल्य निजी तौर पर प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा अलग-अलग चुकाया जाता है, लोक-कर के द्वारा नहीं।

जब से व्यापक बालिग मताधिकार मान लिया गया तभी से राज्य ने यह आवश्यक समझा कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए साक्षर होना तथा थोड़ी भी शिक्षा लेना अनिवार्य है। तथापि साक्षरता और शिक्षा में भूख की नाईं तीव्र प्रेरणा नहीं होती कि वह अपने शमन के लिए मनुष्य को विह्वल बनाए। तात्पर्य यह है कि भूखा व्यक्ति अन्न पाने के लिए प्राणों की बाजी लगाकर उद्योग करता है। किन्तु निरक्षर और मूर्ख व्यक्ति साक्षरता तथा शिक्षा पाने के लिए उस प्रकार उद्योग करने की आवश्यकता समझ ही नहीं सकता। यही कारण है कि प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य तथा निःशुल्क कर दी जाती है और उसके व्यय का बोझ प्रत्येक व्यक्ति को अलग-अलग

नहीं, अपितु लोक-कर के द्वारा उठाना पड़ता है। उसी प्रकार यदि जनता का स्थायी आत्मशिक्षण केवल भिन्न-भिन्न व्यक्तियों का पृथक् कर्तव्य माना जाय और देश की भलाई के लिए राज्य इसे आवश्यक न माने तो लोक-पुस्तकालय-व्यवस्था को प्रथम वर्ग में ही पड़े रहना पड़ेगा और उसका मूल्य प्रत्येक व्यक्ति को निजी तौर पर चुकाना पड़ेगा। किन्तु बात ऐसी नहीं है। आज सरकार इस बात को मानती है कि देश की भलाई के लिए प्रत्येक व्यक्ति का स्थायी आत्मशिक्षण अत्यन्त आवश्यक है। अतः पुस्तकालय-सेवा को दूसरे वर्ग में रक्खा जा सकता है। साथ ही, यह पाया गया है कि पुस्तकालय-सेवा का लाभ उठाने के लिए, उसे पाने के लिए और उसका मूल्य चुकाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को खाद्य-वस्तु की भाँति स्वतः सबल प्रेरणा नहीं होती। अतः पुस्तकालय-सेवा सचमुच दूसरे वर्ग में रक्खी जाती है और उसका मूल्य लोक-कर के द्वारा चुकाया जाता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि लोक-पुस्तकालय-व्यवस्था के व्यय को धन-विनियोग के रूप में देखना चाहिये और उसका मूल्य कर अथवा शुल्क के रूप में चुकाया जाना चाहिये।

लोक-अर्थ

पुस्तकालयों पर जो धन खर्च किया जाता है, वह दसगुना होकर हमें पुनः प्राप्त होता है। इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। इसके वापस लौटने के कई तरीके हैं। सबसे पहला यह है कि पुस्तकालय के अस्तित्व के परिणाम-स्वरूप नागरिकों की आदतें सुधर जायँगी और उनमें नागरिकता की भावना अपना घर जमा लेगी। दूसरा तरीका यह है कि जनता का औसत जीवन अधिक उन्नत हो जायगा और मानव-शक्ति कहीं अधिक बढ़ जायगी। तीसरा प्रकार यह है कि श्रमिकों में और शिल्पियों में अपने-अपने काम की योग्यता बढ़ जाने के कारण उत्पादन का भी परिमाण बहुत बढ़ जायगा। इसके अतिरिक्त व्यापार करने के नए-नए ढंगों का ज्ञान होने से व्यापार तथा व्यवसाय में भी उन्नति होगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि निज तथा लोक दोनों अर्थों में किसी प्रकार की एकता नहीं

है। दोनों एकदम भिन्न हैं। आय तथा व्यय का सामंजस्य दोनों में समान नहीं है।

जो अर्थ राज्य के द्वारा उत्पादित किया जाता है, जिसकी व्यवस्था और नियन्त्रण राज्य के हाथ में होते हैं और जिसका प्रयोजन राष्ट्र की भलाई ही है उसे लोक-अर्थ कहा जाता है। अर्थ निजी पार्टी के द्वारा उत्पादित नहीं किया जाता, किन्तु लोक-अर्थ के द्वारा उत्पादित स्रोत से संचित किया जाता है। यदि इस प्रकार देखा जाय तो धन लोक-अर्थ के द्वारा निर्मित एक चिह्नमात्र है। इसके निर्माण का उद्देश्य यह है कि देश के खनिज, वनस्पति, पशु, शक्ति तथा मानसिक, सब प्रकार के साधनों के लिए धन रूपी इस चिह्न का उपयोग किया जाय और उन साधनों को इस चिह्न के रूप में प्रकाशित किया जाय, उनका सक्रिया उपयोग किया जाय तथा योग्यरूप में उनका विभाजन किया जाय। इस धन के प्रमाण की मात्रा ऐच्छिक होती है। किन्तु यह सम्भव है कि एक देश से दूसरे देश के आदान-प्रदान में इसका किसी न किसी रूप में नियन्त्रण किया जाय।

तात्पर्य यह है कि 'स्वतन्त्र धन' का उल्लेख असंगत है। जब हम राज्य तथा लोक-अर्थ के कर्तव्यों का विचार करने बैठें तो 'इतना धन' 'इतने रुपये' इस रूप में विचार करना उचित नहीं है। यहाँ तक कि राज्य को इतना अधिकार है कि राष्ट्र की सामग्रियों को, विभिन्न साधनों को, इच्छा-नुसार नियन्त्रित कर सदुपयोग में लाएँ। हाँ, उसको केवल सारे राष्ट्र की पूरी भलाई का ही ध्यान रखना चाहिये। इस प्रकार के व्यवहार की योग्यता केवल स्व-अर्थ में ही हो सकती है।

इसका कारण यह है कि जब हम लोक-अर्थ के क्षेत्र का विचार करते हैं तो यही पाते हैं कि समस्त राष्ट्र की स्थायी और उन्नतिशील भलाई करने में सहायक तथा आवश्यक सेवाओं का तथा वस्तुओं का ही राज्य को ख्याल रखना है। उसका यह कर्तव्य है कि विभिन्न सेवाओं का तथा वस्तुओं की योग्य अनुपात में व्यवस्था करे। इसकी सिद्धि तब तक नहीं हो सकती जबतक राज्य उन सब सेवाओं तथा वस्तुओं का एक सूत्र में

आवद्ध तथा सामूहिक चित्र अपने सम्मुख उपस्थित न करे। उसके बाद राज्य का यह कर्तव्य होता है कि उन्हें मुद्रा के रूप में व्यक्त करे। साथ ही सर्वोपयुक्त मात्रा का निर्धारण करना तथा आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन करते रहना भी राज्य ही का कर्तव्य है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि लोक-आय का किस प्रकार संग्रह किया जा सकता है और उससे एकत्र धन की विभिन्न सेवाओं तथा वस्तुओं के लिए किस प्रकार विभाजन किया जा सकता है।

भारत आज तक पराधीन था। यही कारण है कि हम किसी प्रकार की दूरगामी योजना न तो बना सकते थे और न अपनी समस्याओं को इस प्रकार सुलझा सकते थे। हमारे लोक-अर्थ को स्वेच्छानुसार व्यय किया जाता था और उसमें लक्ष्य केवल यही रहता था कि ब्रिटिश जनता की किस प्रकार भलाई की जाय। भारतीय जनता की भलाई से उन्हें प्रयोजन ही क्या? हमारा लोक-अर्थ सच पूछा जाय तो अंग्रेजों का स्व-अर्थ बना दिया गया था। ऐसी अवस्था में दूरगामी, राष्ट्रनिर्माणकारी, विधायक योजनाओं का मौका कहाँ था? शिक्षा, पुस्तकालय-व्यवस्था या मद्यनिषेध—प्रत्येक प्रस्ताव निज अर्थ की भाँति, आर्थिक कारणों के बहाने या तो कम कर दिया जाता था या उसका सर्वथा नाम ही लेना पाप घोषित कर दिया जाता था।

किन्तु आज स्वतन्त्र भारत इस प्रकार नहीं सोच सकता। स्वाधीन भारत को इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि उसका लोक-अर्थ स्व-अर्थ के बन्धनों से मुक्त कर दिया जाय। आस्ट्रेलिया आदि देशों ने स्वतन्त्र होते ही क्या किया? भारत को उसी आदर्श का पालन करना चाहिये। लोक-अर्थ अर्थात् मुद्रा, 'कर, वाणिज्य, उद्योग, लोक-ऋण, तथा लोक-व्यय—इन सबकी इस प्रकार व्यवस्था की जाय कि सारे राष्ट्र को इष्ट तथा तथा अपेक्षित लाभ हो। यदि हम अत्यन्त दुर्गम्य तथा महत्त्वपूर्ण अर्थशास्त्रीय शब्द प्रयुक्त करें तो यह कह सकते हैं कि वितरण ही लोक-अर्थ की आधार-भित्ति है। यदि देखा जाय तो वितरण वस्तुतः धन का नहीं, अपितु सेवा तथा वस्तुओं का आधार है।

जब हम लोक-अर्थ तथा लोक-मितव्ययिता के क्षेत्र में विचार करने बैठें तब सेवाओं तथा वस्तुओं में प्रथम स्थान किसे दिया जाय, इसका निर्णय करने के लिए आर्थिक कारणों को निर्णायक न बना दें। किन्तु इसका निर्णय करने के लिए हमें यह विचार करना चाहिये कि भविष्य में सेवा तथा वस्तुओं का अधिक उन्नयन करने के लिए किसमें आपेक्षिक शक्ति तथा योग्यता अधिक है। साथ ही हमें समय तथा उपलब्ध मानव-शक्ति का भी विचार करना पड़ेगा। इतना ही नहीं, उचित तथा उपयोगी वितरण का भी ध्यान रखना पड़ेगा। शिक्षा का मूल आधार पुस्तकालय-आन्दोलन प्रथम श्रेणी में स्थान पाने का अधिकारी है।

कर अथवा शुल्क

इसके अतिरिक्त, लोक-अर्थ के संग्रह के लिए प्रान्तीय कर तथा स्थानीय शुल्क दोंनो लगाए जाते हैं। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि पुस्तकालय-अर्थ की प्राप्ति कर से की जाय अथवा शुल्क से। इसका उत्तर पाने के लिए हमें लोक-पुस्तकालय-व्यवस्था को स्थानीय अधिकारी तथा प्रान्तीय सरकार के बीच विद्यमान सहकारिता के रूप में देखना चाहिये। इसमें दोनों के पृथक्-पृथक् किन्तु अत्यन्त आवश्यक कर्तव्य होते हैं। सरकार का कर्तव्य होता है कि वह मानतुलाओं को लागू करे और स्थानीय अधिकारी का यह कर्तव्य होता है कि वह उसकी सेवा की व्यवस्था करे। यदि पूरा आर्थिक बोझ केवल सरकार को ही उठाना पड़े अर्थात् केवल कर के ही द्वारा उसकी व्यवस्था की जाय, तब उन दोनों के बीच सहकारिता का सम्बन्ध नहीं, अपितु स्वामी और सेवक का सम्बन्ध उत्पन्न हो जायगा।

साथ ही, यदि सरकार न तो कुछ दे और न हिस्सा बटाए तो उसे मानतुलाओं को लागू करने का कोई अधिकार नहीं हो सकता। संसार के अधिकांश देशों में आज यही सिद्धान्त मान लिया गया है कि सरकार तथा स्थानीय अधिकारी, दोनों सहकारी व्यय का एक-एक भाग चुकाएँ।

स्थानीय अधिकारी एक पुस्तकालय-शुल्क लगाएँ और प्रान्तीय सरकार सहायता दे।

किन्तु योग्य सहायता की विधि को निश्चित करने में कुछ कठिनाई का अनुभव किया जाता है। यह विधि कर के विस्तार तथा वितरण पर अवलम्बित होनी चाहिये। आज कुछ देशों में यही प्रथा है कि दोनों व्यय में आधा-आधा हिस्सा बटाएँ।

विश्व के महान् पुस्तकालय

श्री ए० के० ओहदेदार, एम० ए०, बी० एस-सी०, डिप० एल० एस-सी०
(काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय)

किसी राष्ट्र की संस्कृति का एक आवश्यक अंग ज्ञान के भण्डार का निर्माण भी है। यह ज्ञान-भण्डार मानव-मस्तिष्क से उत्पादित सामग्री का संरक्षण तथा वितरण करता है। विश्व के महान् पुस्तकालय भिन्न-भिन्न राष्ट्रों की संस्कृति के इस पहलू के परिचायक हैं।

इन महान् पुस्तकालयों में सर्वप्रथम उल्लेख्य है ब्रिटिश संग्रहालय जिसने अपनी परम्परा और अपने महत्त्व से महान् ब्रिटिश राष्ट्र की तरह ही ख्याति अर्जित की है। इस पुस्तकालय के जन्मदाता हैं सर हैन्स स्लोन (१६६०–१७५३ ई०)। वे सर्वग्राही पुस्तक-प्रेमी थे। उन्होंने ५००० छपी और ३५१६ हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रह किया था। उनके वसीयतनामे के मुताबिक २०००० पौण्ड में यह ब्रिटिश सरकार को दे दिया गया। ब्रिटिश म्यूजियम (संग्रहालय) के नाम से जनवरी १७५६ ई० में इस संस्था ने सार्वजनिक रूप ग्रहण किया।

इस संग्रहालय के विस्तार और प्रगति से ऐण्टोनियो पैनिजी नामक एक इटालियन विद्वान् का भी नाम सम्बद्ध है। पुस्तकालय के विशाल गोलाकार वाचनालय के निर्माण का श्रेय उन्हें ही है। इस वाचनालय में ४५० पाठकों के लिए सुव्यवस्थित स्थान है और इसका नियंत्रण केन्द्र-बिन्दु से होता है। इस वाचनालय के अतिरिक्त पुस्तकालय-भवन की भिन्न-भिन्न शाखाएँ हैं। किसी शाखा में दुर्लभ पुस्तकों से सहायता लेने के लिए १०६ पाठकों के लिए स्थान है, एक शाखा में २००० चुनी हुई पत्रिकाएँ देखने के लिए २४ पाठकों के लिए स्थान हैं, एक शाखा में राजकीय पत्रों के पाठकों के लिए ३३ स्थानों की व्यवस्था है, एक में पत्रों के पाठकों के लिए ५३ स्थान हैं, एक में हस्तलिखित-पुस्तक पाठकों के लिए

३५ स्थानों की व्यवस्था है और एक में प्राच्य पुस्तकों के पाठकों के लिए २२ स्थानों का प्रबन्ध है।

पुस्तकालय का उपयोग करनेवालों की अवस्था निश्चित है कि वे कम से कम २१ वर्ष के जरूर हों। पाठकों को एक निश्चित अध्ययन तथा पुस्तकालय की अनिवार्य आवश्यकता का प्रमाण देना पड़ता है। परीक्षा देने के लिए पुस्तकालय का उपयोग नहीं करने दिया जाता।

पुस्तकालय में करीब साढ़े चार करोड़ पुस्तकें हैं। आलमारियाँ करीब ७३ मील जमीन घेरे हुई हैं। हस्तलिखित पुस्तकों की संख्या लगभग ५४००० है। चार्टर, मुहर इत्यादि करीब ८४००० हैं। कागजात २४०० हैं। प्राच्य विभाग में सभी प्राच्य भाषाओं की पुस्तकें हैं। अधिकांश पुस्तकों के एकत्र होने का माध्यम कापीराइट कानून है। जो किताब छपती है उसकी प्रति इस पुस्तकालय को अवश्य ही मिल जाती है। यह प्रथा १६६२ से ही चली आ रही है।

पुस्तकालय की सामग्री फाटक से बाहर नहीं जाने दी जाती। पुस्तकें उधार देने की राष्ट्रीय प्रथा राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय के जिम्मे है। संग्रहालय का पुस्तकालय तो सिर्फ संदर्भ तथा अनुसन्धान के लिए ही सुरक्षित है। लेखों, हस्तलिखित सामग्रियों तथा दुर्लभ-पत्रिकाओं की प्रतिलिपि आदि के लिए फोटो-प्रणाली से काम लिया जाता है।

ब्रिटिश-संग्रहालय का नाम ब्रिटिश साम्राज्य के कारण बहुत है। लेकिन यूरोप का सबसे प्राचीन राष्ट्रीय पुस्तकालय है—बिब्लियोथेक नेशनल डि फ्रांस, जिसका इतिहास अविच्छिन्न रूप से लुई एकादश के समय से चला आ रहा है। यह राजाओं की व्यक्तिगत सम्पत्ति होते हुए भी विद्यार्थियों के उपयोग के लिए खुला रहा है। जिस तरह ब्रिटिश-संग्रहालय के साथ पैनिजी का नाम सम्बद्ध है उसी तरह उस पुस्तकालय के साथ ऐबे जेरोम बिगनन का नाम सम्बद्ध है। वे बड़े ही प्रकाण्ड विद्वान थे और पुस्तकालय के बड़े ही उत्कट प्रेमी थे। वे इस पुस्तकालय की सेवाओं का विस्तार करना चाहते थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने १७३५ ई० में राजकीय आज्ञा से सप्ताह में दो दिन प्रातःकाल विद्यार्थियों के लिए इसे

खुलवाने की व्यवस्था कराई। विद्यार्थी अब किसी प्रभाव की आवश्यकता अनुभव किए विना ही पुस्तकालय का उपयोग करने लगे। पहले उन्हें किसी प्रभाव के द्वारा ही ऐसी सुविधा मिलती थी।

क्रान्ति होने पर राजकीय पुस्तकालय को राष्ट्रीय पुस्तकालय के नाम से घोषित किया गया। १७८६ ई० में एक कानून जारी करके बिगनन-परिवार के वंशानुगत अधिकार तथा नियंत्रण से पुस्तकालय को मुक्त कर दिया गया। क्रान्ति तथा संघर्ष के दरम्यान जो उथल-पुथल तथा बर्बादियाँ हुईं उनसे पुस्तकालय का संग्रह बहुत बढ़ गया। १८१८ ई० तक पुस्तकालय के पास करीब ८ लाख पुस्तकें हो गईं। १८१७ ई० में पुस्तकालय को सबसे पुरानी सुलभ छपी हुई पुस्तक के रूप में १४५७ की "साल्टर अव फस्ट ऐण्ड शोएफ" मिली। १६१७ की राजकीय आज्ञा के अनुसार प्रकाशित पुस्तकों की दो प्रतियाँ पुस्तकालय को मिलती थीं। १६२५ में कानून में संशोधन हुआ और यह हुक्म जारी किया गया कि एक प्रति मन्त्रिमण्डल के दफ्तर में और एक सीधे इस पुस्तकालय में भेज दी जाय।

इस पुस्तकालय के पास लगभग ४० लाख छपी पुस्तकें, ५ लाख पत्रिकाएँ और सवा लाख हस्तलिखित पुस्तकें हैं।

पुस्तकालय-भवन के बाहर से अनुसन्धान करनेवालों की सहायता फोटोप्रणाली के द्वारा की जाती है। यह प्रणाली १८७७ ई० से चली आ रही है। १६२५ ई० से कृत्रिम प्रकाश के द्वारा चित्रीकरण के लिए एक दूसरे स्टूडियो की स्थापना की गई। फ्रांस के भीतर तथा बाहर पुस्तकालयों में परस्पर पुस्तकों का आदान-प्रदान इस पुस्तकालय के नियंत्रण में ही रक्खा गया है। इस पुस्तकालय-द्वारा प्रकाशित पुस्तक-सूचियाँ अन्वेषकों के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध होती हैं।

अमेरिका का पुस्तकालय

अमेरिका की संयुक्त-राज्य-कांग्रेस का पुस्तकालय वाशिंगटन में है। यद्यपि इसकी स्थापना हाल में ही हुई है तथापि इसकी प्रगति बड़ी तेजी से

हुई है और संसार के तीन सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालयों में इसने अपना स्थान बना लिया है। १७७४ ई० में अपने उद्घाटन के समय से ही कांग्रेस ने न्यूयार्क-सोसाइटी और फिलाडेलफिया-लाइब्रेरी-कम्पनी का उपयोग आवश्यक सन्दर्भों के लिए करना आरम्भ किया। शीघ्र ही यह प्रस्ताव उपस्थित हुआ कि कांग्रेस की अपनी एक लाइब्रेरी होनी चाहिए। किन्तु अर्थशास्त्रियों ने इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। १८०० ई० में कांग्रेस का केन्द्रीय कार्यालय नए महानगर वाशिंगटन में हटाकर ले जाया गया। अब न्यूयार्क तथा फिलाडेलफिया के पुस्तकालयों में उसका प्रवेश सम्भव नहीं रह गया। राष्ट्रपति जेफरसर्न के अधीन २६ जनवरी १८०२ ई० को पुस्तकालय-कानून अत्यन्त प्रारम्भिक रूप में स्वीकृत हुआ। इंग्लैंण्ड-अमेरिका-युद्ध के अन्तिम वर्ष अर्थात् १८१४ ई० में ब्रिटिश फौजों ने राजधानी पर गोलों की वर्षा की और पुस्तकालय को बिलकुल नेस्तनाबूद कर दिया। इसलिए नई राजधानी के उत्तरी बाजू में एक नए पुस्तकालय की स्थापना की गई। १८१८ ई० में जेफरसन का मनोरम व्यक्तिगत पुस्तकालय २३६५० डालर में खरीदा गया। १८५१ ई० में तीसरा अग्निकाण्ड हुआ और अवशेष के रूप में २०००० पुस्तकों का ही संग्रह बच रहा। परन्तु पुस्तकालय के पुनरुज्जीवित होने पर व्यापक सार्वजनिक दिलचस्पी उत्पन्न हुई और पुस्तकों का संग्रह इस तेजी से बढ़ा कि एक अलग भवन आवश्यक हो गया। १८६६ ई० में राजधानी से सटे हुए पूरब एक पुस्तकालय-भवन का निर्माण स्वीकृत हुआ और १८६७ ई० में भवन बनकर तैयार हुआ। भवन बड़ा विशाल है। उसमें ४५ लाख पुस्तकें रखने की व्यवस्था है। वह इटली के सांस्कृतिक नवजागरण की प्रणाली के ढाँचे पर बना है। वाचनालय में २५५ पाठकों के बैठने की व्यवस्था है। ५० अध्ययन कक्षों में भी २००-३०० पाठकों के लिए व्यवस्था है। बिना किसी आडम्बर के प्रवेश बिलकुल निःशुल्क है। लेकिन अध्ययन-कक्षों में प्रौढ़ अन्वेषकों का ही प्रवेश हो सकता है।

संग्रह की कुल संख्या ६० लाख है। हस्तलिखित सामग्रियों में बहुमूल्य राष्ट्रीय कागजात हैं। इस पस्तकालय की एक विशेषता यह

है कि यह लेखक और विषय के संकेत के साथ सूची-कार्ड उन पुस्तकों के सम्बन्ध में छपवाता है जिनका उपयोग दूसरे पुस्तकालय कर सकते हैं। ५७०४ संस्थाएँ इस पद्धति से लाभ उठाती हैं। दूसरे पुस्तकालयों से प्राप्त होनेवाले कार्डों को ठीक से एकत्र करके रखने के लिए एक अलग विभाग ही है। इस विभाग ने कार्डों को सजाकर पुस्तकालय से बाहर गई हुई पुस्तकों का जैसे एक सूचीपत्र ही तैयार कर दिया है। एक दूसरा विशेष अंग है—पुस्तकों के द्वारा अन्धों की सेवा। क्षेत्रीय प्रणाली भी चालू की गई है।

रूस का राष्ट्रीय पुस्तकालय

लेनिनग्राद (सोवियत रूस) का राष्ट्रीय सार्वजनिक पुस्तकालय (गोसुदार-स्त्वेनाजा पब्लिकांजा बिब्लियोतेका) रूस की महान् सांस्कृतिक परम्परा से सम्बद्ध है। सेण्टपीटर्सबर्गकी स्थापना के साथ ही वहाँ सार्वजनिक पुस्तकालय की कल्पना का उदय हुआ था। लेकिन १८वीं सदी के अन्त तक भी उसे कार्यान्वित न किया जा सका। पोलिश सामन्तवादी परिवारों के विख्यात सदस्य काउंट्स जलुस्की के प्रसिद्ध पुस्तकालय को लेकर ही राष्ट्रीय पुस्तकालय की स्थापना का श्रीगणेश किया गया। २६ अक्टूबर १७६४ ई० को वारसा-पतन के साथ ही यह पुस्तकालय रूसी सरकार की सम्पत्ति बन गया। इसे स्थानान्तरित करके सेण्ट पीटर्सबर्ग पहुँचाया गया। इसमें करीब ढाई लाख छपी पुस्तकें और करीब दस हजार हस्तलिखित पुस्तकें थीं, १८११ ई० में ओलेनिन पुस्तकालय का संचालक हुआ। उसका लक्ष्य था राष्ट्रीय पुस्तकालय का निर्माण। जलुस्की के संग्रह में सिर्फ ८ पुस्तकें ही रूसी भाषा की थीं। ओलेनिन के अधीन रूसी पुस्तकों का संग्रह आरम्भ हुआ। पुस्तकालय का सार्वजनिक उद्घाटन नेपोलियन के आक्रमण के कारण रुक गया। मास्को के पतन से सेण्टपीटर्सबर्ग भी खतरे में पड़ गया तो सारे हस्तलिखित ग्रन्थ और बहुत ही महत्त्वपूर्ण छपे ग्रन्थ बक्सों में बन्द करके नदी के रास्ते से उत्तर की ओर पहुँचाए गए। उनकी कुल संख्या डेढ़ लाख थी। वर्ष के अन्त में वे बर्फ पर चलनेवाली गाड़ियों के सहारे

फिर वापस लाए गए। २ जनवरी १८१४ ई० को पुस्तकालय का बाकायदा उद्घाटन हुआ।

पैनिजी ने ब्रिटिश संग्रहालय के लिए जितना कुछ किया उतना ही या उससे कुछ अधिक ही काउण्ट ऐन्द्रिवीच कोर्फ ने इस पुस्तकालय के लिए किया उन्होंने पुस्तकालय पर नियंत्रण की वृद्धि की, वार्षिक तथा विशेष सहायताओं में वृद्धि करवाई, सूचीपत्र तैयार किए, संग्रह इतना अधिक बढ़ा दिया कि यह पुस्तकालय फ्रांस के नेशनल बिब्लियोथेक के बाद अपना स्थान रखने लगा, पुस्तकालय के सौन्दर्य में भीतर और बाहर से अपूर्व वृद्धि की और प्रत्येक सम्भव उपाय से पुस्तकालय का इतना प्रचार किया कि पुस्तकालय के साधन सर्वविदित हो गए, सब उसका उपयोग करने को प्रवृत्त हुए। इस पुस्तकालय का वर्तमान संग्रह इस प्रकार है—४८ लाख से अधिक छपी हुई पुस्तकें और ३ लाख ३० हजार से अधिक हस्तलिखित पुस्तकें। हस्तलिखित पुस्तकों के विशाल संग्रह के कारण इसका स्थान संसार के चुने हुए सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालयों में है।

सोवियत-सरकार ने मास्को में लेनिन -पुस्तकालय का निर्माण करके महत्त्व के केन्द्रबिन्दु को स्थानान्तरित कर दिया है। इस पुस्तकालय का भवन अत्यन्त ही विशाल है जिसमें ६० लाख से अधिक पुस्तकें रखने की व्यवस्था है। वाचनालय में ७०० पाठकों के लिए व्यवस्था है। इस प्रकार संसार के इस अद्वितीय राज्य ने संसार के अद्वितीय पुस्तकालय का निर्माण किया है। इस समय इस पुस्तकालय में लगभग १ करोड़ २० लाख पुस्तकों का संग्रह है।

इन राष्ट्रीय पुस्तकालयों के अतिरिक्त कुछ ऐसे पुस्तकालय हैं जो अपनी सुदीर्घ परम्परा तथा इतिहास के कारण उल्लेखनीय हैं। ये हैं आक्सफोर्ड की बोडलियन लाइब्रेरी और रोम की वैटिकन लाइब्रेरी।

ब्रिटिश संग्रहालय के उद्भव के पहले बोडलियन लाइब्रेरी ही इंग्लैण्ड का राष्ट्रीय पुस्तकालय थी। उसका दूसरा नाम ऑक्सफोर्ड-यूनिवर्सिटी-लाइब्रेरी है। आज भी संग्रह की दृष्टि से यह इंग्लैण्ड का द्वितीय पुस्तकालय है और संसार के विश्वविद्यालय-पुस्तकालयों में सबसे बड़ा है।

इसे वरसेस्टर के बिशप कोभेम ने सर्वप्रथम स्थापित किया था। तब १४ जुलाई १४४४ ई० को ग्लाउसेस्टर के ड्यूक हम्फ्रे को एक पत्र लिखकर यह सूचना दी गई कि विश्वविद्यालय पुस्तकालय के एक समुचित भवन का निर्माण करना चाहता है। ड्यूक से यह अनुरोध भी किया गया कि संस्थापक होना स्वीकार करें। उन्होंने उदारतापूर्वक उत्तर दिया और ७० वर्षों तक ड्यूक हम्फ्रे पुस्तकालय बड़ी शान्ति के साथ काम करता रहा। जब १५५० ई० में छठें एडवर्ड के शासनकाल में इस पुस्तकालय से अन्धविश्वासपूर्ण पुस्तकों को निकाल दिया गया तब मालूम पड़ने लगा कि पुस्तकालय खाली हो गया, भवन भी खाली मालूम पड़ने लगा।

तब सर टामस बौडले ने पुस्तकालय की फिर से स्थापना की। उन्होंने नष्ट-भ्रष्ट स्थान को सार्वजनिक उपयोग के लिए अध्ययन-केन्द्र बनाने में अपने समय और धर्म को अर्पित कर दिया। उनके उत्साह तथा अथक परिश्रम से पुस्तकालय ने बड़ी तीव्रता के साथ प्रगति की। १६१३ ई० में अपने देहावसान के पूर्व उन्हें पुस्तकालय को सुसंस्थापित तथा उसका भविष्य सुनिश्चित देखने का सन्तोष प्राप्त था। आज इसका संग्रह १४ लाख तक पहुँच गया है और इसे अनेक दुर्लभ हस्तलिखित पुस्तकों तथा अन्य सामग्रियों के संग्रह का गर्व प्राप्त है।

वैटिकन लाइब्रेरी

पोप-पुस्तकालय (वैटिकन लाइब्रेरी) अमूल्य संग्रह, प्राचीनता, हस्त-लिखित-सम्पत्ति, भवन की विशालता तथा शानदारी, सभी दृष्टियों से विश्व के पुस्तकालयों की प्रथमश्रेणी में अपना स्थान रखता है। इस पुस्तकालय का वास्तविक संस्थापक टोमासो पैरेण्टुसेल्ली या पोप निकोलस पंचम ही कहला सकते हैं। उन्होंने नए तथा दुर्लभ संग्रहों की खोज में जर्मनी, इंगलैण्ड और यूनान में कितने ही आदमियों को भेजा। उन्होंने निर्वासित बाइजैण्टाइन विद्वानों को रोम में निमंत्रित किया और पोप-पुस्तकालय के लिए उनसे यूनानी पौराणिक साहित्य का लटिन में अनुवाद कराया। हेरोडोटस, थूसीडाइडस, जेनेफोन और पोलीनियस के साहित्य से पश्चिमी

यूरोप को परिचित कराने के कारण मेकाले ने निकोलस के प्रति बड़ी श्रद्धा प्रकट की है। सदियों तक धैर्य तथा तत्परता के साथ इस पुस्तकालय के लिए संग्रह किए गए हैं। लेकिन इसमें हस्तलिखित पुस्तकों तथा अन्य प्राचीन छपी पुस्तकों की ही प्रधानता है। इसमें ४ लाख ८० हजार छपी पुस्तकें, ५३ हजार ५०० हस्तलिखित पुस्तकें तथा ७००० अन्य प्राचीन छपी पुस्तकें हैं

अन्य पुस्तकालय

यूरोप के अन्य राज्यों के पुस्तकालयों में निम्नलिखित का उल्लेख आवश्यक है—

बर्लिन के डाइप्रसिस्के स्टाट्स बिब्लियोथेक (आरम्भिक कैसरलिक कोनिग्लीके बिब्लियोथेक) या प्रशियन राजकीय पुस्तकालय की स्थापना १६६१ ई० में हुई थी। इसके विकास तथा महत्त्व का अधिक श्रेय फ्रेडरिक महान् को है जिनके समय में पुस्तकालय में १ लाख ५० हजार पुस्तकों का संग्रह हुआ। इसके वर्तमान संग्रह में २५ लाख पुस्तकें हैं। विशुद्ध जर्मन साहित्य का इसके पास सबसे बड़ा संग्रह है।

वियना के डाइ नेशनल बिब्लियोथेक (आरम्भिक के० के० होफ बिब्लियोथेक) या राष्ट्रीय पुस्तकालय की स्थापना सम्राट् मैक्सिमीलियन प्रथम ने १४६३ ई० में की थी। १८ वीं सदी में वियना-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय (१३६४) ई० और वियना-नगर के पुस्तकालय को भी उसके साथ सम्बद्ध कर दिया गया। उसके संग्रह में १२ लाख ५६ हजार छपी पुस्तकें, ६० हजार हस्तलिखित पुस्तकें, ३२३१४ यूनानी तथा ५० हजार प्राच्य पुस्तकें और ६००० प्राचीन छपी पुस्तकें हैं।

प्रेग के सार्वजनिक तथा विश्वविद्यालय-पुस्तकालय की स्थापना चेकोस्लोवाकिया के राजा चार्ल्स प्रथम ने ४८ पुस्तकों से १३६६ ई० के लगभग की थी। २८ अक्टूबर १६१८ ई० की क्रान्ति के फलस्वरूप जब चेकोस्लोवाकिया की स्वाधीनता घोषित हुई तो इस पुस्तकालय की प्रगति में बड़ी तेजी आई। इसका संग्रह ८ लाख १७ हजार है।

स्विस राष्ट्रीय पुस्तकालय की स्थापना १८९५ ई० में हुई थी। उसका भवन बहुत ही सुन्दर है और उसमें २० हजार पुस्तकें हैं।

बेलजियम के राजकीय पुस्तकालय (ब्रूसेल्स) की स्थापना १८३७ ई० में हुई थी। इस समय उसमें ८ लाख दो हजार ५०० पुस्तकें, ५ लाख पत्रिकाएँ और ३१ हजार हस्तलिखित पुस्तकें हैं।

स्पेन के राष्ट्रीय पुस्तकालय (मैड्रिड) की स्थापना १७१२ ई० में हुई थी। उसमें १४ लाख छपी पुस्तकें, २४१२ प्राचीन छपी पुस्तकें, ३०१७५ हस्तलिखित पुस्तकें और ३० हजार पत्रिकाएँ हैं।

हालैण्ड के राजकीय पुस्तकालय (हेग) की स्थापना १७९८ ई० में हुई थी। उसमें १० लाख छपी पुस्तकें तथा ६ हजार हस्तलिखित पुस्तकें हैं।

डेनमार्क का राजकीय पुस्तकालय कोपेनहेगेन में १६६१ से १६६४ तक के बीच स्थापित हुआ था। उसमें ८ लाख ५० हजार छपी पुस्तकें, ३० हजार हस्तलिखित पुस्तकें, ४ हजार प्राचीन छपी पुस्तकें और १ लाख १० हजार चिट्ठियाँ हैं।

स्वीडेन के राजकीय पुस्तकालय की स्थापना स्टाकहोम में हुई थी। १५२३ ई० से इसका इतिहास मिलता है और १६६१ ई० से कानूनी संग्रह की स्थिति इसे मिली हुई है। सबसे आरम्भ में जिन यूरोपीय पुस्तकालयों को यह स्थिति प्राप्त हुई उनमें इस पुस्तकालय का भी स्थान है। इसकी अत्यन्त ही प्रत्यक्ष विशेषता यह है कि इसकी पुस्तकों पर कहीं भी धूल-गर्द नहीं है। इसमें ६ लाख पुस्तकें, डेढ़ करोड़ पर्चे, १२ हजार हस्तलिखित पुस्तकें तथा २ लाख चित्र, मानचित्र इत्यादि हैं।

लैटिन अमेरिका में ब्राजिल के राष्ट्रीय पुस्तकालय की स्थापना रायो-डिजेनरो में १८१० ई० में हुई थी। उसमें ४ लाख ८८ हजार पुस्तकें तथा १ लाख १५ हजार ५२० हस्तलिखित पुस्तकें हैं। अरजेण्टिना के राष्ट्रीय पुस्तकालय की स्थापना बोनसएरीज में १८१० ई० में हुई थी। उसमें लगभग २ लाख पुस्तकें और ८८४० हस्तलिखित पुस्तकें हैं।

ब्रिटिश उपनिवेशों के पुस्तकालयों में से कनाडा के टोरण्टो सार्वजनिक

पुस्तकालय की स्थापना १८८३ ई० में ४ लाख पुस्तकों के साथ हुई थी। दक्षिण अफ्रिका का सार्वजनिक पुस्तकालय केपटाउन में १८१८ ई० में स्थापित हुआ था। उसे कापीराइट कानून के मुताबिक पुस्तकें प्राप्त करने का अधिकार है। उसमें १ लाख पुस्तकें हैं। काहिरा (मिस्र) का राजकीय पुस्तकालय ,१८७६ ई० में स्थापित हुआ था। उसमें १ लाख ७ हजार पुस्तकें, २३ हजार हस्तलिखित पुस्तकें और ५०० प्राचीन पुस्तकें हैं। आस्ट्रेलिया के विक्टोरिया-सार्वजनिक-पुस्तकालय की स्थापना मेलबोर्न में १८५३ ई० में हुई थी। उसमें ४ लाख २१ हजार पुस्तकें हैं। न्यूसाउथ वेल्स (आस्ट्रेलिया) का पुस्तकालय सिडनी में है। उसमें ४ लाख १ हजार पुस्तकें हैं।

प्राच्य जगत् में पुस्तकों के संग्रह का इतिहास प्राच्य सभ्यता की ही तरह प्राचीन है यद्यपि आज पाश्चात्य जगत् के समान पुस्तकालय यहाँ नहीं है। बड़े-बड़े संग्रह अभी भी व्यक्तिगत पुस्तकालय के रूप में हैं। चीन में १४ बड़े-बड़े व्यक्तिगत पुस्तकालय हैं, वहाँ राष्ट्रीय पुस्तकालय का निर्माण १९०६ ई० में पेकिंग में हुआ है। उसमें ५ करोड़ १ हजार चीनी पुस्तकें, ८५ हजार यूरोपीय पुस्तकें, ३० हजार प्राचीन छपी चीनी पुस्तकें और ३ लाख ६५ हजार हस्तलिखित पुस्तकें हैं। जापान का सबसे बड़ा पुस्तकालय टोकियो का राजकीय पुस्तकालय है जो १८८५ ई० में ५ लाख ७ हजार पुस्तकों को लेकर स्थापित किया गया। जापान-राजकीय विश्वविद्यालय-पुस्तकालय में ६ लाख ५० हजार पुस्तकें हैं।

मध्य-पूर्व में फिलस्तीन के हिब्रू राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना १९२५ ई० में हुई जिसमें १ लाख ३६ हजार पुस्तकें हैं।

विश्व के महान् पुस्तकालयों के उपर्युक्त परिचय से यह स्पष्ट है कि सभी विख्यात पुस्तकालय पाश्चात्य जगत् में ही हैं। प्राच्य जगत् में वैसा एक भी पुस्तकालय शायद ही हो। कारण स्पष्ट है। आधुनिक विश्व-सभ्यता पर पाश्चात्य जगत् का प्रभाव है और विश्व के महान् पुस्तकालयों के निर्माण में भी उसका प्रभावशाली हाथ होना स्वाभाविक है।

——:o:——

भारतीय पुस्तकालय

श्री ए० के० ओहदेदार

भारत में पुस्तकालयों का इतिहास उनकी सभ्यता की ही तरह प्राचीन हो गया है। महान् आर्य-सभ्यता के आरम्भिक काल में जब ज्ञान और शिक्षा का विस्तार एक खास वर्ग—ब्राह्मण या पुरोहित तक ही सीमित था, तथा शिक्षा केवल मौखिक थी, तब विद्वानों के व्यक्तित्व ही पुस्तकालय के प्रतीक के रूप में थे। प्रथा यह थी की ऋचाएँ, श्लोक और सूत्र सुनकर स्मरण कर लिए जायँ और उन्हें मस्तिष्क में स्थायी रूप से संचित कर लिया जाय। इसलिए मस्तिष्क ही पुस्तकालय का काम करता था। जब ज्ञान का बहुत विस्तार हो गया और सब कुछ को स्मरण रखना कठिन हो गया तब लिपि आवश्यक हो गई। फलस्वरूप तालपत्रों और भुर्जपत्रों पर लिखने की प्रथा चली। पत्रों पर लिखी हुई पुस्तकों के संग्रह से व्यक्तिगत पुस्तकालयों का आरम्भ हुआ, आगे चलकर हिन्दू-युग के गौरवपूर्ण समय में शिक्षा-केन्द्रों में पुस्तकालयों का उद्भव हुआ। बौद्ध मठ, मन्दिर तथा ऐसे दूसरे केन्द्र पुस्तकालय के रूप में भी परिणत हो गए। विश्वविद्यालयों के भी अपने पुस्तकालय थे। उनमें से एक—नालन्दा-विश्वविद्यालय का पुस्तकालय "रत्नोदधि" तो अत्यन्त विख्यात है।

मुसलिम भारत में भी अच्छे पुस्तकालय थे। मुगलों के आने के पहले भी दिल्ली में एक राजकीय पुस्तकालय था। जलालुद्दीन खिलजी ने प्रसिद्ध विद्वान् अमीर खुसरो को उस पुस्तकालय का पुस्तकाध्यक्ष बनाया था। बीजापुर के आदिलशाह का भी एक शाही-पुस्तकालय था। उसमें बहुत-से बहुमूल्य हस्तलिखित ग्रन्थ थे। बहमनी के शाहों का भी एक पुस्तकालय अहमदनगर में था जिसका निरीक्षण फरिश्ता ने किया था।

हुमायूँ अपने पुस्तक-प्रेम के लिए विख्यात है। उसने शेरशाह के आनन्द-भवन "पुराना किला" को पुस्तकालय के रूप में परिणत कर दिया।

टीपू सुलतान का भी अपना एक पुस्तकालय था जिसमें सभी प्रकार की यूरोपीय तथा प्राच्य पुस्तकें थीं। उस समय के व्यक्तिगत पुस्तकालयों में से फैजी के पुस्तकालय में ४६०० पुस्तकें थीं। अलीवर्दी खाँ ने जिस मशहूर विद्वान् मीर मुहम्मद अली को अपने मुर्शिदाबाद के दरबार में रक्खा था, उसके पुस्तकालय में २००० किताबें थीं।

इन व्यक्तिगत राजकीय या शाही पुस्तकालयों के अतिरिक्त हमें एक कालेज-पुस्तकालय का भी पता चलता है। बहमनी के महमूद शाह दूसरे के वजीर महमूद गवन ने दक्षिण भारत के बिदर नामक स्थान में एक कालेज खोला। उसमें विद्यार्थियों के उपभोग के लिए ३००० पुस्तकें थीं।

लेकिन प्राचीन पुस्तकालयों में से बहुत कम अब बच रहे हैं। ब्रिटिश शासन ने इस देश की शिक्षा का स्वरूप ही बदल दिया है और नई शिक्षा ने नए प्रकार के पुस्तकालयों को जन्म दिया है। बेशक पुस्तकालयों के अभ्युदय का मूल आधार प्रेस है।

भारत के वर्तमान पुस्तकालय चार प्रकार के हैं—(१) सार्वजनिक, (२) विश्वविद्यालयों और कालेजों के पुस्तकालय, (३) देशी राज्यों के पुस्तकालय और (४) विशेष पुस्तकालय। इनमें से अधिक महत्त्वपूर्ण पुस्तकालयों का उल्लेख किया जाता है—

सार्वजनिक पुस्तकालय

नाम	स्थापना	उद्घाटन	संग्रह	वर्गीकरण-पद्धति
इम्पीरियल लायब्रेरी (कलकत्ता)	१९०२	१९०३	३८९००० पुस्तकें १४४६ हस्त०	ब्रिटिश-संग्रहालय
पंजाब पब्लिक लाइब्रेरी (लाहौर)	१८८४	१८८५	१०६६४८ पु० १२५० हस्त०	डेवी-पद्धति का कुछ परिवर्तित रूप
मद्रास-लिटरेरी-सोसाइटी-लाइब्रेरी (मद्रास)	१८१२	१८१२	१००९७४ पु०	—

नाम	स्थापना	उद्घाटन	संग्रह	वर्गीकरण-पद्धति
कोन्नेमारा-पब्लिक-लाइब्रेरी (मद्रास)	१८६०	१८६६	६५००० पु० ३७४ पत्रिकाएँ	डेवी-पद्धति का परिवर्तित रूप
पब्लिक लाइब्रेरी (इलाहाबाद)	१८६४	—	४६३४४ पु०	डेवी-पद्धति
अमीनुद्दौला-पब्लिक-लाइब्रेरी (लखनऊ)	१६१०	१६१०	२८७५४ पु०	"
नीलगिरि-लाइब्रेरी (ऊटकामण्ड)	१८६०	१८६७	२७००० पु०	—
बिहार-हितैषी-लाइब्रेरी (पटना सिटी)	१८८३	१८८३	८७६५ पु० महिलाओं के लिए भ्रमणशील पुस्तकालय तथा बच्चों के लिए अलग से व्यवस्था है।	डेवी-पद्धति

विश्वविद्यालयों और कालेजों के पुस्तकालय

नाम	स्थापना	संग्रह	वर्गीकरण-पद्धति
कलकत्ता-यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी (कलकत्ता)	१८७४	२२६२६० पु० १२२७५ हस्त०	डेवी
बनारस हिन्दू-यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी (बनारस)	१६१६	२५१००० पु० १३३०० हस्त०, सिक्के	डेवी और कोलन
इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी (इलाहाबाद)	१६०६	१४०५६५ पु० ४०० हस्त०	डेवी
मद्रास-यूनिवर्सिटी-लाइब्रेरी मद्रास	१६०७	११२२२० पु० १७७२ हस्त०	कोलन
पंजाब-यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी (लाहौर)	१८८२	६१६२५ पु० ११५०६ हस्त०	डेवी

नाम	स्थापना	संग्रह	वर्गीकरण-पद्धति
ढाका-यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी (ढाका)	१९२१	८४६३५ पु० २३००१ हस्त०	डेवी
बम्बई-यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी (बम्बई)	१८६४	६६५८५ पु० ४००० हस्त०	डेवी का कुछ परिवर्तित रूप
अलीगढ़-यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी (अलीगढ़)	१८७५	५५००० पु० ४००० हस्त०	डेवी
दिल्ली-यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी (दिल्ली)	१९२३	३४९०० पु० १५० हस्त०	कोलन
फरगुसन-कालेज लाइब्रेरी (पूना)	१८८२	६४५०० पु० ५०० हस्त०	डेवी
जे० एन० पेटिट इंस्टीच्यूट लाइब्रेरी (बम्बई)	१८९८	६०००० पु०	ब्रिटिश-संग्रहालय का कुछ परिवर्तित रूप
डेकन-कालेज आफ पोस्ट ग्रैजुएट ऐण्ड रिसर्च इंस्टीच्यूट लाइब्रेरी (पूना)	१९३९	२२००० पु० २५००० हस्त०	कालेज कालेज
प्रेसिडेन्सी-कालेज लाइब्रेरी (कलकत्ता)	१८८५	५५५६५ पु०	डेवी
फारमन-क्रिश्चियन-कालेज लाइब्रेरी (लाहौर)	१८८६	३४०७५ पु०	डेवी
इस्लामिया कालेज (पेशावर)	१९१३	१७७८० पु० मुसलिम-साहित्य की अमूल्य हस्तलिखित पुस्तकें	—

विशेष पुस्तकालय

नाम	स्थापना	संग्रह	वर्गीकरण-पद्धति
रोएल-एशियाटिक-सोसाइटी लाइब्रेरी (बम्बई)	१८०४	१२५००० पु० २००० हस्त०	डेवी
रोएल-एशियाटिक-सोसाइटी आफ बंगाल (कलकत्ता)	१७८४	६५००० पु० ३२००० हस्त०	—
इम्पीरियल सेक्रेटेरियट लाइब्रेरी (नई दिल्ली)	१६०५	१००००० पु०	डेवी
इम्पीरियल एग्रीकलचरल रिसर्च लाइब्रेरी (नई दिल्ली)	१६०५	८०००० पु०	डेवी
बंगीय-साहित्य-परिषद् पुस्तकालय (कलकत्ता)	१८६३	३८८६५ पु०	—
बोटैनिकल सर्वे आफ इण्डिया (कलकत्ता)	१८८६	३५००० पु०	—
इंण्डियन इंस्टीच्यूट आफ साइंस लाइब्रेरी (बंगलोर)	१६११	१०८३० पु०	डेवी
मिटिरियोलौजिकल आफिस लाइब्रेरी (पूना)	१८७५	२८२१५ पु०	डेवी
स्कूल आफ इकोनामिक्स ऐण्ड सोशियोलौजी (बम्बई)	१६१८	२६६०० पु०	डेवी का कुछ परिवर्तित रूप
जूलौजिकल सर्वे आफ इण्डिया (बनारस)	१८७५	२५५८० पु०	डेवी
इण्डस्ट्रीज, फारेस्ट, एग्रीकलचर एण्ड फिशरीज लाइब्रेरी (मद्रास)	१६१५	१६००० पु०	—
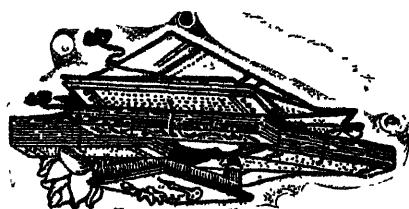
देशीराज्य–पुस्तकालय

नाम	स्थापना	संग्रह	वर्गीकरण-पद्धति
सेंट्रल लाइब्रेरी (बड़ोदा)	१६१०	१३८६६० पु०	बोर्डेन
उस्मानिया-यूनिवर्सिटी (हैदराबाद)	१६१६	४६२४० पु० २४३७ हस्त०	डेवी
यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी (मैसूर)	१६१६	३७५०० पु०	डेवी
पब्लिक लाइब्रेरी (त्रावणकोर)	१८४७	३४०२० पु०	डेवी
के० एन० वाचन-मन्दिर (कोल्हापुर)	१८५०	३०००० पु०	बोर्डेन
अमरेली-पब्लिक-लाइब्रेरी (अमरेली)	१८७३	१७५१० पु०	बोर्डेन
श्रीरणवीर पुस्तकालय (जम्मू)	१८७६	१५२५० पु०	डेवी
लंग लाइब्रेरी (राजकोट)	१८६८	६८०० पु०	——
पब्लिक लाइब्रेरी (कोचीन)	१८६६	७६३० पु०	——

उपर्युक्त पुस्तकालयों के अतिरिक्त भारत में ऐसे पुस्तकालय भी हैं जिनमें केवल प्राच्य पुस्तकों के ही संग्रह हैं। गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मैनस्क्रिप्ट लाइब्रेरी (मद्रास) की स्थापना १८वीं ई० सदी में हुई थी। उसमें ११२७५ छपी और संस्कृत तथा दक्षिणी भाषाओं की ४८७३० हस्तलिखित पुस्तकें हैं। भण्डारकर-ओरियण्टल-रिसर्च-इंस्टीच्यूट लाइब्रेरी (पूना) की स्थापना १६१७ ई० में हुई। उसमें ११४७० छपी और २३००० हस्तलिखित पुस्तकें हैं। गवर्नमेण्ट ओरियण्टल लाइब्रेरी (मैसूर) की स्थापना १८६१ ई० में हुई। उसमें १६७४० छपी और १०७६५ हस्तलिखित पुस्तकें हैं। मुल्ला फ़ीरोज लाइब्रेरी की स्थापना १८४२ ई० में हुई। उसमें अवस्ता, पहलवी,

फारसी, अरबी और तुर्की की ६३४० पुस्तकें हैं। के० आर० ओरियण्टल लाइब्रेरी १६१५ ई० में स्थापित हुई। उसमें अवेस्ता, पहलवी इत्यादि की ६०१० पुस्तकें हैं। सईदिया लाइब्रेरी (हैदराबाद) की स्थापना १६वीं सदी में हुई थी। उसका उद्घाटन १६३४ई० में हुआ। उसमें १४०५ छपी, २१५५ हस्तलिखित और १२वीं सदी तक की दुर्लभ हस्तलिखित पुस्तकें हैं। उसमें अधिकांशतः हदीस वगैरह है; दक्षिण भारत के इतिहास से सम्बद्ध कागजात तथा क्लाइव, वारन हेस्टिंग्स, वेलेस्ली, टीपू सुलतान और निजामों के पत्र एवं अनेक कलात्मक वस्तुओं के संग्रह हैं।

तिरुपट्टी के प्राचीन मन्दिर-पुस्तकालय का भी उल्लेख आवश्यक है जो श्री वेंकटेश्वर ओरियण्टल इंस्टीच्यूट को १६३६ई० में दे दिया गया। उसमें १०००० छपी तथा ८००० हस्तलिखित पुस्तकें हैं। पटना का खुदाबक्स-पुस्तकालय संसार के सर्वश्रेठ मुसलिम-साहित्य-पुस्तकालयों में अपना स्थान रखता है। परन्तु भारत के जिस पुस्तकालय ने पाश्चात्य-जगत् का ध्यान आकृष्ट किया है वह है तंजोर के राजा का पुस्तकालय जिसका इतिहास १६००ई० से मिलता है। उसमें ६६७० छपी पुस्तकें तथा देवनागरी, नन्दी-नागरी, तेलुगू, कन्नड, ग्रन्थि, मलयालम, बँगला, पंजाबी, कश्मीरी, उड़िया आदि लिपियों में १८००० हस्तलिखित पुस्तकें और तालपत्रों पर लिखी ८००० पुस्तकें हैं।

बड़ोदा-राज्य के पुस्तकालय

श्री गुप्तनाथ सिंह, एम० एल० ए०, विधान-परिषद् के सदस्य

देशी रियासतों में बड़ोदा बड़ा ही उन्नत और प्रगतिशील राज्य है, न केवल मानसिक महत्ता की दृष्टि से वरन् शारीरिक शिक्षण के विचार से भी; न केवल कलाप्रियता के विचार से बल्कि सामाजिक सुधारों और सार्वजनिक साक्षरता के विचार से भी बड़ोदा ऐसा राज्य है, जहाँ प्रजाहित का अपेक्षाकृत अधिक विचार किया जाता है, उसकी सर्वाङ्गीण उन्नति की ओर ध्यान दिया जाता है। बड़ोदा-राज्य में बहुत दिनों से लोकतंत्रात्मक शासन-पद्धति प्रचलित है। हरिजनोद्धार का हिन्दुस्तान में सबसे पहले बड़ोदा-राज्य में ही श्रीगणेश हुआ था। प्रोफेसर माणिकरावजी का व्यायाम-मंदिर एवं अन्य व्यायामशालाएँ शारीरिक शिक्षणालयों के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। कला भवन, अद्भुतालय एवं बहुसंख्यक संगीत-शिक्षणालयों द्वारा ललित कला की उन्नति में बहुत अधिक सहायता मिलती है। साहित्य और संस्कृति के लिए राज्य ने कई सुन्दर सदनुष्ठान किए हैं। राजनीतिक प्रगतिशीलता में भी बड़ोदा अग्रगण्य है। देशी रियासतों में सबसे पहले बड़ोदा राज्य ने ही भारतीय विधान-परिषद् में सम्मिलित होने का निश्चय किया। इस प्रकार बड़ोदा-राज्य बहुजनहिताय और बहुजनसुखाय कार्य करनेवाला देशी राज्य है।

किसी भी राज्य की उन्नति का मानदण्ड वहाँ की लोक-शिक्षा से आँका जा सकता है। साधारणतया देशी रियासतें जनता की शिक्षा के कार्य में उदासीन देखी जाती हैं। कारण निरंकुश राज्य जनता की अशिक्षा का अनुचित लाभ उठाकर ही भोग-विलास का जीवन बिता सकते हैं। किन्तु इस युग में ऐसा करने से काम नहीं चल सकता। बड़ोदा जनता को शिक्षित बनाना अपनी उन्नति के लिए अनिवार्य समझता है। सार्वजनिक शिक्षण के प्रसार के लिए राज्य में निःशुल्क और अनिवार्य

शिक्षा पर जोर दिया जाता है। भारत में निःशुल्क शिक्षा का आरम्भ सर्वप्रथम बड़ोदा-राज्य ने ही किया था। १८९३ ई० में राज्य के एक जिले में अनिवार्य शिक्षा का प्रयोग किया गया, और १९०७ ई० में राज्य भर में अनिवार्य शिक्षा का विधान लागू कर दिया गया। किन्तु केवल विद्यालय खोल देने और अनिवार्य शिक्षा का विधान कर देने मात्र से ही सार्वजनिक शिक्षा का प्रचार नहीं हो जाता। सबसे अधिक आवश्यक और साथ ही कठिन काम है अनिवार्य शिक्षा-काल में अर्जित ज्ञान की वृद्धि और स्थायित्व। मारपीट कर पढ़ाई गई विद्या विद्यालय छोड़ते ही पिंजरनिर्गत वन्य पशु की भाँति कुदक्का मार कर भाग खड़ी होती है। इसके स्थायित्व के लिए प्रोत्साहन, पथ-प्रदर्शन एवं आवश्यक साधनों की अवश्यकता होती है। इस बात का पाश्चात्य देशों ने खूब अनुभव किया है और इस देश में थोड़ा-बहुत किया है बड़ोदा-राज्य ने। कहने की आवश्यकता नहीं कि लोक-शिक्षण के स्थायित्व के लिए निःशुल्क पुस्तकालयों से बढ़कर दूसरा साधन नहीं है। एक विद्वान् का कथन है कि निःशुल्क सार्वजनिक पुस्तकालय के विना अनिवार्य शिक्षा हस्ताक्षर कराए विना बीमा लिखाने अथवा बिना छत का मकान बनाने के समान है। ऐसा देखा जाता है कि जो प्रौढ़ लोग साक्षर बनाए जाते हैं, वे थोड़े ही दिनों में फिर निरक्षर भट्टाचार्य बनने लग जाते हैं। जब वयस्कों की यह दशा है तो बच्चों की क्या बात। बात यह है कि बेचारी दीन जनता को एक तो काम के मारे मरने तक के लिए फुर्सत नहीं होती। पेट की पूर्ति के लिए बड़े-बूढ़ों को ही नहीं छोटे-छोटे बच्चों को भी दिन-दिन भर खटना पड़ता है। फिर यदि किसी प्रकार कुछ समय भी मिला तो पुस्तकों का अभाव। जब पेट को पूर्ति के ही लिए पर्याप्त पैसे नहीं मिलते तो पुस्तकें खरीदने के लिए कहाँ से मिलें। इसका परिणाम यह होता है कि पुस्तकों के अभाव के कारण साक्षरता-प्रसार में लगाए गए समय, श्रम और धन व्यर्थ जाते हैं। परिश्रम से बनाए गए साक्षर सरकारी रिपोर्टों के अनुसार निरक्षरता में पुनः निमग्न हो जाते हैं:—(लैप्स टू इल्लिटरेसी) यदि साक्षरों को पुस्तकें मिलती रहें तो उनकी साक्षरता को टिकाऊ ही नहीं

सार्थक भी हो जाय। इस सम्बन्ध में हमारी देवनागरी-लिपि को यह गौरव प्राप्त है कि अपढ़ बूढ़ा भी दो महीने में पुस्तकें पढ़ने में समर्थ हो जाता है। यदि ऐसे प्रौढ़ साक्षरों को रामचरितमानस-जैसी पोथी दे दें या सरल-भाषा की दूसरी पुस्तकें दे दें तो साक्षर से निरक्षर बनने की शिकायत कभी न सुनने में आए। साक्षरता तब तक नहीं बढ़ सकती और न स्थायी हो सकती है, जब तक कि जगह-जगह पुस्तकालय खोले जायँ।

मनुष्य के जीवन-निर्माण में पुस्तकों का बहुत बड़ा हाथ है। पुस्तकें व्यक्तियों के लिए स्वाध्याय का और जातियों के लिए कायाकल्प का साधन हैं। इस तथ्य को दिवंगत बड़ोदा-नरेश श्रीसयाजी राव गायकवाड़ ने पाश्चात्य देशों में विशेषतः अमेरिका-भ्रमण में देखा और अनुभव किया। पुस्तकालयों के लाभ पर विचार कर महाराज ने अपने राज्य में निःशुल्क सार्वजनिक पुस्तकालयों के खोलने की योजना बनाई। ये पुस्तकालय अमेरिकन पुस्तकालयों के आदर्श पर स्थापित किए गए। अमेरिकन पुस्तकालयों का आदर्श है कम से कम मूल्य पर अधिक से अधिक जनता को अच्छी से अच्छी शिक्षा देना। महाराज गायकवाड़ ने अपने राज्य के पुस्तकालयों को अमेरिकन आदर्श पर चलाने के विचार से सन् १९११ ई० में स्व० श्री विलियम ए० बोर्डन नामक पुस्तकालय संचालन-कलादक्ष एक अमेरिकन को नियुक्त किया। बोर्डन महोदय ने तीन वर्षों के अल्प कार्यकाल में ही अपनी दक्षता एवं कार्यकुशलता से राज्य भर में पुस्तकालयों का जाल फैला दिया। इन पुस्तकालयों का लोकशिक्षण पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा है। पुस्तकालयों द्वारा राज्य की प्रायः ७० प्रतिशत जनता को शिक्षा मिल रही है। पुस्तकालय-स्थापन की वही योजना आज भारत के प्रत्येक राज्य एवं लोकहितैषी के लिए आदर्श और अनुकरणीय बन गई है।

बड़ोदा के यात्रियों के लिए राज्य में वैसे कई दर्शनीय वस्तुएँ हैं, किन्तु सर्वाधिक मोहक स्थान है वहाँ का केन्द्रीय पुस्तकालय। यह बृहत् ग्रंथागार बड़ोदा-नगर के मध्यभाग—हृदय-देश में अवस्थित है। यह

स्थान (मांडवी दरवाजा) राजकीय संस्थाओं का केन्द्रस्थल है। प्रशस्त राजपथ के दक्खिणी छोर के एक पार्श्व में बड़ोदा-बैंक; उत्तरी छोर की एक ओर राजकीय संस्कृत-महाविद्यालय, चिमनाबाई-उद्योगालय और राजकीय कोष, तथा इन सब के मध्य में राजपथ के दोनों पार्श्वों में विशाल-भवनों में केन्द्रीय पुस्तकालय स्थित है। इससे ऐसा प्रतीत होता है, मानों बड़ोदा-नरेश ने अन्य कोषों की अपेक्षा ज्ञान-कोष—ग्रंथागार को अधिक मूल्यवान समझकर ही सबके बीच में रक्खा है। पुस्तकालय-भवन के सामने लगे हुए चिह्न-पट (साइनबोर्ड) के ये शब्द "पुस्तकालयस्थ ग्रन्थो का उपयोग कीजिए; वे यहाँ आप के लिए निःशुल्क रक्खे गए हैं (यूज़ लाइब्रेरी बुक्स, दे आर हियर फॉर यू फ्री)", सड़क पर खड़े हुए सामान्य शिक्षित के मन को भी अपनी ओर बरबस खींच लेते हैं। यहाँ इसी पुस्तकालय की कार्य-विधि पर कुछ प्रकाश डाला जाता है।

पहले पुस्तकालय-विभाग द्वारा पुस्तक-वितरण के अतिरिक्त दो और कार्य होते थे। एक तो गायकवाड़-प्राच्य-ग्रंथमाला-(ओरियंटल-सिरीज) का प्रकाशन, जिसमें प्राचीन साहित्य प्रकाशित होता था और दूसरा था अशिक्षित जनता को चित्रपटों और चलचित्रों द्वारा शिक्षा देना। कार्याधिक्य के कारण १९२७ ई० के सितम्बर मास में प्राच्य-ग्रन्थमाला (ओरियटल सिरीज) का काम 'प्राच्य-विद्या-मंदिर' (ओरियण्टल इंस्टीट्यूट) के अधीन कर दिया गया, जिसमें संस्कृत-साहित्य भी रक्खा गया। अब उस संस्था द्वारा ही यह कार्य सम्पन्न होता है। चित्रपटों द्वारा जनता की शिक्षा का कार्य भी पुस्तकालय-विभाग की स्वास्थ्य-रक्षिणी-समिति के हाथ में दे दिया। यद्यपि पुस्तकालय-सम्मेलन कभी-कभी चित्रपटों और चलचित्रों द्वारा लोक-शिक्षण का कार्य करता है, परन्तु गौण रूप से। इस समय पुस्तकालय-विभाग दो मुख्य विभागों में विभक्त है। एक केन्द्रीय पुस्तकालय (सेंट्रल लाइब्रेरी), जिसके अधीन पुस्तक-वितरण-विभाग, सूचना-विभाग, महिला-पुस्तकालय, बालक्रीड़ा-भवन, वाचनालय एवं पुस्तक-बँधाई-विभाग हैं; दूसरा प्रधान कार्यालय और प्रादेशिक शाखा, जिसमें ग्राम तथा नगर-पुस्तकालय एवं गश्ती पुस्तकालय हैं।

पुस्तक-वितरण-विभाग

इस पुस्तकालय की पहली विशेषता है खुली आलमारियों का रहना, जिसे मुक्त कोष्ठक-पद्धति (ओपेन ऐक्सेसन सिस्टम) कहते हैं। इस प्रणाली से पाठक एवं पुस्तकालय के अधिकारी दोनों को लाभ होता है। आलमारियों के बन्द रहने से पाठक सूची-पत्रों में अंकित चटकदार नामवाली अथवा लेखक की प्रसिद्धि से आकृष्ट होकर पुस्तकों को निकलवाते हैं। पुस्तकें घर लाने पर पाठकों को अभीष्ट सामग्री न पाकर हताश हो जाना पड़ता है। पुस्तकालय के चपरासी के पास इतना समय नहीं होता कि वह एक पाठक के लिए देर तक आलमारी खोल कर खड़ा रहे, जब तक कि वह पुस्तक न पसंद कर ले। उसको तो विभिन्न प्रकृति के अनेक पाठक-पाठिकाओं को सँभालना होता है। दूसरी कठिनाई होती है पुस्तकों को निकलवाने में। पुस्तकालय में पाठक- पाठिकाओं को भीड़ के मारे घंटों टकराना पड़ता है। खुली आलमारियों में पुस्तकें रखने से यह दोष दूर हो जाता है। पाठक अपने पसंद की पुस्तकें स्वयं ढूँढ निकालते हैं और उन्हें देख-पढ़कर पसंद करके ले जाते हैं। इससे पुस्तकालय को अधिक चपरासी नहीं रखने पड़ते; बड़े से बड़े ग्रंथागार की देखभाल थोड़े से चपरासी कर ले सकते हैं। जहाँ इस पद्धति में कुछ सुविधाएँ हैं, वहाँ अनेक असुविधाएँ भी हैं। पुस्तकालयों विशेष कर निःशुल्क पुस्तकालय में अनेक प्रकार के व्यक्ति आते हैं। कुछ तो केवल पुस्तकें उलट-पलट कर अस्तव्यस्त कर देने के ही लिए आते हैं। पुस्तकों के स्थानान्तरित हो जाने के कारण पुस्तकें खोजने में बड़ी कठिनाई होती है। निःशुल्क ग्रंथागारों में ऐसे महानुभावों के भी शुभागमन होते रहते हैं, जो अपनी जेब में, पहनी हुई धोती या पाजामे के भीतर पुस्तकें डालकर चुपके से खिसक जाते हैं और बाहर जाते समय नाक-भौं सिकोड़े वांछित पुस्तकों के न मिलने की शिकायतें सुनाते जाते हैं। इन के होते हुए भी यहाँ के अधिकारी आलमारियों को खुला रखना ही लाभकर समझते हैं। इस प्रकार बड़ोदा का केन्द्रीय पुस्तकालय अपने पाठकों के हितार्थ पुस्तकों के खोने तथा स्थानान्तरित होने की कठिनाइयों की भारी

जोखिम उठाता है और पुस्तकों को यथास्थान रखने के निमित्त अधिक से अधिक चपरासी रखता है।

पुस्तकों का वर्गीकरण एवं पुस्तक-सूचियाँ

पुस्तकों के अवैज्ञानिक वर्गीकरण और क्रमहीन सूचीपत्रों के कारण विशाल से विशाल पुस्तकालय से भी यथेष्ट लाभ नहीं उठाया जा सकता। कोई केवल पुस्तक का ही नाम जानता है, कोई लेखक का और कुछ ऐसे भी पाठक होते हैं जो किसी विशेष विषय की पुस्तकों का अध्ययन करना चाहते हैं। पिछले प्रकार के पाठकों में अध्यापक, ग्रन्थकार, पत्रकार एवं वक्ता होते हैं। इन्हें एक ही समय, एक ही विषय की अनेक पुस्तकों की आवश्यकता पड़ती है। संदर्भ (रेफरेंस) के लिए सूचीपत्र उक्त तीनों प्रकार के पाठकों की सुविधा का विचार कर बनाना चाहिये, अन्यथा पुस्तकों के निकालने में इतना कष्ट उठाना पड़ता है कि अध्ययन का आनन्द जाता रहता है—मजा किरकिरा हो जाता है। यहाँ सूचीपत्रों के बनाने में अमेरिकन पुस्तकालयों की कार्डपद्धति का अनुकरण किया जाता है। "कटर" महोदय 'प्रसारक पद्धति'(एक्सपेन्सिव सिस्टम) और ड्यूवी महाशय की 'दाशमिक प्रणाली' (डेसिमल सिस्टम का उपयोग किया जाता है। दोनों में क्रमशः अक्षरों और अंकों का उपयोग होता है। अक्षरों से प्रधान विषयों का संकेत होता है और अंकों से किसी विषय के उपविभागों के सूचीपत्र पुस्तक के नाम, लेखक के नाम एवं विषय के अनुसार बने हुए रहते हैं। इससे पुस्तकों के खोजने में बड़ी सुविधा होती है।

पुस्तक-वितरण का नियम

पुस्तकें उधार देने का नियम बड़ा सरल और सुविधाजनक है। पुस्तक-वितरण का कार्य 'न्यूयार्क की द्वि कार्ड पद्धति' (न्यूयार्क-टू-कार्ड-सिस्टम) के अनुसार होता है। प्रत्येक नियमित पाठक को एक कार्ड दिया जाता है, जिस पर उसका नाम, पता आदि लिखा रहता है। इस कार्ड की प्राप्ति के लिए आयकर (इनकम टैक्स) देनेवाले व्यक्ति, सीनियर वकील, कमसे कम

७५ रु० मासिक वेतन पाने वाले राजकर्मचारी अथवा किसी सम्मानित व्यक्ति से आवेदनपत्र पर हस्ताक्षर कराना होता है। १५ रुपये जमा करने पर भी पुस्तकालय का कार्ड मिल जाता है। ये रुपये पुस्तकालय से नाम पृथक् कराते समय मिल जाते हैं। पुस्तकालय को किसी का शुल्क (फीस) नहीं देना पड़ता। इससे निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी पुस्तकालय से लाभ उठा सकता है।

प्रत्येक पुस्तक में मजबूत कागज की एक थैली चिपकी रहती है, जिसमें एक कार्ड रक्खा रहता है। उसपर पुस्तक का नाम आदि लिखा रहता है। इस कार्ड पर पुस्तक लेनेवालों के हस्ताक्षर तथा पुस्तक लेने और लौटाने की तिथियों के लिए खाने बने रहते हैं। पाठक इच्छानुकूल पुस्तकें चुन कर उसमें के कार्डों पर अपने हस्ताक्षर बना देता है। उधार देने की तिथि लगाने वाला एक ग्रंथालय किरानी (लाइब्रेरी-क्लर्क) पुस्तकालय-सदस्य के नामवाले कार्ड और पुस्तक के कार्ड पर तिथि लगाकर रख लेता और पुस्तकों पर चिपके हुए एक कागज़ पर तिथि लिख कर दे देता है। ये कार्ड अक्षरानुक्रम से रख दिए जाते हैं और पुस्तकें लौटाने पर पाने की तारीख लगाकर सदस्यता का कार्ड पाठक को पुनः दे दिया जाता है। यह कार्य इतना वैज्ञानिक और साथ ही सरल है कि केवल तीन-चार किरानी (क्लर्क) पुस्तकालय में आने वाले सैकड़ों पाठक पाठिकाओं को सँभाल लेते हैं। इस कार्य में न पाठक को अधिक समय खोना पड़ता है और न किरानी को। इस पद्धति से कई प्रकार के लाभ होते हैं। पुस्तक लेने-देने में समय तो कम लगता ही है, इसके सिवा यह भी पता लगता रहता है कि किस पाठक के पास पुस्तक १५ दिनों से अधिक रह गई, जिससे विलम्ब की सूचना देने में सुविधा होती है। इससे साल में पठित पुस्तकों के आँकड़े निकालने में भी सहायता मिलती है; कौन-सी पुस्तक कितनी बार बाहर गई आदि बहुत-सी बातें ज्ञात होती हैं। इस प्रणाली से पुस्तकालय के अधिकारियों को यह जानने में बड़ी सुविधा होती है कि कौन-सी पुस्तक तथा लेखक अधिक लोकप्रिय है; किसकी पुस्तकें अधिक पढ़ी जाती हैं। इसके आधार पर वे अपने पुस्तकालयों के लिए लोकप्रिय लेखकों की अधिक पुस्तकें खरीदते हैं।

केन्द्रीय पुस्तकालय का सर्वाधिक मूल्यवान्, उपयोगी और रोचक विभाग सूचना-विभाग है। पाश्चात्य देशों के पुस्तकालय केवल पुस्तक-वितरण का ही काम नहीं करते; उनका काम जनता को उपयोगी सूचनाएँ देना भी होता है। वहाँ ऐसे विभाग होते हैं, जिनसे व्यापारी संसार के व्यापार-मण्डलों की जानकारी प्राप्त कर लेता है, लेखक घर बैठकर फोन द्वारा विस्मृत या अर्द्धविस्मृत आंकड़ों और बातों को पूछ लेता तथा उनका अपने लेखों में यथास्थान उपयोग करता है; समाज-सुधारक अनेक प्रकार के सुधार-सन्दर्भों का पता लगाता है और वक्ता बैठे-बैठे अपने व्याख्यानों के लिए आवश्यक मसाला जुटा लेते हैं। भारत में बड़ोदा-पुस्तकालय को छोड़ दूसरी ऐसी कोई जगह नहीं, जहाँ ऐसा लोकोपयोगी कार्य होता हो। इस क्षेत्र में बड़ोदा के केन्द्रीय पुस्तकालय ने जो कार्य किया है, वह अपने ढंग का निराला और परम उपयोगी है। इस विभाग द्वारा बाहर से पत्र द्वारा जिज्ञासा करनेवाले व्यक्तियों को यथासाध्य उत्तर देने का प्रयत्न किया जाता है। इस विभाग में विविध भाषाओं के बहुमूल्य कोष, विश्वकोष, सारिणियाँ, संदर्भक (रेफरेंस बुक) तथा विवरण-पत्रिकाएँ रक्खी गई हैं।

समाचारपत्रों की कतरन

पुस्तकालय में समाचारपत्रों से मुख्य बातों की कतरनें रखने की योजना बड़ी उपयोगी है। बड़ोदा-पुस्तकालय में इसके लिए एक पृथक् विभाग ही है। इस कार्य के निमित्त विभिन्न विषयों के सुयोग्य विद्वान् नियुक्त रहते हैं, जो प्रमुख पत्रों से संसार की विविध प्रगतियों के सम्बन्ध में कतरनें कटवाकर रखते हैं। पुस्तकालय में कतरन-विभाग (पेपर कटिंग-डिपार्टमेंट) का भी एक इतिहास है। स्वर्गीय महाराज सर सयाजीराव गायकवाड़ बड़े विद्याव्यसनी थे। वह संसार, विशेष कर हिन्दुस्तान की परिस्थिति का ज्ञान रखने के लिए सामयिक पत्रों को पढ़ते तथा पढ़वाकर सुना करते थे। उनको सुनाने के लिए उपयुक्त कतरनों को दफ्तियों पर चिपकाकर रक्खा जाता था। समाचार-पत्रों की ऐसी कतरनें

सर्वप्रथम महाराज के पास भेजी जाती थीं। उनके पढ़-सुन लेने के बाद वे पुनः पुस्तकालय में लौट आती थीं और फाइल बनाकर रख दी जाती थीं। तभी से समाचारपत्रों की कतरनों की फाइल रखने की पद्धति चालू हो गई है। इनकी विषयानुसार सूची बनाई जाती है, जिससे किसी विशेष विषय की जानकारी में बड़ी सुविधा होती है। उदाहरणार्थ राजनीतिक प्रगतियों के सम्बन्ध में एक फाइल, देशी रियासतों के विषय में दूसरी, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक आदि विषयों की पृथक्-पृथक् फाइलें और बड़ोदा-राज्य-सम्बन्धी विविध विषयों की अलग-अलग फाइलें। इन फाइलों को पढ़ना प्रत्येक लेखक, विशेषकर पत्रकारों के लिए बड़ा रोचक एवं उपयोगी सिद्ध होता है। इनके आधार पर अच्छे से अच्छे लेख लिखे जा सकते हैं।

पुस्तकालय

केन्द्रीय पुस्तकालय में विविध विषयों के बहुमूल्य ग्रन्थ रक्खे गए हैं। सबसे अधिक पुस्तकें अंग्रेजी, गुजराती और मराठी की हैं। हिन्दी, उर्दू और बँगला की भी पुस्तकें हैं। इधर कई वर्षों से राज्य में हिन्दी के अनिवार्य हो जाने के कारण हिन्दी पुस्तकों की संख्या बढ़ रही है। इस समय पुस्तकालय के नियमित पाठक-पाठिकाओं की संख्या साढे पाँच हजार से ऊपर है। प्रति वर्ष एक लाख पुस्तकें पढ़ी जाती हैं। केन्द्रीय पुस्तकालय में ६०००० अंग्रेजी, ३५००० मराठी, ५०००० गुजराती, ५००० हिन्दी, २००० उर्दू तथा ३००० अन्य भाषाओं तथा पारसी आदि की पुस्तकें हैं। प्रति वर्ष १५,००० रु० पुस्तकों पर और २४०० रु० पत्र-पत्रिकाओं पर व्यय होते हैं। केन्द्रीय पुस्तकालय का कुल वार्षिक व्यय ८८०८६ रुपए होता है।

वाचनालय

स्थायी साहित्य के ज्ञान के साथ-साथ सामयिक ज्ञान की बड़ी आवश्यकता होती है। जिसे सामयिक बातों का ज्ञान नहीं, दैनिक

घटनाओं और विश्व की नित्य बदलनेवाली समस्याओं की जानकारी नहीं, वह आज के प्रगतिशील संसार में सदा पिछड़ा रहेगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि संसार की गति-विधियों का ज्ञान सामयिक समाचारपत्रों के ही द्वारा हो सकता है। एक व्यक्ति के लिए विविध प्रकार के पत्रों का खरीदना कठिन है। इसी विचार से पुस्तकालय-विभाग ने स्थायी साहित्य के अनुपात में सामयिक साहित्य के लिए पर्याप्त प्रबन्ध किया है। यहाँ के वाचनालय में विविध भाषाओं की प्रायः साढ़े तीन सौ पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। यह वाचनालय सर्वसाधारण के लिए प्रतिदिन १२ घंटे के लिए खुला रहता है, जिसमें लोग बैठकर ज्ञानार्जन कर सकें। इस वाचनालय द्वारा सार्वजनिक शिक्षण को बड़ी सहायता मिलती है। गुजराती, मराठी और हिन्दी में लिपि एवं शब्द-साम्य के कारण एक भाषा का ज्ञाता दूसरी भाषा को बड़ी सरलता से सीख लेता है। इस भाषा-विनिमय के प्रभाव को देखकर आपको आश्चर्य होगा कि साधारण शिक्षित गुजराती मुसलमान भी सरलता के साथ हिन्दी के मासिक पत्रों को पढ़ते हैं। यदि देश भर की लिपि एक होती तो विचार-विभेद की गहरी खाइयाँ बहुत कुछ मिट जातीं। केन्द्रीय पुस्तकालय का यह विशाल वाचनालय भवन की दूसरी मंजिल पर हवादार स्थान पर स्थित है, जिसमें अधिक वाचकों के आने पर भी शान्ति विराजती रहती है।

महिला-पुस्तकालय

फ्रांस के क्रांतिकारी दार्शनिक रूसो ने एक जगह लिखा है कि पुरुषों को वीर और सदाचारी बनाने के पहले स्त्रियों को वीरता और सदाचार का अर्थ बताना चाहिये। बड़ोदा-राज्य ने इस तथ्य को समझकर महिला-समाज की शिक्षा पर भी पर्याप्त ध्यान दिया है। गुजराती-मराठी जनता-मिश्रित राज्य में यद्यपि स्त्रियों में परदे की प्रथा नहीं, फिर भी उनके लिए पृथक् पुस्तकालय और वाचनालय की आवश्यकता समझी गई है, जिसमें महिलाएं निःसंकोच आ-जा और पढ़-लिख सकें। इस विभाग में विशेषतः महिलोपयोगी ग्रन्थ एवं पत्र-पत्रिकाएँ रक्खी जाती हैं। आवश्यकता पड़ने पर केन्द्रीय पुस्तका-

लय से पुस्तकें मँगा ली जाती हैं। महिला-पुस्तकालय की अध्यक्षा प्रति रविवार को चिमनाबाई स्त्री-समाज में पुस्तक-वितरण के लिए जाया करती हैं। इस साप्ताहिक पुस्तक-वितरण द्वारा महिलाओं में पढ़ने की प्रवृत्ति का खूब प्रचार हो रहा है; पाठिकाओं की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है।

बाल-क्रीड़ा-भवन

शिशु राष्ट्र के भावी नागरिक हैं। उनकी उपयुक्त शिक्षा-दीक्षा पर ही राष्ट्र का उत्थान निर्भर रहता है। पाश्चात्य देशों में बालकों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इस कार्य के लिए बड़े-बड़े मनोविज्ञान-विशारद नियुक्त किए जाते हैं, जो बाल-मनोविज्ञान की सहायता से बालोपयोगी साहित्य की रचना करते और शिशुओं को उन्नत पथ पर चलाते हैं। प्राचीन भारत में बाल-शिक्षण पर बहुत-कुछ ध्यान दिया जाता था, परन्तु आजकल उस पर बहुत ही कम ध्यान दिया जाता है। बड़ोदा-राज्य ने अपने बालकों को सुशिक्षित बनाने के उद्देश्य से बाल-क्रीड़ा-भवन की स्थापना की है। भवन में प्रवेश करते ही दीवारों पर उदात्तभाव-बोधक प्राकृतिक दृश्यों के चित्र दृष्टिगोचर होते हैं। इसमें बालोपयोगी अनेक खेलों के सामान रक्खे रहते हैं और साथ ही सचित्र बाल-साहित्य एवं बाल पत्रिकाएँ भी। यह विभाग एक कुशल एवं स्नेहमयी देवी की देख-रेख में चलता है। बाल-भवन की अध्यक्षा महोदया स्वयं शिशु बन जाती हैं और भवन में आने वाले बच्चों के साथ खेलतीं, उन्हें नाना भाँति के खेल सिखलातीं तथा पढ़ने की ओर प्रवृत्त कराती हैं। यहाँ नन्हें-नन्हें बच्चे खेल-खेल में ही शब्दयोजना सीख जाते हैं। बालक स्वभाव से नटखट होते हुए भी इस भवन में अध्यक्षा महोदय के सरल एवं स्नेहमय व्यवहार के कारण शान्ति के साथ अपना मनोरंजन करते रहते हैं। कोई किसी को न छेड़ता है और न हल्ला-गुल्ला करता है। यहाँ बालकों के मस्तिष्क में केवल कोरा ज्ञान भरने का प्रयत्न नहीं किया जाता; मनोरंजन के साथ ही उनमें ज्ञान-प्राप्ति की भावना भी उत्पन्न की जाती है। इस भवन में एक कार्य और भी होता है। वह है आख्यान-मालिका। समय-समय पर बच्चों को सरस कहानियाँ

सुनाई जाती हैं। कहानी कहने में बालक भी भाग लेते हैं। इस शान्ति एवं शिक्षाप्रद वातावरण में छोटे-छोटे बच्चे स्वतः चले आते हैं। इस प्रकार बच्चे आपस में गाली-गलौज करने के बदले मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षा प्राप्त करते हैं।

ग्राम-पुस्तकालय

अब तक तो बड़ोदा-नगर के केन्द्रीय पुस्तकालय के सम्बन्ध में ही चर्चा की गई है। शहरों की अधिकांश जनता साधन-सम्पन्न और शिक्षित होती है, इसलिए शिक्षाप्राप्ति में उसे कम कठिनाई होती है। केन्द्रीय पुस्तकालय विशेषकर शिक्षितों, विद्वानों एवं गवेषकों के ही उपयोग में आ सकता है। ग्रामीण जनता इससे बहुत ही कम लाभ उठा सकती है। ग्रामीण जनता की शिक्षा का कार्य ही अधिक महत्त्व का और साथ ही दुरूह भी है। बड़ोदा-राज्य ने ग्रामीण जनता की--राष्ट्र के सच्चे निर्माताओं की शिक्षा के लिए पर्याप्त ध्यान दिया है। इस कार्य के लिए एक पृथक् विभाग ही खोल दिया गया है। इस विभाग का उद्देश्य प्रत्येक ग्राम में, प्रत्येक ग्रामवासी के कानों में ज्ञान का संदेश पहुँचा देना है। यह कार्य तीन प्रकार से सम्पन्न किया जाता है। नगरों एवं ग्रामों में पुस्तकालय तथा वाचनालय स्थापित करके, गश्ती पुस्तकालयों द्वारा एवं दृश्यपटों के प्रदर्शनों द्वारा। प्रादेशिक पुस्तकालय तीन कोटि के होते हैं—जिला-पुस्तकालय, नगर-पुस्तकालय तथा ग्राम-पुस्तकालय। इन पुस्तकालयों को राज्य की ओर से क्रमशः ७००, ३०० और १०० रुपए वार्षिक सहायता दी जाती है। यहाँ एक बात ध्यान देने की है कि जन-हितार्थ राज्य की सहायता से पुस्तकालय-स्थापन द्वारा जनता को परावलम्बन का पाठ नहीं पढ़ाया जाता। पुस्तकालयों का संगठन इस प्रकार से किया गया है कि जनता स्वावलम्बन का आश्रय लेती है और अपने लिए स्वयं पुस्तकालय स्थापित कर लेती है। राजकीय सहायता का उद्देश्य केवल पथ-प्रदर्शन एवं प्रोत्साहन मात्र है। जनता पुस्तकालयों के लिए धन एकत्र करने में बड़ी तत्परता दिखलाती है और

किसी को भार भी नहीं मालूम पड़ता। ग्रामीण जनता के पास पैसे तो सदा होते नहीं, इसलिए लोग विवाहादि उत्सवों पर दान-स्वरूप धन-संग्रह कर लेते हैं। उत्सवों के समय पैसे पानी की भाँति बहाये जाते हैं, इसलिए जनता अपने ज्ञान के साधन जुटाने के लिए हँसी-खुशी से पैसे दे देती है। इस प्रकार जहाँ ग्रामवासियों के लिए ज्ञान का साधन जुटाने में सहायता मिलती है, वहाँ अधिक धन दान करनेवाले का नाम भी होता है। राजकीय सहायता उन्हीं पुस्तकालयों को दी जाती है, जो सहायता के बराबर धन एकत्र कर लिया करते हैं।

जब किसी ग्राम के निवासी चन्दे या दान आदि द्वारा निःशुल्क पुस्तकालय या वाचनालय अथवा दोनों के निमित्त एक सौ रुपए तक वार्षिक की व्यवस्था कर लेते हैं तब प्रान्त पंचायत और पुस्तकालय विभाग की ओर से सौ-सौ रुपए वार्षिक सहायता-स्वरूप मिलते हैं।

जब किसी ग्राम के नागरिक चन्दे या दान आदि द्वारा २५) एकत्र करके पुस्तकालय-विभाग में जमा कर देते हैं तो उस ग्राम में निःशुल्क पुस्तकालय आरम्भ करने के उद्देश्य से पुस्तकालय-विभाग से एक सौ रुपए की पुस्तकें दी जाती हैं।

जब ४०० से अधिक की जनसंख्यावाले किसी नगर के निवासी चन्दे या दानादि से ३०० रु० तक वार्षिक की व्यवस्था कर लेते हैं तो विशिष्ट पंचायत और पुस्तकालय-विभाग भी तीन-तीन सौ रुपए वार्षिक की सहायता देते हैं। नगर-पुस्तकालय ग्राम-पुस्तकालयों की देख-रेख भी करते हैं।

जब किसी प्रान्त के नागरिक चन्दे या दान आदि द्वारा ७०० रुपए वार्षिक की व्यवस्था कर लेते हैं तो किसी प्रमुख नगर में पुस्तकालय खोला जाता है और प्रान्त-पंचायत, विशिष्ट पंचायत और पुस्तकालय-विभाग की ओर से सात-सात सौ रुपए वार्षिक की सहायता मिलती है। प्रान्तीय पुस्तकालय नगर-पुस्तकालयों की देख-रेख करते हैं।

पुस्तकालय-विभाग की ओर से प्रान्तीय, नगर और ग्राम पुस्तकालयों के भवनों के लिए भी आर्थिक सहायता मिलती है। जब किसी ग्राम या नगर के निवासी अपने पुस्तकालय-भवन के निर्माण के निमित्त आवश्यक व्यय का एक-तिहाई चन्दे या दानादि द्वारा एकत्र कर लेते हैं तो प्रान्त-पंचायत और पुस्तकालय-विभाग की ओर से दो-तिहाई व्यय की व्यवस्था कर दी जाती है।

सरकारी सहायता प्राप्त करनेवाले ग्राम-पुस्तकालयों को अपनी वार्षिक आय का २५ प्रतिशत पुस्तकों, ३० प्रतिशत सामयिक पत्र-पत्रिकाओं, २० प्रतिशत मकान-किराया और कुर्सी-आलमारी आदि पर तथा २५ प्रतिशत अन्य किसी विशेष कार्य के निमित्त व्यय करना पड़ता है।

इसी प्रकार नगर और प्रान्तीय पुस्तकालयों को २५ प्रतिशत पुस्तकों, १५ प्रतिशत सामयिक पत्र-पत्रिकाओं, १० प्रतिशत कुर्सी-मेज-आलमारी आदि तथा २५ प्रतिशत व्यवस्था के ऊपर व्यय करना होता है।

सरकार की ओर से एक स्थान पर केवल एक ही पुस्तकालय को सहायता दी जाती है। ऐसी व्यवस्था न हो तो सभी अपने-अपने घर पुस्तकालय खोलने का ढोंग करने लगें।

ग्राम-पुस्तकालयों का कार्य प्रायः स्थानीय पाठशालाओं के शिक्षक करते हैं। बड़ोदा-सरकार ने इस विभाग को आदेश दिया है कि प्रति वर्ष १०० पुस्तकालय खोले जायँ, जब तक कि पाठशालावाले प्रत्येक ग्राम में पुस्तकालय न स्थापित हो जाय। इस उदार योजना को कार्यान्वित करने के लिए बहुत प्रयत्न किया जा रहा है, क्योंकि यह अनुभव हो गया है कि ग्राम-पाठशालाओं में प्राप्त साक्षरता को स्थायी बनाने में ये पुस्तकालय बड़े उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं।

गश्ती पुस्तकालय

प्रत्येक ग्राम में पुस्तकालय खोलने का यत्न तो हो रहा है, परन्तु यह कार्य सरल नहीं है। जिन ग्रामों में पुस्तकालय नहीं खुल सके हैं, उन

ग्रामों की जनता के लाभार्थ गश्ती पुस्तकालयों की योजना बनाई गई है।

गश्ती पुस्तकालयों का भी एक इतिहास है। इसका सर्वप्रथम आरम्भ स्काटलैंड में आज से प्रायः डेढ़ सौ वर्ष पहले हुआ था, जब कि कुछ गिरजे (चर्च) और पाठशालाएँ रविवार के दिन लोगों को उपदेश के लिए विभिन्न स्थानों पर पुस्तकें ले जाया करती थीं। पीछे मेलबोर्न-सार्वजानिक-पुस्तकालय ने इस कार्य को बढ़ाया और एक निश्चित रूप दिया। इस प्रणाली ने पूर्णता प्राप्त की अमेरिका में। भारत में इस लोकोपयोगिनी योजना का सर्वप्रथम श्रीगणेश बड़ोदा-राज्य में सन् १९११ ई० के मई मास में हुआ था। इस समय इससे बड़ी सफलता से लोक-शिक्षण का कार्य हो रहा है।

गश्ती पुस्तकालयों की कार्य-संचालन-विधि बड़ी सरल और सुन्दर है। इस कार्य के लिए लकड़ी की मजबूत आलमारियाँ बनाई जाती हैं, जिनमें १५ से २५ पुस्तकें तक रक्खी जाती हैं। जिस ग्राम में पुस्तकों की आवश्यकता होती है, वहाँ का कोई पठित व्यक्ति गश्ती पुस्तकालयाध्यक्ष के पास आवेदन-पत्र भेजता है। तदनुसार आलमारी रेल द्वारा भेज दी जाती है और ताली डाक द्वारा। आलमारियों के भेजने और लौटाने आदि का मार्ग-व्यय भी पुस्तकालय ही उठाता है। एक आलमारी एक स्थान पर नियमतः ३ मास तक रक्खी जा सकती है। आवश्यकतानुसार अवधि बढ़ा भी दी जाती है। पुस्तकों का उत्तरदायित्व उनके मँगानेवाले पर होता है। वह अपनी सुविधा के अनुसार ग्रामवासियों को पुस्तकें देता है। आवश्यकता पड़ने पर विशेष पुस्तकें भी भेजी जाती हैं। आलमारियाँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं भेजी जातीं। इनका सम्बन्ध प्रधान कार्यालय से रहता है। गश्ती पुस्तकालय द्वारा पुस्तकों के साथ-साथ मनोरंजक खेलों का प्रचार और शिक्षाप्रद चित्रों का प्रदर्शन भी किया जाता है। साधारण दृष्टि से गश्ती पुस्तकालय का काम श्रमसाध्य एवं जटिल प्रतीत होता है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। बड़ोदा में लोक-शिक्षण का इतना प्रचार हो गया है कि यह कार्य बड़ी सरलता से हो जाता है।

इस विभाग के अध्यक्ष के सम्मुख जटिलता का प्रश्न उठाने पर वे बड़ी तेजस्विता से उत्तर देते हैं कि यह काम अत्यन्त सरल है। गश्ती पुस्तकालयों द्वारा 'लोक-शिक्षण तो होता ही है, सबसे बड़ा काम होता है लोक-भावना के परिष्कार का। इसके द्वारा जनता में स्वयं पुस्तकालय खोलने की भावना जाग्रत होती है। इस प्रकार गश्ती पुस्तकालय शिक्षा दान के साथ-साथ पुस्तकालय-स्थापन-आन्दोलन का भी प्रचार करते हैं। प्रादेशिक विभाग, जिसके द्वारा बड़ोदा-नगर और छावनी को छोड़कर शेष राज्य में पुस्तकालय का कार्य होता है। बड़ोदा पुस्तकालय के उपाध्यक्ष श्री मोती भाई एन्० अमीन की देख-रेख में पिछले ४० वर्षों से लोक-शिक्षण के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य करता आ रहा है। अमीन महोदय राज्य के एक मूक लोकसेवी सज्जन हैं। उनका सारा जीवन लोक-शिक्षण के क्षेत्र में व्यतीत हुआ है। उनका अधिकांश समय राज्य में पुस्तकालयों के स्थान, उनके संघटन एवं निरीक्षण में ही व्यतीत हुआ है। समय-समय पर वे पाठशालाओं के शिक्षकों, शिक्षणानुभवशाला के स्त्री-पुरुष विद्यार्थियों एवं निरीक्षकों के सम्मुख पुस्तकालय-संचालन-विधि पर भाषण भी देते रहते हैं। इन्हें देहाती दुनिया से अधिक काम पड़ता है। तदनुसार आपका सहानुभूतिपूर्ण सरल स्वभाव भी है। अमीन महोदय की सहृदयता और सच्ची लगन का ही यह परिणाम है कि प्रति वर्ष सैकड़ों नवयुवक पुस्तकालय-संचालन-कला में प्रवीणता प्राप्त कर लेते हैं और लोक-शिक्षण के कार्य में सहायक बनते हैं। ग्रामीण जनता में शिक्षा की प्रवृत्ति को जाग्रत करने के उद्देश्य से एक पुस्तकालय-सम्मेलन भी है, जो चित्रपटों द्वारा जनता में शिक्षा-प्रचार का कार्य करता रहता है।

प्राच्य-विद्या-मन्दिर

प्राच्य-विद्या-मंदिर (ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट) राज्य का एक दूसरा स्वतंत्र पुस्तकालय है। यह भारत में प्राचीन साहित्य का उत्कृष्ट संग्रहालय है। इसमें भोजपत्र, ताल-पत्र एवं पुराने कागजों पर लिखे

हुए संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं के दुर्लभ हस्तलिखित ग्रंथ हैं। इनके संग्रह के लिए बड़ोदा-सरकार को बहुत रुपए खर्च करने पड़े हैं। प्राचीन दुर्लभ हस्तलिखित ग्रंथों को आकस्मिक अग्निकांडों से बचाने के लिए-विदेशों से ऐसी आलमारियाँ मँगाई गई हैं, जिनमें बन्द ग्रंथरत्न सारे भवन के जल कर खाक हो जाने पर भी बचे रह सकते हैं।

प्राच्य-विद्यामंदिर में कई प्रकार के साहित्यिक अनुष्ठान होते हैं। एक तो इसमें अच्छे से अच्छे प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ जगह जगह से माँग कर, खरीद कर संगृहीत किए जाते हैं। इसके लिए कई विद्वान् लगे रहते हैं। दूसरा काम प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों को पढ़ना तथा उनमें से उपयोगी और महत्त्वपूर्ण ग्रंथों को छाँटकर प्रकाशनार्थ सम्पादित करना। इसके लिए भी कुछ विद्वान् नियुक्त किए गए हैं। इस विभाग द्वारा सयाजी प्राच्य-ग्रंथमाला (सयाजी ओरियंटल सिरीज) का प्रकाशन होता है। अब तक कितने ही दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। लोकोपयोगी ग्रंथों के, जिनसे सर्वसाधारण को भी लाभ पहुँच सकता है, गुजराती, मराठी और हिन्दी में अनुवाद भी प्रकाशित किये जाते हैं।

इसके अतिरिक्त इसमें एक और पृथक् विभाग है, जो गुजराती, मराठी और हिन्दी में उपयोगी विषयों पर प्रौढ़ जनों और बालकों की दृष्टि से पुस्तकें प्रकाशित करता है।

इस पुस्तकालय द्वारा भी पुस्तक-तरण का काम होता है। इसका उपयोग विशेषतः गवेषक विद्वान् (रिसर्च स्कालर) करते हैं।

इसमें एक और महत्त्वपूर्ण कार्य होता है। हिन्दुस्तान एवं बाहर के प्राच्य-साहित्य-सम्बन्धी पुस्तकालयों और विद्वानों को बहुधा दुर्लभ ग्रंथों की आवश्यकता होती है। मूल प्रति का यत्र-तत्र एक तो भेजना सम्भव नहीं, दूसरे भेजने में नष्ट होने या खो जाने का भी भय रहता है। प्राच्य-विद्या-मंदिर ने इस उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की हू-ब-हू प्रतिलिपि कराने के लिए एक यंत्र रक्खा है, जिसे 'फोटोस्टाट'

कहते हैं। इसके सहारे किसी भी प्राचीन ग्रंथ की प्रति की यथातथ्य प्रतिलिपि उतार ली जाती है, जिसकी प्रामाणिकता में किसी को सन्देह नहीं रहता। हाथ से नकल करने में एक तो भूलें हो जाती हैं, दूसरे प्रक्षेप का भी भय रहता है, तीसरे प्राचीन होने की प्रामाणिकता में भी संदेह बना रहता है। 'फोटोस्टार' का सहारा लेने से ये सारी कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं। पुस्तकालयों एवं विद्वानों को इससे बहुत लाभ हुआ है। वे आवश्यकता पड़ने पर प्राचीन ग्रन्थों की प्रतिलिपि कराकर मँगा लिया करते हैं।

पुस्तकालय-सहायक-सहकारी-मण्डल

बड़ोदा-राज्य में आज डेढ़ हजार के लगभग पुस्तकालय हैं। इनके लिए उत्तमोत्तम पुस्तकें निश्चित करना और उन्हें कम-से-कम मूल्य पर खरीदने का कार्य कम उत्तरदायित्व का नहीं। इस कार्य से पुस्तकालय की शक्ति अधिक व्यय हो जाती थी, जिससे अन्य कार्यों में कुछ बाधा पड़ती थी। अतः इसके लिए एक पृथक् विभाग ही खोल दिया गया है। उसका नाम पुस्तकालय-सहायक-सहकारी-मण्डल (लाइब्रेरी को-ऑपरेटिव-सोसाइटी) है। यह लिमिटेड कम्पनी है। यह मण्डल समस्त पुस्तकालयों के लिए आवश्यक सामान और पुस्तकें खरीदने का काम करता है और साथ ही उत्तमोत्तम पुस्तकों का प्रकाशन भी करता है। पाश्चात्य देशों में ऐसी अनेक संस्थाएँ होती हैं, जो विविध वस्तुओं को विविध स्थानों से मँगाकर भेजने का काम करती हैं। ऐसे अनेक साहित्य-संघ होते हैं, जिनके द्वारा उत्तमोत्तम ग्रंथों की सूचना मिला करती है। वे सभी प्रकाशकों के यहाँ से पुस्तकें मँगाकर भेजने का काम करती हैं। ऐसे अनेक साहित्य-संघ होते हैं, जिनके द्वारा उत्तमोत्तम ग्रंथों की सूचना मिला करती है। वे सभी प्रकाशकों के यहाँ से पुस्तकें मँगाकर भेजने का काम करते हैं। बात यह है कि राज्य में इतने पुस्तकालयों के लिए विभिन्न स्थानों से पुस्तकें मँगाने में शक्ति एवं श्रम तथा पैसों का अपव्यय होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति सहकारी मण्डल करता है। पहले पुस्तकालय-विभाग की ओर से 'लाइब्रेरी मिसेलेनी' नामक एक मासिक पत्र अंग्रेजी भाषा में निकलता था,

जिसमें पुस्तकालय के सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्य बातें होती थीं। आठ वर्षों तक चल चुकने के बाद वह पत्र बन्द हो गया। उसके बाद पुस्तकालय-सहकारी-मण्डल द्वारा पुस्तकालय-संचालन-कला विषयक 'पुस्तकालय' नाम का एक मासिक पत्र गुजराती में प्रकाशित किया गया। इधर कुछ दिनों से वह भी बन्द है। पुस्तकालयों को सस्ते मूल्य पर पुस्तकें देने का यह मण्डल अद्भुत कार्य कर रहा है।

लोकरुचि का परिष्कार

विद्यालय और पुस्तकालय खोलना तो सरल हैं, किन्तु महत्त्वपूर्ण और साथ ही कठिन कार्य है पाठकों की मनोवृत्ति को सुसंस्कृत बनाना, उनमें उत्तमोत्तम एवं उपयोगी ग्रन्थ पढ़ने की रुचि उत्पन्न करना। आजकल अधिकांश जन पुस्तकालयों में पग रखते ही गन्दे और निरर्थक उपन्यासों को दनादन चाटने लगते हैं। इस प्रकार की पढ़ाई से लाभ के बदले हानि ही अधिक होती है। विद्वान् तो अपने काम की वस्तु निकाल लेते हैं, परन्तु अर्द्धशिक्षितों एवं शिक्षितों को ग्रन्थ-निर्वाचन में बड़ी कठिनाई होती है। इसलिए पुस्तकालयाध्यक्ष का कर्तव्य पाठकों को उचित सम्मति देना भी है। पुस्तकालयाध्यक्ष उस दानी के समान है, जो अपने अन्न-सत्र में बुभुक्षितों को बुलाता और उत्तमोत्तम पदार्थों के स्वाद और गुण कह-कहकर खिलाता जाता है। बड़ोदा-राज्य के पुस्तकालयाध्यक्ष केवल पुस्तक-पाठकों की ही संख्या नहीं बढ़ाना चाहते, उनके पुस्तकालय का उद्देश्य है लोगों में उदात्त भावना उत्पन्न करना। इस उद्देश्य की पूर्ति तभी हो सकती है, जब पुस्तकालय भोग-विलास और विषय-वासना की वस्तु न बनकर जीवन की आवश्यक सामग्री बन जाते हैं। इसी आदर्श को लेकर केन्द्रीय पुस्तकालय ने लोकरुचि को सुसंस्कृत बनाने के लिए प्रयोग प्रारंभ किए हैं। कुछ लोकोपयोगी ग्रंथों के नामों की घोषणा कर दी जाती है। उनको लोग पढ़ते हैं। कुछ काल पश्चात् उन्हीं पुस्तकों से प्रश्न चुनकर पाठकों की परीक्षा ली जाती है। इस परीक्षा में प्रथम बीस परीक्षार्थियों को पुरस्कार दिए जाते हैं। इस परीक्षा में पाठशालाओं के शिक्षक अधिक भाग लेते हैं। इस प्रणाली से उत्तमोत्तम ग्रंथों को परखने

की शक्ति बढ़ जाती है। अब तक कर्वे, गारफिल्ड, रानाडे, फ्रैंकलिन और एडीसन आदि के जीवन-चरित, बालविज्ञान, ग्रामजीवन आदि में परीक्षा ली जा चुकी है। रुचि-संस्कार के लिए पुस्तकालय-सम्मेलन ने इंग्लैण्ड के राष्ट्रीय गृह-पाठ-संघ' (नेशनल होम-रीडिंग यूनियन) के आदर्श पर बड़ोदा में उत्तमोत्तम ग्रन्थों के स्वाध्याय के निमित्त एक समिति बनाई है। इस स्वाध्याय-समिति के द्वारा भी उत्तमोत्तम पुस्तकों के पाठ की प्रवृत्ति बढ़ रही है।

संचालन-कला की शिक्षा

बड़ोदा के पुस्तकालय द्वारा लोक-शिक्षण का कार्य तो होता ही है, पर दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य होता है पुस्तकालय-संचालन-कला की शिक्षा का। राज्य में शिक्षणानुभव प्राप्त करनेवाले प्रत्येक शिक्षक एवं शिक्षिका के लिए इस कला को सीखना भी अनिवार्य है; क्योंकि ग्राम-पुस्तकालयों का कार्य प्रायः इन्हीं के हाथ में सौंपा जाता है। राज्य में ऐसे अनेक नवयुवक होते हैं, जो पुस्तकालय-संचालन की कला सीखकर ही अपनी आजीविका करना चाहते हैं। उनकी शिक्षा का भी प्रबन्ध हो जाता है। न केवल बड़ोदा-राज्य के ही, वरन् बाहर के भी कई व्यक्ति इस कला की शिक्षा लेने आते हैं। कुछ वर्ष पहले मैसूर, इंदौर, देवास आदि राज्यों ने अपने राज्य में पुस्तकालय-संचालन के लिए अपने यहाँ से छात्रवृत्ति देकर कई स्नातकों (ग्रेजुएटों) को बड़ोदे में पुस्तकालय-संचालन-कला की शिक्षा प्राप्त करने के विचार से भेजा था। आन्ध्र-प्रदेश में कई व्यक्ति पुस्तकालयों द्वारा लोक-शिक्षण का कार्य कर रहे हैं, जिन्होंने बड़ोदा के पुस्तकालय में रहकर इस कला को सीखा था।

साहित्य किसी देश-विशेष की जनता की चित्तवृत्तियों का संग्रह है। जनता की ये चित्तवृत्तियाँ पुस्तकों में अंकित कर ली जाती हैं। पुस्तकें भूत और वर्त्तमान काल के मानव-ज्ञान की पिटारियाँ हैं और पुस्तकालय हैं ज्ञान-कोष, जहाँ सहस्रों और लाखों की संख्या में ऐसी ज्ञान-पिटारियाँ रक्खी जाती हैं। आज इन ज्ञान-पिटारियों का इतना महत्त्व बढ़ गया है कि सभी

उन्नत देश अधिक से अधिक धन व्यय करके पुस्तकालय स्थापित करते हैं। आज ऐसे अन्न-सत्रों के खोलने की आवश्यकता नहीं, जिनमें आलसी और प्रमादी भुक्खड़ जुटकर खायँ और आपस में गाली-गलौज और सिरफुटव्वल करें। आज तो ऐसे ज्ञान-सत्रों की आवश्यकता है, जिनमें दीन-हीन ज्ञान-भिक्षु निःशुल्क मानसिक भोजन पा सकें। पुस्तकालय ऐसी पाठशाला है, जहाँ दूर-दूर के गुरु बहुत कम मूल्य में शिक्षा-दान करते हैं—पुस्तकों के रूप में इन गुरुओं को जुटाना सरल काम नहीं है। पुस्तकों को खरीदने के लिए जहाँ धन की आवश्यकता है, वहाँ उत्तम पुस्तकों के निर्वाचन की योग्यता भी अपेक्षित है। ऐसे दानी बहुत कम हैं, जो अपनी निधि सर्वसाधारण के उपयोग के लिए खोल दें। बड़ोदा-राज्य ने दीन-हीन जनता के कल्याणार्थ प्रशंसनीय प्रयत्न किया है, जो भारत के शिक्षा-संस्कार के इतिहास में महत्त्वपूर्ण अध्याय होगा। बड़ोदा-राज्य के इस प्रयत्न का भारत के अन्य अनेक राज्यों पर भी बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है। बड़ोदा-राज्य का पुस्तकालय-आन्दोलन लोक-शिक्षण के लिए आदर्श और अनुकरणीय है। आशा है, बड़ोदा-पुस्तकालय द्वारा प्रयुक्त विधियों के आधार पर अपनी शक्ति और साधनों के अनुसार भारत के अन्य पुस्तकालय भी लोक-शिक्षण के शुभ कार्य के सम्पादन में सफलता प्राप्त करेंगे।

—:o:—

पुस्तकालयों के द्वार पर

श्रीभदन्त आनन्द कौसल्यायन

यदि संसार के सभी विश्वविद्यालय नष्ट हो जायँ किन्तु उनके पुस्तकालय बचे रहें तो संसार की कोई विशेष हानि न होगी।

पुस्तकालय ही संसार के सच्चे विश्वविद्यालय हैं।

बच्चों को स्कूलों में पाठ्य-पुस्तकें पढ़ने के लिए मजबूर किया जाता है और पुस्तकालय की मनचाही पुस्तकें पढ़ने की ओर से हतोत्साह। अनेक विद्यार्थियों को इससे इतना बड़ा मानसिक आघात पहुँचता है कि वह फिर भावी जीवन में उससे उबर ही नहीं सकते।

पाठ्य-पुस्तकों का बन्धन उन पर लागू होना चाहिये जो पुस्तकालयों में बैठकर स्वेच्छा से पढ़ नहीं सकते।

अच्छा पुस्तकालय और वाचनालय उस बढ़िया उद्यान के समान है, जिसमें सैर करने से मन नहीं अघाता।

उन गरीब विद्यार्थियों के लिए जो पाठ्य-पुस्तकें खरीदने की सामर्थ्य नहीं रखते, यह पुस्तकालय ही है जो कल्प-वृक्ष का काम देते हैं।

लाहौर में अपनी कालेज़ की पढ़ाई समाप्त करने के बाद जब मैं लाला लाजपतराय से अपने भावी कार्यक्रम के बारे में सलाह लेने गया तो उन्होंने आज्ञा दी—खाने-पीने के लिए २५) मासिक की छात्रवृत्ति की व्यवस्था कर देता हूँ। दिन भर पुस्तकालय में बैठकर पढ़ा करो।

तिलक स्कूल आफ पालिटिक्स का नाम बदलकर तब तक लोकसेवक-मण्डल हो गया था। वह लाला लाजपतराय का ही स्थापित किया हुआ था और उन्होंने अपनी पुस्तकों का सारा विशाल संग्रह उसे ही दान कर दिया था। लगभग छः महीने मैं उसी पुस्तकालय में पढ़ता रहा।

पढ़ना बड़ी ही अच्छी बात है, किन्तु उद्देश्यहीन पढ़ाई या तो होती

ही नहीं और यदि होती है तो निष्फला। छः महीने तक पढ़ाई पर ही रहने के पश्चात् मुझे लगने लगा कि मुझे तो कुछ काम करना चाहिये।

इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् पंडित जयचंद्र विद्यालंकार उस समय लाहौर में ही थे। उन्होंने कहा कि आदमी को कोई ठोस कार्य हाथ में लेना चाहिये और उसे करते-करते यदि कोई ग्रन्थि पैदा हो और बिना अध्ययन के वह न सुलझती हो, तभी अध्ययन में जुटना चाहिये। अन्यथा पढ़ाई का कोई अर्थ नहीं। मुझे बात ठीक लगी। लालाजी के पास गया और निवेदन किया—

लालाजी में स्नेह था। वह स्नेहाधिक्य में भूल गए कि किसी तरुण के मर्मस्थल पर इस प्रकार चोट नहीं करनी चाहिये। बोले—

तब तुमने छः महीने तक मेरे २५) बेकार गँवाए। मुझसे न रहा गया। मुँह से निकल ही तो पड़ा—"यदि सामर्थ्य होगी तो आपके यह पचीस लौटा दूँगा।" अपनी उस असंयत वाणी पर मैं कितनी बार पछता चुका हूँ।

दो वर्ष तक काँगड़ा जिले की पहाड़ियों में कुछ सार्वजनिक कार्य करते रहने के बाद मुझे अपने अध्ययन की कमी बुरी तरह खटकने लगी। किसी भी विषय में कुछ भी गहराई नहीं। पुस्तकों का अध्ययन करने के साथ-साथ मैं अपने देश का भी अध्ययन करना चाहता था। सन् १९२५ में मैं इसी रास्ते पर चल पड़ा।

वह प्रेरणा मुझे कहाँ से मिली।

हमारे अपने गाँव की धर्मशाला में एक विद्यार्थी रहता था। वह आई. ए. की तैयारी कर रहा था। पुस्तकों का गट्ठर साथ था। धर्मशाला में रहना। गाँव के लोगों का दिया हुआ खाना। बदले में घंटा आध घंटा उन्हें रामायण-महाभारत सुना देना। शेष समय अपना अध्ययन करते रहना। यही उसका कार्यक्रम था।

परिचय की अधिकता से पढ़ाई में बाधा होने लगती तो उठकर मील दो मील पर पास के किसी गाँव की धर्मशाला में चला जाता। वहाँ पहुँचकर फिर वही कार्यक्रम।

उसी विद्यार्थी को गुरु मानकर मैं भी तीन-चार वर्ष खूब घूमा हूँ। उसे परीक्षा देनी थी, इसलिए उसकी रस्सी कुछ छोटी थी। मैं जहाँ चाहूँ वहाँ जाने के लिए मुक्त था। किसी शहर में भी जाता पहला काम पुस्तकालय का पता लगा लेना था। भोजन की व्यवस्था हो जाती और अच्छे पुस्तकालय का पता लग जाता तब तो एक-दो महीने मैं वहीं रह जाता।

गया के मन्नूलाल-पुस्तकालय का चित्र मेरे सामने है। कावा गोत्री की अंग्रेजी किताब तिब्बत के बारे में मैंने पढ़ी थी और उससे बड़ी प्रेरणा मिली थी।

यात्री को यात्राविषयक साहित्य अच्छा लगना स्वाभाविक बात थी।

१६२७ के अन्त में जब मैं सिंहल पहुँचा तो वहाँ राहुलजी के साथ कोलम्बो म्यूजियम में जाना सीख गया। कैलानिया से कोलम्बो म्यूजियम कोई ग्यारह मील होगा। रविवार को राहुलजी को कालेज में पढ़ाने के कार्य से अवकाश रहता तो उस दिन अवश्य जाता। प्रातःकाल एक बार दूध और डबल रोटी खाकर राहुलजी जो निकले तो दूसरे दिन तक क्षुधाग्नि की ओर से उदासीन रहकर वे अपनी ज्ञानाग्नि में ही आहुतियाँ डालने में लगे रहते। लौटते समय पुस्तकालय की कुछ पुस्तकें साथ आतीं अथवा आगे पीछे मँगवा ली जातीं।

जिस प्रकार हिन्दू-मन्दिरों में आर्येतर का प्रवेश निषिद्ध है उसी प्रकार पुस्तकालय में जो सच्चा विद्यार्थी नहीं है उसे जाना ही नहीं चाहिये। वह न स्वयं पढ़ता है न दूसरों को पढ़ने देता है। सच्चा विद्यार्थी पुस्तकालय में कभी खाली हाथ नहीं जाता। उसकी नोट बुक और पेंसिल उसके साथ रहती है। पुस्तकालय में बैठकर जहाँ वह पुरानी जिज्ञासाओं को शान्त करता है वहाँ साथ-साथ नई जिज्ञासाएँ भी जन्म-धारण करती चलती हैं। उसका काम है उन्हें नोट-बुक में कैद कर ले। जिज्ञासा मरी तो आदमी को मरा ही समझो, उसकी दाहक्रिया भले ही कभी हो।

१६३२-३३ में मुझे लन्दन की इण्डिया लायब्रेरी में बैठकर पढ़ने और ब्रिटिश म्यूजियम देखने का मौका मिला है। पीतवस्त्रधारी होने के कारण कभी-कभी अंग्रेज छोकड़े ऐसे ही पीछे लग लेते थे जैसे अपने यहाँ के गाँवों

के लड़के किसी भी पिलपिली साहब के पीछे। इससे मैं वहाँ पुस्तकालय में कम आता-जाता था। घर पर ही पुस्तकें मँगवाकर पढ़ लेता था।

संसार-भर के पुस्तकालयों में शायद शिरोमणि-पुस्तकालय ब्रिटिश म्यूजियम ही है। अभी इस लड़ाई में उसके एक हिस्से पर भी जर्मनी के बम गिर पड़े थे। कुछ हिस्सा नष्ट भी हो गया। अंग्रेजों ने फिर उसे ठीक-ठाक कर लिया है। ब्रिटिश म्यूजियम में बैठकर पढ़ने के कमरे में ५० लाख पुस्तकें रक्खी हैं, और उन आलमारियों को जिनमें ये पुस्तकें रक्खी हैं यदि एक दूसरे के बाद एक कतार में खड़ा किया जाय तो ५५ मील लम्बी कतार बनेगी। इस वाचनालय के टिकट निःशुल्क मिलते हैं और सच्चे विद्यार्थी को थोड़ा-सा प्रयत्न करने पर मिल जाते हैं।

लगभग सौ वर्ष हुए एक कापीराइट कानून बना था, जिसके अनुसार हर किसी को हर प्रकाशित पुस्तक की एक प्रति ब्रिटिश म्युजियम को देना अनिवार्य हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि काम की और निकम्मी, सभी तरह की पुस्तकों के पर्वत के पर्वत इकट्ठे हो गए। इसी लड़ाई में तोप-बन्दूक के कारखानों के लिए जब बहुत से रद्दी कागज की जरूरत पड़ी तो इसमें से बहुत-सा साहित्य वहाँ भेज दिया गया। शायद वह साहित्य इसी योग्य भी था।

लगभग सभी प्रकाशक अपनी एक-एक प्रति ब्रिटिश म्युजियम में भेजते ही हैं। तो भी बहुत-सी पुस्तकें खरीदी जाती हैं। संसार का शायद ही कोई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ऐसा हो जो ब्रिटिश म्युजियम में न मिले।

अपने यहाँ एक ऐसा शानदार पुस्तकालय कब बनेगा!

किन्तु जिस देश में बच्चों को पढ़ाया जाता हो—"पोथी पढ़-पढ जग मुआ, हुआ न पण्डित कोय। ढाई अच्छर प्रेम के पढ़े तो पण्डित होय।" वहाँ पुस्तकालय की प्रगति कैसे होगी।

सुन्दर सुव्यवस्थित पुस्तकालयों के होने से ही अध्ययन करनेवालों की संख्या बढ़ेगी, किन्तु अध्ययन की सच्ची रुचि भी अच्छे पुस्तकालयों के निर्माण में सहायक होगी।

—:o:—

वाचनालय

श्री योगेन्द्र मिश्र, एम०ए०, साहित्यरत्न

शाम को जब आप किसी पुस्तकालय में जाते हैं तो आप कुछ लोगों को अलग टेबुल को घेरे अखबार या किताबें पढ़ते हुए पाते हैं। पुस्तकालय का वही हिस्सा वाचनालय या 'रीडिंग-रूम' कहलाता है। यहाँ लोग पुस्तकालयाध्यक्ष से पुस्तकें लेकर भी पढ़ सकते हैं; अखबार तो पढ़े जाने के लिए फैला कर रक्खे ही जाते हैं। इस सम्बन्ध में विभिन्न पुस्तकालयों के अपने-अपने नियम हैं। फिर भी प्राय: हर पुस्तकालय अखबार जरूर रखता है, जिसे वाचनालय में उसके सदस्य अथवा गैर-सदस्य पढ़ते हैं।

पुस्तकालय की उपयोगिता निर्विवाद है, मगर वाचनालय की उपयोगिता दैनिक जीवन के खयाल से और भी अधिक है। गाँव में तो यह वहाँ के बौद्धिक जीवन का केन्द्र है। आज की दुनिया पहले से कहीं ज्यादा घटनापूर्ण है, आज का देहात पहले की अपेक्षा संसार से अधिक सम्बन्ध रखता है, आज युरोप और अमेरिका हमारे बिल्कुल समीप हो गए हैं; विज्ञान ने दूरी को एकदम नष्ट-सा कर दिया है। ऐसी हालत में अखबार और रेडियो गाँववालों को दुनिया के कामों से परिचित कराते हैं, उनका ज्ञान बढ़ाते हैं और उन्हें जीने का ढंग बताते हैं। इसलिए सिर्फ शहर में ही नहीं, बल्कि गाँव में भी हर पुस्तकालय के साथ-साथ वाचनालय का होना निहायत जरूरी है।

वाचनालय का स्वतंत्र महत्त्व

यों तो वाचनालय में लोग पुस्तकें भी लेकर पढ़ते हैं या पढ़ सकते हैं, मगर उससे प्रधानतया बोध अखबारों के पढ़े जाने का ही होता है। इस दृष्टि से विचार करने पर मालूम होगा कि वाचनालय की ओर एक खास वर्ग के लोग ज्यादा आकृष्ट होते हैं, जो पुस्तकालय में अखबारों के पढ़े जाने की व्यवस्था न होने पर वहाँ नहीं जाते। इस वर्ग के लोग समाचार में ज्यादा दिलचस्पी रखते हैं और समाचार-पत्र पढ़ने के लिए ही पुस्तकालय में जाते हैं। पुस्तकालय-शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् श्री जेम्स डफ ब्राउन का विचार है कि अखबार पढ़नेवालों की श्रेणी ही साधारणतया अलग है जो शायद ही कभी किसी दूसरी तरह का साहित्य पढ़ती है। इस श्रेणी के लोगों को वाचनालय से ज्यादा फायदा होता है। वहाँ कई तरह के अखबार आते हैं और सब तरह की विचार-धाराएं एक ही स्थान पर उपलब्ध हो जाती हैं। इस प्रकार यहाँ आसानी से तुलनात्मक अध्ययन का मौका मिलता है जिसकी बड़ी जरूरत है।

पत्र-पत्रिकाएँ

अखबार वाचनालय के विशिष्ट अंग हैं और वाचनालय पुस्तकालय का प्रमुख और लोकप्रिय भाग है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि जिस पुस्तकालय की ज्यादा तरक्की होगी, उसमें पत्र-पत्रिकाएँ भी पहले से ज्यादा आने लगेंगी। वाचनालयों में अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं के खरीदे जाने में क्या वृद्धि हुई है, इसका पता निम्नलिखित आँकड़ों से चलेगा:—

पुस्तकालय का नाम	साल	पत्र-पत्रिकाओं की संख्या	साल	पत्र-पत्रिकाओं की संख्या	वृद्धि प्रतिशत	कितने साल में
मद्रास	१६०८	१६०	१६३१	६१३	५७१%	२३
ओवा	१६००	२१३	१६२५	११७६	५५२%	२५
मिशिगन	१६००	७७५	१६२५	३३६१	४३४%	२५
इलिनायस	१६००	४१४	१६२४	६६४३	२४०१%	२४
मिनसोटा	१६०६	३२१	१६२५	१७१५	५३४%	१६
ओरेगन	१६०६	१५८	१६२५	७७८	४६२%	१६
कालीफोर्निया	१६१३	७०००	१६२५	१११७६	१६०%	१२
येल	१६२०	८८६०	१६२५	११५४८	१३०%	५

इनमें मद्रास को छोड़कर बाकी पुस्तकालय अमेरिका के हैं। अमेरिकन पुस्तकालयों के आँकड़े जार्ज अलन की 'कॉलेज ऐण्ड युनिवर्सिटी लाइब्रेरी प्रॉब्लेम्स' नामक पुस्तक से लिए गये हैं।

वाचनालय की कोठरी बड़ी होनी चाहिये और वह इस ढंग की हो कि अवसर आने पर बिना किसी कठिनाई या रुकावट के उसे बढ़ाया जा सके।

हर अच्छे वाचनालय के साथ यह देखा गया है कि उसे अपना वाचनालय-भवन बढ़ाना पड़ा है। उदाहरणार्थ एक पुस्तकालय की प्रबन्ध-समिति ने १६११ ई० में कहा कि ६० फीट लम्बे और २४ फीट चौड़े मकान से उसके वाचनालय (रीडिंग रूम) का काम चल जायगा। लेकिन १६२६ ई० तक आते-आते उसे कहना पड़ा कि वाचनालय के लिए उसे २२० फीट × ३५ फीट जगह की जरूरत है। अगर पाठकों की संख्या-वृद्धि इसी तरह होती रही, तो उसे भविष्य में और भी ज्यादा जगह की जरूरत होगी।

प्रबन्ध

वाचनालय के सुप्रबन्ध में अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं के बुद्धिमानी के साथ रखने का बड़ा स्थान है। एक कोटि के पत्र एक ओर रहें, यह अच्छा है। मगर इसमें एक सावधानी की जरूरत है। जिन पत्रों को ज्यादा लोग चाहते हैं उन्हें थोड़ी-थोड़ी दूरी पर रखना चाहिये और बीच-बीच में कम लोकप्रिय पत्रों को रखना चाहिये। इससे लाभ यह होता है कि एक ही जगह ज्यादा भीड़ नहीं हो पाती। वाचनालय की टेबुल कहीं भी खाली नहीं रहनी चाहिये—सब जगह कोई न कोई अखबार रक्खा रहना चाहिये।

पत्रों की सुरक्षा के खयाल से यह जरूरी है कि वे बँधे रहें अथवा एक खास तरह की टेबुल पर फैलाए हुए रहें। यह टेबुल कुछ इस तरह झुकी रहती है कि इसपर अखबार फैलाने में किसी तरह की दिक्कत नहीं होती।

वाचनालय के लिए खास तरह की टेबुल का प्रबन्ध न भी हो सके, मगर एक बड़ी साधारण टेबुल का होना तो बहुत ही जरूरी है। कुर्सी की अपेक्षा बेंच डाल देने से अधिक लोगों के बैठाने का प्रबन्ध हो सकता है।

पत्र-पत्रिकाओं का मुखपृष्ठ (टाइटिल पेज) खुला रहना चाहिये जिससे अलग से ही पाठक जान जायँ और अपनी पसन्द की सामग्री आसानी से चुन सकें।

केवल हाल की (करेण्ट) चीजें ही टेबुल पर रहनी चाहिये और नया अंक आने के बाद पुराना अंक हटवा दिया जाना चाहिए। दैनिक पत्रों में उसी दिन के पत्र रहने चाहिये। इसी तरह साप्ताहिक और मासिक पत्रों के चालू अङ्क ही टेबुल पर रहने चाहिये और अगला अङ्क आ जाने पर उस पर पुस्तकालय की मुहर दे, पाने की तारीख चढ़ा, रजिस्टर में प्राप्ति दिखला तुरत वाचनालय में दे देना चाहिये। चालू चीजों को पुस्तकालय से बाहर नहीं जाने देना चाहिये, नहीं तो पाठकों को बड़ी असुविधा और निराशा होती है।

प्रसन्नता आवश्यक

किसी संस्था की सफलता यही है कि वहाँ से लोग प्रसन्न होकर लौटें। मान लीजिये कि आपको 'विशाल भारत' या 'मॉडर्न रिव्यू' देखना है और आप दूर से पाने की आशा में किसी वाचनालय में पहुँचते हैं। उस समय अगर आपको यह उत्तर मिले कि उक्त पत्र प्रधान मन्त्री या सभापति महोदय या अन्य किसी प्रभावशाली व्यक्ति के पास है तो आपको बहुत बुरा लगेगा और उस वाचनालय के बारे में आपका खयाल खराब हो जायगा।

मँगाये जानेवाले सभी पत्रों के चालू अंकों का वाचनालय में रहना कितना जरूरी है यह हमलोग अच्छी तरह नहीं समझ सके हैं। संख्या गिनाने के लिए और टेबुल पर जगह घेरने के लिए दो-दो तीन-तीन साल के पुराने अङ्क अथवा साप्ताहिक के दीपावली तथा अन्य विशेषांक रख दिए जाते हैं और अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ ली जाती है। यह बुरा है और पाठकों के मन में खीझ पैदा करता है। उनका समय तो नष्ट होता ही है। पत्र-पत्रिकाओं की संख्या कम ही हो, कोई हर्ज नहीं, मगर सबके चालू अङ्क व्यवस्थापूर्वक रक्खे रहने चाहिये। यदि किसी पाठक को पुराने अङ्क की

दरकार होगी, तो वह पुस्तकालयाध्यक्ष से अथवा वाचनालय के इनचार्ज से वह अङ्क माँग सकता है।

वाचनालय में अपनी कोई चीज (पत्र-पत्रिका या पुस्तक) लेकर जाना ठीक नहीं। यह पुस्तकालय-संस्था और पाठक दोनों के हक में बुरा है। पुस्तकालय के हक में यह इसलिए बुरा है कि पाठक की चीजों के साथ पुस्तकालय की चीजें भी गलती से या जान-बूझकर ले जाई जा सकती हैं। पाठक के हक में यह कितना बुरा है, यह मुझे अनुभव ने सिखलाया है। 'हिमालय' की एक प्रति के साथ शाम को पटना के एक पुस्तकालय में गया और उसे अपनी बगल में रख दूसरी चीजें पढ़ने लगा। कोई ऐसी चीज मिल गई जिसके पढ़ने में मन लग गया और 'हिमालय' से ध्यान हट गया। पढ़ना खत्म करने के बाद देखता हूँ कि 'हिमालय' अपनी जगह पर नहीं है। पिघल कर गंगा के रास्ते चल चुका है। खैरियत यही हुई कि वह गंगासागर तक नहीं पहुँचा था! वाचनालय की टेबुल पर जब पता न चला, तब पुस्तकालयाध्यक्ष महोदय से मैंने अपनी दिक्कत बतलाई। अच्छे आदमी थे। मेरे लिए उन्होंने कष्ट उठाया और अन्त में मुझे 'हिमालय' दिया। पता चला कि एक सज्जन बगल की कोठरी में उसे पढ़ रहे थे!

वाचनालय के लिए अखबार चुनने में इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि करीब करीब सब विचारों के अखबार आएँ। सभी स्थानीय पत्र लिए जाने चाहिये और उनकी फाइल भी तैयार करनी चाहिये। प्रान्त और देश के प्रसिद्ध पत्रों का मँगाया जाना बहुत जरूरी है। मासिक पत्रों का भी आना आवश्यक है। कोशिश रहनी चाहिये कि सभी महत्त्वपूर्ण मासिक पत्र मँगाए जायँ। प्रान्तीय सरकारी गजट की भी बड़ी जरूरत लोगों को रहती है। इसलिए ऐसी उपयोगी चीजें अवश्य आनी चाहिये। व्यक्ति जो काम अकेला नहीं कर सकता, उसे संस्था आसानी से कर सकती है।

मासिक पत्र केवल साहित्यिक ही न हों, बल्कि कई विषयों के हों। इसी प्रकार महिलोपयोगी और बालकोपयोगी पत्रों का मँगाया जाना भी जरूरी है। हर हालत में सर्वोत्कृष्ट चीजें ही आनी चाहिये।

वाचनालय में ऐसा सम्भव है कि कोई पत्र अधिक लोग देखना

चाहें और एक ही महाशय उसे देर तक पढ़ते रहें और इस प्रकार दूसरे को नाहक वंचित करें। इसका उपाय यह है कि निम्नलिखित आशय की एक सूचना कई जगह लिखवा कर रखवा दी जाय—

पाठकों से प्रथंना की जाती है कि दूसरे पाठकों के द्वारा माँगे जाने पर वे दस मिनट के भीतर पत्र का पढ़ना बन्द कर उसे छोड़ दें।

दस मिनट के बदले इससे कम या ज्यादा समय भी रख सकते हैं।

वाचनालय में अनुशासन बनाए रखने के लिए 'कृपया चुपचाप पढ़ें" की सूचना टेबुल पर रखवा दे सकते हैं। मगर सबसे अच्छा तरीका है व्यक्तिगत निगरानी रखना, क्योंकि बहुत-से लोग नोटिस देखते तो हैं मगर पढ़ते नहीं।

उपस्थिति और परामर्श

एक हाजिरी-बही वाचनालय के दरवाजे पर रहनी चाहिये जिसकी बगल में यह सूचना लिखी रहे—'कृपया दस्तखत करके भीतर जाइये'। इस हाजिरी बही या रजिस्टर में तारीख, नाम, पता, क्या पढ़ा आदि बातें रहनी चाहिये। हो सके तो एक सलाह-बही अथवा परामर्श-पुस्तक भी रखवा दे सकते हैं। इसमें लोग खास-खास पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के नाम लिखेंगे जो उन्हें पुस्तकालय में उपलब्ध नहीं हुईं।

पत्र-पत्रिकाओं की जाँच

अखबारों और विशेषकर मासिक पत्र-पत्रिकाओं की जाँच (चेकिंग) बराबर होनी चाहिये। जो चीजें पाई जायँ उनकी सूची (लिस्ट) बनाई जाय और उसपर कारंवाई हो। तभी काम सुचारु रूप से चल सकेगा। अगर कोई पत्र ठीक समय पर न आया तो उसके लिए एक या दो दिन ठहर कर तुरत पत्र-व्यवहार शुरू कर देना चाहिये।

वाचनालय में प्रचलित एक दोष यह है कि लोग अखबार को फाड़ लेते हैं, खास कर विज्ञापन तो जरूर ही उड़ा लिए जाते हैं। यह आदत बुरी है। वाचनालय की ओर से एक सूचना इस आशय की टँगी रहनी

चाहिये कि जो लोग विज्ञापन की नकल करना चाहते हैं, उन्हें दर्खास्त देने पर पेन्सिल और कागज मिल जायँगे।

जगह होने पर महिला-विभाग भी खोला जा सकता है।

अखबारों के पढ़ लिए जाने पर उन्हें जमा करना चाहिये और उनकी फाइलें बनवानी चाहिये। मासिक पत्रों की फाइल बड़ी उपयोगी होती है—उसमें मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन की काफी सामग्री रहती है। दैनिक पत्रों की फाइल साधारणतया नहीं रक्खी जाती। यह ठीक नहीं। कभी-कभी साधारण खबरों के लिए भी आदमी हैरान हो जाता है। फाइल रहने पर आसानी से किसी पुरानी घटना की जाँच कर ले सकते हैं।

कटिंग तथा अन्य व्यवस्थाएँ

अगर सम्भव हो तो वाचनालय की ओर से 'कटिंग' भी रक्खी जा सकती है। खासकर स्थानीय बातों पर जो लेख हों या विशेष महत्त्वपूर्ण विषयों पर चर्चा हो उसे रखना बहुत अच्छा होता है।

पत्र-पत्रिका, पैम्फलेट (पुस्तिका या ट्रैक्ट) और कटिंग के अतिरिक्त चित्र, स्लाइड और नक्शों का भी वाचनालय में रहना जरूरी है जिससे वाचनालय केवल अखबारों का संग्रह-मात्र न होकर ज्ञान-पिपासा शान्त करने का एक अच्छा साधन हो।

वाचनालय के लिए उपयुक्त स्थान होना चाहिये। उसमें वायु-संचार और रोशनी का पूरा प्रबन्ध होना चाहिये। शाम होते-होते रोशनी जल जानी चाहिये। प्रायः देखा जाता है कि जहाँ बिजली की रोशनी नहीं है और पेट्रोमैक्स से काम चलता है, वहाँ उसे जलाने में बहुत देर लगा देते हैं। तब तक पाठकों को झख मार कर बैठे रहना पड़ता है। यह अशोभन है। वाचनालय की चीजों की सफाई का इन्तजाम भी पूरा रहना चाहिये।

शहर और गाँव के वाचनालय में कुछ अन्तर पड़ जाता है। शहर में ज्यादा पैसे हैं, अतः उसके वाचनालय में ज्यादा चीजें रहती हैं। गाँव के वाचनालय में कम चीजें रहती हैं। शहर के वाचनालय को न केवल अखबार मँगाना चाहिये, बल्कि उससे कटिंग रखकर और कई प्रकार से व्याख्यानों का प्रबन्ध कर अपने को और भी उपयोगी बनाना चाहिये।

अन्तर्राष्ट्रीय समस्या जैसे विषय पर पत्र-पत्रिकाएँ मँगाना शहर के वाचनालय से ही सम्भव है ; गाँव के वाचनालय तो भारत के पत्र भी ठीक से नहीं मँगा पाते।

गाँवों के वाचनालय अगर आपस में राय कर पत्र-पत्रिकाएँ मँगाया करें और आपस में अदल-बदल किया करें तो कम खर्च में ही वे ज्यादा काम निकाल सकते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक वाचनालय अगर एक-एक विषय चुन कर उस पर सारा साहित्य मँगाये तो वह कालान्तर में अनुसन्धान का स्थान हो जायगा। मगर दिक्कत यह है कि देहात में इन बातों को उतना महत्त्व नहीं दिया जाता ; दूसरे, देहात के वाचनालयों में उतना मेल-जोल भी अभी विकसित नहीं हो पाया है और वे त्याग के लिए तैयार भी नहीं रहते। सभी वाचनालय एक ही किस्म का पत्र मँगाना चाहते हैं—इस कारण वहाँ उन्नति की गुंजायश कम दीख पड़ती है। फिर भी कोशिश बन्द नहीं होनी चाहिये।

इस बदले हुए जमाने में हर गाँव में रेडियो का होना बहुत जरूरी है। कम से कम हर ग्राम-पुस्तकालय के वाचनालय में यह रहना ही चाहिये। रेडियो केवल समाचार जानने का ही नहीं, बल्कि मनोरंजन का भी एक अच्छा साधन है। इसलिए यह शीघ्र गाँव का बौद्धिक केन्द्र हो जायगा।

स्वावलम्बन

हर बात में सरकार का मुँह जोहना छोड़कर चन्दे से रेडियो खरीदने की कोशिश करनी चाहिये और आस-पास के धनी-मानी सज्जनों का सहयोग प्राप्त करना चाहिये। यदि सम्भव हो तो रेडियो स्कूल में रह सकता है। महत्त्वपूर्ण प्रोग्राम (कार्यक्रम) पर गाँव वालों को खबर देकर रेडियो के समीप बुलवाना चाहिये और उसे एक जीती-जागती संस्था बना देना चाहिये। इस जीवन का उद्देश्य केवल उदरपूर्ति ही नहीं है, बल्कि हममें अपने जीवन के प्रति अनुराग भी होना चाहिये। ज्यों-ज्यों रेडियो का प्रचार बढ़ता जायगा, त्यों-त्यों हमारी कूपमण्डूकता मिटती जायगी और यह कूपमण्डूकता दूर करना ही वाचनालय का सबसे बड़ा उद्देश्य है।

———:o:———

गाँव में पुस्तकालय कैसे चलाया जाय?

श्री जगन्नाथ प्रसाद, विशारद
(बिहार-प्रान्तीय पुस्तकालय-संघ के सहकारी मन्त्री)

हम देखते हैं, आजकल कालेज और स्कूल खोलने में कुछ लोग बेतरह लगे हुए हैं। इसी प्रकार पुस्तकालय की ओर भी हमारे कुछ साथियों का ध्यान जा रहा है। पुस्ताकलय-आन्दोलन प्रगति की ओर तेजी से बढ़ रहा है। लोगों के दिमाग में यह बात अच्छी तरह आ गई है कि एक सुन्दर तथा सुव्यवस्थित पुस्तकालय से कई स्कूल और कालेजों के बराबर काम लिया जा सकता है। स्कूल और कालेजों में निश्चित तरह की शिक्षा निश्चित तरह के तबके के लोगों को निश्चित अवधि के लिए दी जाती है। परन्तु किसी एक पुस्तकालय से, पुस्तकालय की शक्ति के अनुसार जो भी चाहें—सभी तबके के लोग मनचाही शिक्षा आसानी से पढ़कर प्राप्त कर सकते हैं।

खुशी की बात है कि आजकल बहुत लोगों का ध्यान पुस्तकालय-आन्दोलन को जीता-जागता बनाने की ओर तेजी से बढ़ रहा है। हमारी नयी सरकार भी इसे उन्नत करने को बहुत कुछ सोच रही है। बिहार-सरकार चाहती है कि हर पाँच गाँवों के अन्दर एक पुस्तकालय कायम किया जाय, खुले हुए सुव्यवस्थित पुस्तकालयों को आर्थिक सहायता दी जाय। केन्द्र में केन्द्रीय पुस्तकालय चलाया जाय, आदि।

ऐसे सुअवसर पर पुस्तकालय खोलने और चलानेवालों को यह उचित है कि वे प्रारम्भ से ही अपने-अपने पुस्तकालयों को विधिवत् चलाएँ। हमें बहुत पुस्तकालयों को देखने का मौका मिला है। पर सभी पुस्तकालय एक दूसरे से भिन्न तरह से चलाए जाते हैं। पुस्तकालयों का रेकर्ड (कागजात, रजिस्टर) अभी भिन्न-भिन्न तरह से रक्खा जाता है। यह उतना अच्छा नहीं है जितना सभी पुस्तकालयों के कागजात को एक तरह से रखना होता। यहाँ मैं इस सम्बन्ध में कुछ अपनी राय अपने अनुभवों के आधार पर देना

चाहता हूँ। आशा है, इससे गाँव के पुस्तकालय-संचालकों को कुछ लाभ होगा।

भवन—देहात में पुस्तकालय के लिए कम से कम एक कोठरी तथा एक बड़ा कमरा होना जरूरी है। कोठरी में पुस्तकें रहेंगी, बड़े कमरे में लोग बैठकर पढ़ेंगे। सामने एक बरामदा हो तो अति उत्तम है। भवन के सामने थोड़ी-सी जमीन हो जिसमें कुछ फूलपत्तियाँ लगाई जा सकें। गर्मी के दिनों में लोग बाहर मैदान में बैठकर पढ़ भी सकेंगे। पुस्तकालय का मकान जहाँ तक हो सके, छतदार होना जरूरी है जिसमें आग का भय न रहे। दीवार में काफी खिड़कियाँ होनी चाहिये, जिसमें हवा पर्याप्तरूप से भीतर आ-जा सके।

फरनीचर—पुस्तकों को रखने के लिए दीवार में आलमारी नहीं होनी चाहिये। दीवार की आलमारियों में सर्दी बहुत ज्यादा पैदा होती है, पुस्तकें बहुत जल्द खराब हो जाने का भय बना रहेगा। इसलिए पुस्तक के अनुसार काठ की आलमारी तथा आलमारी में पल्लों का होना जरूरी है—वह शीशेदार हो तो अत्यन्त उत्तम, नहीं तो काठ के पल्लों से भी काम चल जा सकता है। पाठकों के लिए टेबुल और बेंच के अभाव में जमीन पर फर्श बिछाकर पढ़ने का काम लिया जा सकता है। पुस्तकाध्यक्ष के लिए भी टेबुल-कुर्सी के अभाव में एक या दो चौकियों से काम चलाया जा सकता है।

जरूरी कागजात—पुस्तकालय को विधिवत् चलाने के लिए कम से कम १३ रजिस्टरों का होना प्रारम्भ से ही बहुत जरूरी है। आगे चलकर पुस्तकालय का भण्डार ज्यों-ज्यों बढ़ता जायगा, जरूरत के लायक रजिस्टर भी बढ़ाये जा सकते हैं।

१—पुस्तक-सूची—(१) प्राप्त पुस्तकों का नामसहित पुस्तकसूची।
(२) बृहद् पुस्तकसूची।
(३) विषयानुसार पुस्तकसूची।
(४) अक्षरों के अनुसार पुस्तकसूची।

२—सदस्यों की सूची।

३ बैठक की कार्यवाही-बही।

४ नियमावली बही।

५ आय-व्यय बही।

६ आय-व्यय की खाताबही।

७ सूचना-बही।

८ दैनिक हस्ताक्षर-बही।

९ पुस्तक-प्रदान बही।

१० पत्र-व्यवहार बही।

११ शिकायत-बही।

१२ निरीक्षण-बही।

१३ चन्दा-बही—(१) मासिक (२) वार्षिक निमानुसार तथा आवश्यकतानुसार

उपर्युक्त रजिस्टरों में से कुछ रजिस्टरों का शीर्षक किस प्रकार का होना चाहिये, उसे भी यहाँ बता रहा हूँ।

१ पुस्तकसूची—रजिस्टर चार प्रकार के जरूरी हैं, जिनमें (१) प्राप्त पुस्तकों के नाम सहित पुस्तकों की सूची में नीचे दिए शीर्षक होने चाहिये—

पुस्तक-संख्या	प्राप्ति-क्रम संख्या	पुस्तक का नाम	प्राप्ति-ब्योरा तथा दाता का नाम और पता	सारांश

(२) बृहत् पुस्तकसूची—यह बही फुलिसकैप साइज की होनी चाहिये। इसमें पड़ी लकीरें खींचकर पुस्तकों का पूरा विवरण निम्न प्रकार लिखना चाहिये—

पुस्तक-संख्या	पुस्तक का नाम	लेखक या अनुवादक का नाम	भाषा	विषय	प्रकाशक	मूल्य	सारांश

(३) विषय-अनुसार पुस्तकसूची—इसके लिए कुछ मोटी बही चाहिये, जिसमें हर विषय का खाता बनाकर कुछ-कुछ सादा अंश भी जरूरत लायक

हमेशा रहना चाहिये। प्रारम्भ से ही पुस्तकों का बटवारा नीचे दिये कम से कम २० विषयों के अनुसार करके रखना बहुत जरूरी है। ये विषय काम चलने के लिए चुने गए हैं। इनसे भी अधिक विषयों में पुस्तकों को विभक्त किया जा सकता है।

१	साहित्य	११	राजनीति
२	काव्यसंगीत और शायरी	१२	व्यापार, ग्रामोद्योग, शिल्प
३	नाटक और प्रहसन	१३	स्वास्थ्य तथा चिकित्सा
४	उपन्यास और कहानी	१४	भ्रमण तथा भाषण
५	धार्मिक	१५	विज्ञान
६	इतिहास और जीवनी	१६	महिलोपयोगी
७	भूगोल	१७	बालोपयोगी
८	कृषिशास्त्र	१८	पत्र, पत्रिकादि
९	अर्थशास्त्र	१९	नियम (कानून)
१०	कोष तथा व्याकरण	२०	विविध

विषय का नाम.......................... ...."

क्रम-संख्या	पुस्तक-संख्या	पुस्तक का नाम	लेखक	भाषा	मूल्य

(४) वर्णानुक्रम सूची—इसके लिए हिन्दी के जो ४९ अक्षर हैं उनमें से भी नीचे दिये ही अक्षरों के अनुसार खाता बनाकर एक रजिस्टर में विषयानुसार सूची के समान रखना चाहिये—(१) अ, आ ओ, औ, अं, अः (२) इ, ई (३) उ, ऊ (४) क, (५) ख, (६) ग, (७) घ, (८) च, (९) छ, (१०) ज, (११) झ, (१२) ट, (१३) ठ, (१४) ड, (१५) ढ, (१६) ण, (१७) त, (१८) थ, (१९) द, (२०) ध, (२१) न, (२२) प, (२३) फ, (२४) ब, (२५) भ, (२६) म, (२७) य, (२८) र, (२९) ल, (३०) व, (३१) श, ष, स, (३२) ह।

अक्षर का नाम.....................

क्रम-संख्या	पुस्तक-संख्या	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	भाषा	विषय	मूल्य

२ सदस्यसूची—इस बही के प्रारम्भ में सदस्य होने का जो भी नियम हो उसे लिखकर नीचे सदस्य बननेवालों से स्वीकृति का स्वल्प हस्ताक्षर करा लेने से काम चल जायगा। सदस्य-पत्र (मेम्बरी फार्म) पर हस्ताक्षर करा कर उसे क्रमानुसार सँभालकर फाइल में रखने की आवश्यकता नहीं होगी, जैसे—पुस्तकालय के सदस्य होने का नियम—

... ...

प्रतिज्ञा—मैं उपर्युक्त नियमों को स्वीकार करता हूँ। नीचे अपने हस्ताक्षर के अनुसार पुस्तकालय को चन्दा नियमानुसार बराबर दिया करूँगा।

क्रम-संख्या	सदस्य बनने वालों का नाम और पता	चन्दा देने की स्वीकृति		हस्ताक्षर	कब से चन्दा देंगे	सारांश
		मासिक	वार्षिक			

६ आय-व्यय का खाताबही—साधारणतः पुस्तकालय के आमद-खर्च के लिए नीचे दिये खाते होने चाहिये, यों तो आवश्यकतानुसार इन दोनों मदों में खाता घटता-बढ़ता भी रहेगा।

आय		व्यय	
सदस्य शुल्क में आमद	...	वेतन	...
वार्षिक से	...	किताब-खरीद	...
मासिक से	....	समाचारपत्र	...
सरकारी सहायता से	...	जिल्द-मरम्मत	...
चन्दे से	...	भवन-मरम्मत या किराया	...
क्षतिपूर्ति से	...	स्टेशनरी	...
	...	पत्रव्यवहार	...

आय		व्यय	
	...	फुलवारी	...
	...	फरनीचर तथा सामान खरीद	...
	....	प्रचार	...
	...	छपाई	...
	...	रोशनी	...
	...	अन्य आवश्यकता तथा फुटकर	...
योग	...	योग	...

६ पुस्तक-प्रदान बही का विवरण—

क्रम-संख्य	पुस्तक का नाम	पुस्तक संख्या	ले जाने वाले पाठक का नाम और पता	पुस्तक देने की तारीख	पुस्तक लौटाने की तारीख	पाठक का हस्ताक्षर	पुस्तक लौटाने पर पाने की तारीख	लौटाने पाने वाले का हस्ताक्षर	कैफियत

१२ सदस्यों से चन्दा-प्राप्ति ब्योरा बही—

क्रम-संख्या	सदस्य का नाम	बकाया चन्दा	हाल चन्दा	योग	वसूल	वसूली की रसीद संख्या	वसूल करने वाले का नाम	बाकी	कैफियत

इन कागजात के अलावा पुस्तकालय में मासिक तथा वार्षिक रिपोर्ट हमेशा तैयार कर यह बराबर देखते रहना चाहिये कि पुस्तकालय किस ओर जा रहा है तथा पुस्तकालय के पाठक किस सूची के अनुसार पुस्तक से लाभ उठा रहे हैं। ऐसा जान लेने पर जिसमें जो भी सुधार करना होगा, आसानी से किया जा सकता है।

पुस्तकों का अध्ययन

प्रोफेसर राजाराम शास्त्री (काशी-विद्यापीठ)

इस शीर्षक के नीचे मैं इस बात पर विचार करना चाहता हूँ कि आज के युग में भारतीय पाठक का अध्ययन-सम्बन्धी कर्तव्य और अधिकार क्या हैं। अधिकार के सम्बन्ध में मुझे इतना ही कहना है कि प्रत्येक भारतीय को जो शिक्षित हो और शिक्षित होना भी उनका अधिकार ही है—ऐसी कुछ पुस्तकें तो अवश्य ही प्राप्त होनी चाहिये जो अच्छे कागज पर, अच्छे टाइप में, सफाई और सुरुचि के साथ छपी हो और मजबूत जिल्दों में बँधी हो। प्रत्येक गरीब भारतीय को प्राप्य होने का अर्थ यह तो अवश्य है कि पुस्तकों का मूल्य यथासम्भव कम हो, किन्तु इसका यह भी अर्थ नहीं कि मूल्य कम करने के लिए उसका टाइप इतना छोटा कर दिया जाय और कागज ऐसा कर दिया जाय जो पाठक की आँखों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो। गरीब से गरीब घर में एक छोटा-सा पुस्तकालय तो होना ही चाहिये जिससे उसके जीवन की थोड़ी-सी फुर्सत की घड़ियों का सदुपयोग हो सके और घर के बच्चे अनायास ही अपने मूल सांस्कृतिक उत्तराधिकार से परिचित हो जायँ। इस गृह-पुस्तकालय के अतिरिक्त सार्वजनिक पुस्तकालयों का प्रयोग तो होना ही चाहिये। किन्तु गृह-पुस्तकालय का होना अत्यावश्यक है। सार्वजनिक पुस्तकालयों की पुस्तकों का उपयोग निश्चित समय के भीतर ही हो सकता है। उन्हें अपनी सुविधा और आवश्यकतानुसार जब चाहें तब नहीं देखा जा सकता। और न तो उनसे बच्चों के सम्मुख अपनी सांस्कृतिक परम्परा ही भौतिक रूप में निरन्तर उपस्थित रहती है।

गृह पुस्तकालय की विद्वानों तथा विद्या-जीवियों के लिए तो और भी अधिक आवश्यकता होती है। वे जो पुस्तकें पढ़ते हैं उनपर उन्हें अनेक स्थलों पर निशान लगाने होते हैं जिससे वे उनके उपयुक्त अंशों का उपयोग भविष्य में अपनी सुविधानुसार कर सकें। यह कार्य सार्वजनिक पुस्तकों पर

नहीं हो सकता क्योंकि एक पाठक के बनाये हुए चिह्नों से पुस्तक अन्य पाठकों के लिए अपाठ्य बन जाती है। यद्यपि इस नियम के अपवाद भी होते हैं। मुझे प्रसिद्ध भारतीय दार्शनिक डाक्टर भगवानदासजी द्वारा चिह्नांकित पुस्तकों को देखने का अवसर मिला है और मैं बिना विरोध की आशंका किये यह कह सकता हूँ कि उनके चिह्नों से पुस्तक की सुपाठ्यता घटने के स्थान पर उसका मूल्य बढ़ जाता है और पाठक उन चिह्नों से उद्विग्न होने के स्थान पर उपकृत होने का अनुभव करता है। चिह्न रूलर रखकर इतने नियमित रूप से विभिन्न रंगों की पेंसिल से और इतनी सफाई के साथ लगाये जाते हैं और हाशिये के नोट इतने मार्मिक और रचनात्मक होते हैं कि न केवल पुस्तक की दुरूहता ही दूर हो जाती है वरन् उसकी त्रुटियों का भी मार्जन हो जाता है। किन्तु स्पष्ट है कि यह गुण केवल ऐसे ही पाठकों में हो सकता है जो स्वयं ऊँचे दर्जे के मनीषी हैं। ऐसे पाठकों को सार्वजनिक पुस्तकों को चिह्नांकित करने का अधिकार भी दिया जा सकता है, किन्तु यह नियम का अपवाद ही होगा। सभी पाठकों के लिए यह नियम नहीं हो सकता। एक बात और ध्यान देने की है। डाक्टर भगवानदास कभी लेट कर पुस्तक नहीं पढ़ते। वे पढ़ने को एक गम्भीर कार्य की तरह करते हैं। उसके लिए वे टेबुल पर सारे सामान के साथ बैठते हैं, तभी वे इस प्रकार सफाई से चिह्न और नोट कर सकते हैं। यह बात उन लोगों के लिए तो और भी आवश्यक हो जाती है जो अधिकांश में सार्वजनिक पुस्तकालयों से ही काम चलाते हैं। उनके लिए तो पुस्तक के साथ अपनी नोटबुक लेकर बैठना आवश्यक होता है। पुस्तक पर, तो यदि हम सार्वजनिक पुस्तकों के प्रति अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह न करें तो लेटे-लेटे भी निशान लगाये जा सकते हैं। लेकिन अलग कापी पर लिखना और फिर पढ़ना, यह तो लेटे-लेटे नहीं हो सकता। आँखों के चिकित्सक भी लेट कर पढ़ना हानिकारक बताते हैं।

पुस्तकें पढ़ने के ढंग के सम्बन्ध में यह भी प्रश्न उठता है कि अनेक पुस्तकें एक साथ पढ़ी जायँ या एक ही पुस्तक। अधिकांश पाठकों का मत है कि एक ही पुस्तक बहुत देर तक पढ़ने में जी ऊब जाता है और बुद्धि

थक जाती है जिससे पूर्ण जागरुकता के साथ अधिक नहीं पढ़ा जा सकता। अतएव एक पुस्तक को अपनी शक्ति तथा रुचि के अनुसार एक-दो घण्टा पढ़ लेने के बाद पुस्तक बदल देनी चाहिये। कोई हल्का साहित्य या अन्य विषय पढ़ना चाहिये। विषय बदल देने मात्र से मस्तिष्क की थकावट दूर हो जाती है। मस्तिष्क आरम्भ में जब कि वह सर्वथा स्वस्थ और सशक्त हो उस समय तो गम्भीर विषय का अध्ययन करना चाहिये और सोने के पहले या अन्य समय जब मानसिक थकान हो, मनोरञ्जक साहित्य पढ़ना चाहिये। किन्तु इस प्रकार पुस्तक-परिवर्तन की भी एक सीमा होती है। एक साथ अधिक से अधिक दो-तीन पुस्तकें पढ़ी जा सकती हैं। एक या दो गम्भीर पुस्तकें बारी-बारी से पढ़ी जा सकती हैं। एक से जी ऊबने पर दूसरी पढ़ी जा सकती है। फिर अन्त में कुछ मनोरञ्जक साहित्य पढ़ा जा सकता है। इससे अधिक एक साथ कई पुस्तकें प्रारम्भ कर देने से अच्छा अध्ययन नहीं होता और समय भी अधिक लगता है। क्योंकि प्रत्येक विषय का सिलसिला थोड़ी-थोड़ी देर पर टूटता रहता है जिसे फिर से कायम करने से दूसरी बार समय लगता है। और पूरी तरह से वे सब बातें मस्तिष्क में नहीं रह जातीं जो पहले उपस्थित थीं जिससे अध्ययन उतना गहरा और सर्वांगीण नहीं होता। बुद्धि का लक्षण ही यह है कि वह किसी विषय के सम्बद्ध अंगों को एक साथ ग्रहण करती है। इसी युगपद ज्ञान से कार्य-कारण के सम्बन्ध का बोध होता है। यह यौगपद्य जितना ही शुद्ध और व्यापक होगा उतना ही अध्ययन सफल होगा। इसलिए जहाँ तक एक बैठक में ही किसी विषय को पढ़ा जा सके, उतना ही अच्छा। इसमें प्रतिबन्ध यही होना चाहिए कि बुद्धि की सतर्कता बनी रहे।

मुझे युक्तप्रान्त के शिक्षामन्त्री और हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक श्री सम्पूर्णानन्दजी के सम्पर्क में रहने का अवसर मिला है। मैंने देखा है कि वे एक बार एक ही पुस्तक लेते हैं और उसे एक-दो दिन में समाप्त कर देते हैं। फिर दूसरी लेते हैं। वे बहुत तेज पढ़नेवाले हैं। सभी लोगों की गति गंभीर पुस्तकें पढ़ने में इतनी तीव्र नहीं होती। हल्के साहित्य की बात दूसरी है। मस्तिष्क को कष्ट देने का प्रश्न नहीं होता। मनोरञ्जन ही मुख्य उद्देश्य

रहता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए ऐसा साहित्य होता है या यों कहिए कि प्रत्येक व्यक्ति कुछ पुस्तकों को गम्भीरता के साथ पढ़ता है और कुछ को हल्के तरीके से। यह दूसरी बात है कि जो साहित्य किसी व्यक्ति के लिए हल्का साहित्य हो वही दूसरे के लिए गम्भीर साहित्य हो। प्रत्येक व्यक्ति के अध्ययन के दो-एक विशेष विषय होते हैं, उनके अतिरिक्त वह अन्य विषयों को साधारण ज्ञान के लिए या मनोरञ्जनार्थं ही पढ़ता है। इन विषयों की पुस्तकें पढ़ने में उसकी गति अपेक्षाकृत तीव्र होती है। यदि इन विषयों में उसका प्रवेश बिल्कुल ही न हो तो बात दूसरी है। गणित के विद्यार्थी दर्शन के उन अंशों को जिनका सम्बन्ध गणित से नहीं है, बड़े कुतूहल के साथ तेजी से पढ़ जायँगे। किन्तु दर्शन के विद्यार्थी को उसे केवल जानकारी के लिए ही नहीं पढ़ना होगा, वरन् विवेकपूर्वक उसकी समीक्षा करनी होगी। अपने विषय में भी सभी पुस्तकें अध्येता का अधिक समय नहीं लेतीं। अनेक विद्वानों के सम्बन्ध में सुना जाता है कि वे नित्य हजारों पृष्ठ पढ़ डालते हैं। वास्तव में बड़े विद्वान् अपने अधीत विषय से इतने व्यापक रूप में परिचित रहते हैं कि किताबों के पन्ने उलटते ही एक दृष्टि में उस पृष्ठ का विषय वे ग्रहण कर लेते हैं। एक आरम्भिक वाक्य में एक तर्क की उद्भावना उन्होंने देखी और उन्हें मालूम हो गया कि यह विचार उनका परिचित विचार ही है। उसमें यदि वे किसी मनोरंजक नये उदाहरण से आकृष्ट हुए तो उस स्थल पर कुछ रुके, अन्यथा पृष्ठ पर आँखें फिसलाते हुए आगे बढ़ गये। यही कारण है कि उनकी पाठगति इतनी तीव्र होती है। जिस अंश या पुस्तक में उनके लिए सचमुच कुछ अध्ययन-सामग्री होती है, वहाँ उन्हें अपनी गति मन्द करनी पड़ती है। इस दृष्टि से देखने पर प्रतीत होता है कि अपने ही विषय में पाठगति तीव्र होनी चाहिये, अन्य विषयों में मन्द। किन्तु ध्यान देने की बात यह है कि अपने विषय को अध्येता रचनात्मक और सक्रिय रूप में पढ़ता है। उसकी दृष्टि उसमें व्यावहारिक होती है। अन्य विषयों में वह सृजनशील न होकर केवल ग्रहणशील होता है। इसलिए सिद्धान्त यही है कि अपने विषय के

अध्ययन में अधिक समय लगता है। और अध्ययन तथा विषय-परिचय अधिक होने पर गति का अपेक्षाकृत तीव्र हो जाना तो जैसे अपने विषय में होता है, वैसा ही दूसरे विषय में।

गति की तीव्रता-मन्दता पर मानसिक शक्ति का भी प्रभाव पड़ता है। जो लोग गम्भीर विषयों के अध्ययन के अभ्यासी हैं, उन्हें प्रायः मंदगति से ही पढ़ने का अभ्यास हो जाता है। उनमें यह दोष आ जाता है कि वे अन्य हल्की पुस्तकों को भी तेजी से नहीं पढ़ सकते और इस प्रकार इनका बहुत-सा समय नष्ट होता है। क्योंकि किसी का ज्ञान केवल एकाध विषय के गम्भीर अध्ययन से सम्पन्न नहीं होता। उसे अन्य विषयों तथा मनोरंजनार्थ हल्के साहित्य का भी अवलोकन करना पड़ता है और इनमें यदि अधिक समय लगे तो समय नष्ट होने के अतिरिक्त मनोरञ्जन का उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है; क्योंकि यदि विषय को तर्क-वितर्क करते हुए पढ़ते समय बुद्धि को उसी प्रकार प्रयास करना पड़ा जितना गम्भीर विषय के अध्ययन में तो फिर पढ़ने का हल्कापन ही क्या रहा? दूसरी ओर कुछ लोग सारे साहित्य को हल्के रूप में पढ़ने के अभ्यासी होते हैं। इन लोगों के अध्ययन में गाम्भीर्य नहीं आ पाता क्योंकि सरसरी तौर पर पढ़ते हुये वे किसी गम्भीर लेखक के मर्म को समझ ही नहीं पाते। प्रत्येक पाठक को मन्द तथा तीव्र दोनों गतियों से पढ़ने का अभ्यास आवश्यक है। यदि उसमें यह गुण नहीं है तो उसे समझना चाहिये कि उसमें एक बड़ी त्रुटि है जिसे दूर करना आवश्यक है और अभ्यास तथा मनोवैज्ञानिक उपायों से सम्भव भी है।

मैं फिर कह देना चाहता हूँ कि किसी भी विषय या पुस्तक का गम्भीर या हल्का होना पाठक के चुनाव और उसकी दृष्टि पर आश्रित होता है। उपन्यासों को सामान्यतः हल्का साहित्य समझा जाता है, किन्तु इनमें भी गम्भीर विचार की पर्याप्त मात्रा पायी जाती है, विशेषकर उन लोगों के लिए जिनका विषय मनोविज्ञान या ललित कला है। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि ललित साहित्य में विचार और मनन की उतनी प्रेरणा नहीं होती जितनी भाव की। किन्तु भाव गाम्भीर्य भी

उतना ही गतिरोधक और अभ्यासयुक्त होता है जितना मनन-गाम्भीर्य ।

फिर भी मैं इस बात से इनकार नहीं करता कि गम्भीर और हल्के साहित्य का भेद पाठक की बुद्धि के अतिरिक्त वस्तुगत रूप में भी हो सकता है । अधिकांश जासूसी उपन्यास ऐसे ही होते हैं जिनमें दौड़ते हुए मनोरञ्जन के सिवाय कोई विचार या भाव-सम्बन्धी गाम्भीर्य नहीं होता। उनमें वही लोग कुछ अधिक समय लगा सकते हैं जो स्वयं वैसा साहित्य लिखना चाहते हैं और शैली की दृष्टि से उसमें कुतूहल रखते हैं न कि विषय की दृष्टि से।

बहुत-सा सामयिक साहित्य जैसे अखबार, विज्ञप्तियाँ आदि भी हल्के साहित्य की कोटि में आता है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि सभी सामयिक साहित्य हल्का होता है । सामयिक साहित्य भी उतना ही गम्भीर हो सकता है जितना कि शाश्वत साहित्य। वास्तव में शाश्वत साहित्य में भी सामयिक अंश होता है और सामयिक साहित्य में भी शाश्वत अंश हो सकता है । कोई भी साहित्य देश, काल के आधार को छोड़कर सर्वथा शून्य में स्थित नहीं हो सकता । शाश्वत मूल्य भी भौतिक तथ्यों में ही अभिव्यक्त होते हैं और प्रत्येक सीमित घटना में किसी न किसी सामान्य सिद्धान्त का उदाहरण मिलता है। इसके अतिरिक्त शाश्वत सिद्धान्तों का स्वरूप भी विशेष घटनाओं तथा परिस्थितियों में संशोधित, परिवर्धित और स्पष्ट होता चलता है । प्रेम आदि की नित्य शाश्वत समस्यायें भी समय की गति के साथ नये-नये रूपों में उपस्थित होती हैं। इसीलिए सामान्य के लिए विशेष की उपेक्षा नहीं की जा सकती । सामान्य-विशेष का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है । जिस साहित्य में सामयिक समस्याओं के हल की चेष्टा न हो वह निर्जीव तथा व्यवहारतः व्यर्थ ही है । व्यवहार में सामयिक साहित्य का सर्जन तथा अध्ययन अत्यन्त आवश्यक होता है । इन समस्याओं की पेचीदगी गहरे अध्ययन की अपेक्षा करती है । इसलिए सामयिक साहित्य भी गम्भीरतापूर्वक मनन करने योग्य होता है । यह दूसरी बात है कि वह अपने-आप में बहुत काल तक मनन करने की अपेक्षा न रखे।

जब सामयिक समस्यायें हल हो जाती हैं तब वे सरल प्रतीत होने लगती हैं। इस प्रकार की अनेक विशेष समस्याओं का संक्षेप सामान्य प्रतिपादक शाश्वत साहित्य में हो जाता है। पाठक उन सुलझे हुए सिद्धान्तों के उदाहरण अपने अनुभव में ही पा लेते हैं, अथवा समय-परिवर्तन के साथ अन्य लेखकों के अन्य समसामयिक उदाहरणों में देख लेते हैं और पुरानी घटनाओं की तफसीलों में दिलचस्पी नहीं रह जाती। इस प्रकार उस सामयिक साहित्य का काम खतम हो जाता है, मानों वह शाश्वत साहित्य का कच्चा मसाला अथवा उपादान मात्र हो। किन्तु जब नयी समस्यायें आती हैं और जब तक वे हल नहीं हो जातीं तब तक तो सारे शाश्वत साहित्य की सार्थकता उनके हल का साधन बनने में ही होती है। तात्पर्य यह कि शाश्वत साहित्य और सामयिक साहित्य में सामान्य विशेष विषय के मात्रा-भेद के कारण कुछ स्वरूप-भेद भी अवश्य होता है। किन्तु दोनों का अध्ययन जीवन के लिए आवश्यक है। केवल जहाँ शाश्वत साहित्य का अध्ययन अपेक्षाकृत दीर्घकाल तक होता है वहाँ सामयिक साहित्य का अध्ययन थोड़े समय तक ही होता है और यह साहित्य समय की गति के साथ बदलता रहता है।

शाश्वत साहित्य और सामयिक साहित्य का भेद एक और तरीके से किया जा सकता है। सामयिक साहित्य मनुष्य की वाणी का विस्तार मात्र है। एक जगह बैठकर अपनी बात थोड़े-से आदमियों को ही सुनायी जा सकती है। किन्तु वही बात लिखकर असंख्य व्यक्तियों के पास पहुँचायी जा सकती है। यह तो साहित्य के द्वारा वाणी का दैशिक विस्तार मात्र हुआ। ऐसा साहित्य सामयिक साहित्य होता है। इसका उद्देश्य इतना ही हुआ कि अधिक से अधिक व्यक्ति लेखक की बात सुन लें और उसका जो कुछ तात्कालिक अर्थ हो उसे ग्रहण कर लें। इस प्रकार का साहित्य रेडियो का ही एक सहचर है। कुछ लोग रेडियो से भाषण सुन लेते हैं, कुछ उसीको अखबार या विज्ञप्ति अथवा पुस्तक-रूप में पढ़ लेते हैं। यदि कुछ मनन करना हुआ तो लिखित साहित्य अधिक उपयोगी होता है। इसमें

अंश में वह उतना अल्पकालिक नहीं है जितना भाषण । उस पर मनन करने की सुविधा उसके स्थिर रूप से ही उत्पन्न होती है। किन्तु उसका यह स्थायित्व उसके अक्षरों का ही स्थायित्व है, अर्थ का स्थायित्व नहीं । उसका उद्देश्य आनेवाली पीढ़ियों को सम्बोधित करना नहीं है, न उसमें कोई ऐसी समस्या या प्रेरणा होती है जो अधिक काल तक लोगों के लिए कोई अर्थ रखे । इसके विपरीत स्थायी साहित्य का तात्पर्य दीर्घकालव्यापी होता है। यह वाणी का दैशिक ही नहीं, कालिक विस्तार भी होता है । यह प्रत्येक पीढ़ी के मनुष्यों की सांस्कृतिक विरासत होता है जिससे वह अपने पूर्वजों की सन्तति-परम्परा में आता है और उनके संचित ज्ञान को आत्मसात् करता है। विना स्थायी साहित्य के किसी भी समाज की संस्कृति का विकास नहीं हो सकता । यदि इस उत्तराधिकार से वह वंचित कर दिया जाय तो वह अपने मूल से ही कटकर अलग गिर जायगा और निर्जीव हो जायगा। अतएव अपने स्थायी साहित्य का अवगाहन प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है । इससे न केवल उसकी ज्ञानवृद्धि होती है वरन् उसका हृदय भी विकसित होता है, क्योंकि साहित्य में ज्ञान के साथ-साथ सद्भाव और सत्प्रेरणा भी प्राप्त होती है । इसीसे मनुष्य सहृदय बनता है । सत्साहित्य से पूत हृदय ही सदसद् का, सुन्दर-असुन्दर का विवेक सहज रूप से कर सकता है।

भावप्रधान साहित्य अर्थात् ललित साहित्य से हृदय-परिमार्जन का विशेष संबंध होता है । प्रायः लोग कहते हैं कि अधिक भावुकता अच्छी नहीं होती, इसलिए अधिक उपन्यास, नाटक या कविता न पढ़ना चाहिये। किन्तु यह बात गलत है । भावहीनता जीवनहीनता है। भावों से ही जीवन बनता है । भाव ही से क्रियाशक्ति प्रसूत होती है । इसलिए अल्पभाव की नहीं वरन् अधिक भाव की आवश्यकता है। हाँ, जो बात हानिकारक है, वह भाव की अवास्तविकता है न कि उसकी अधिक मात्रा । यदि भावों का उद्बोधन ऐसी बातों की पृष्ठभूमि पर किया गया कि जिनका वास्तविक जीवन में

कोई अस्तित्व न हो तो स्पष्ट है कि उद्बुद्ध भाव की चरितार्थता न होने के कारण वह एक व्यर्थ शक्ति की भाँति जीवन में गड़बड़ी उत्पन्न करेगा और वास्तविक जीवन से विमुख करके एक कल्पना-लोक में ही अपनी सार्थकता प्राप्त करेगा। वास्तव में अच्छे और बुरे उपन्यास का यही भेद है कि अच्छे उपन्यासों की भावुकता तीव्रतम होकर भी जीवन में सार्थक होती है और सस्ते उपन्यास वे हैं जिनमें जीवन का इतना गहरा अध्ययन न करके ऊपर-ऊपर ही भावोत्तेजन किया गया है। जिससे बुरे अर्थ में भाव-तृष्णा का सस्ता निवारण होता है। यही बात अन्य ललित साहित्य के सम्बन्ध में भी है। बड़े-बड़े साहित्य महारथियों की कृतियाँ सस्ता भावोद्रेक नहीं करतीं। जीवन के गम्भीरतम तथ्यों की अनुभूति के आधार पर भावों का संचार, संगठन तथा संयमन करती है। ऐसा साहित्य-लेखक के जीवन-संघर्ष, पुरुषार्थ, गहन परिश्रम और शक्ति का फल होता है। प्रतिभा की तो बात ही छोड़िये जो उस विशेष वरदान के रूप में मिली रहती है। ऐसा साहित्य जीवन में उच्छृङ्खलता और पलायन नहीं लाता वरन् संयम और प्रेरणा उत्पन्न करता है। सत्साहित्य का अनुशीलन जीवन का अत्यन्त आवश्यक अनुशासन है। इस शिक्षा के बिना कोई मनुष्य मनुष्य नहीं बनता।

ललित साहित्य की मनोरञ्जकता भी उसकी एक मुख्य विशेषता है। इसके द्वारा वह अनायास ही ग्राह्य होता है। और जीवन के मोती सहज ही प्राप्त होते हैं। पढ़ने की व्यवस्था में ललित साहित्य का अनिवार्य रूप से समावेश होना चाहिये। विद्वानों ने पढ़ने की एक तरकीब यह बतायी है कि एकाध अच्छी पुस्तक अपने पास अवश्य पड़ी रहनी चाहिये, चाहे जीवन कितना भी व्यस्त हो। सोते-उठते कुछ न कुछ खाली क्षण अवश्य मिल जाते हैं। यदि उस समय पुस्तक पास ही मिल जाती है तो खामखाह कुछ न कुछ पढ़ ही ली जाती है। गम्भीर अध्ययन के बाद कुछ न कुछ ललित साहित्य का इस प्रकार अनायास उपयोग के लिए पड़ा रहना पठन की व्यवस्था को पूर्ण बना देता है।

—:०:—

पारिभाषिक शब्दावली

शास्त्री मुरारीलाल नागर, एम० ए०, साहित्याचार्य

ग्रन्थालय परिभाषा

Absolute value स्वतन्त्र मान
Accession परिग्रहण
Accession number परिग्रहण-संख्या
Adaptation प्रकारान्तर
Adaptator प्रकारान्तरकार
Added entry अतिरिक्त संलेख
Additional अतिरिक्त
Administration संचालन
Alphabetical order वर्णक्रम
Alphabetisation वर्णक्रमण
Alternative अवान्तर
Alternative title अवान्तराख्या
Anterior classes प्राग्वर्ग
Anterior position प्राग्स्थान
Anteriorising phase प्राक्कार संश्लेष
Arrangement क्रमण
Array पंक्ति
Artificial composite book कृत्रिम समासित ग्रन्थ
Ascending order आरोह-क्रम
Ascending order of magnitude प्रमाणारोहणक्रम
Assemblage योजना
Assistant सहायक
Assortment पृथक्कार
Author ग्रन्थकार
Author analytical ग्रन्थकार विश्लेषक
Author catalogue ग्रन्थकार-सूची
Auxiliary title उपाख्या
Bay guide खातदर्शक
Binding sequence बन्धनकक्षा
Bipartite द्विभागिक
Book index entry ग्रन्थनिर्देशी संलेख
Book number ग्रन्थसंख्या
Book selection ग्रन्थवरण
Broad or wide व्यापक
Building भवन
Call number क्रमकसंख्या
Canon उपसूत्र
Canonical order
Card पत्रक
Card catalogue पत्रकसूची

Cardinal number गणकसंख्या
Casual आकस्मिक
Catalogue सूची
Cataloguer सूचीकार
Cataloguing सूचीकरण
Chain परंपरा
Changed title परिवृत्ताख्या
Characteristic भेदक
Charging आरोपण
Charging tray आरोपण पात्रक
Chronological facet कालमुख
Chronological order कालक्रम
Circulation संचारण
Class वर्ग
Class Index entry वर्गनिर्देशी संलेख
Class number वर्गसंख्या
Classic चिरगहन
Classification वर्गीकरण
Classificationist वर्गाचार्य
Classified catalogue अनुवर्ग-सूची
Classified order or systematic order अनुवर्गक्रम
Classifier वर्गकार
Closed notation पूरिताङ्कन
Closed sequence अवरुद्धकक्षा
Code कल्प
Co extensiveness समव्यापकत्व
Collaborator उपग्रन्थकार अथवा सहकार
Colon द्विबिन्दु
Colon classification द्विबिन्दु वर्गीकरण
Colophon पुष्पिका
Commentator भाष्यकार अथवा व्याख्याता
Compiler संग्राहक
Compilation समवाय
Composite book समासित ग्रन्थ
Compound name समासित नाम
Connecting योजक
Consistent संवादी
Constituent अवयव
Constitutional वैधानिक
Contribution अंश
Contributor अंशकार
Contributor index entry अंशकार-निर्देशी संलेख
Co ordinate समपंक्ति
Corporate author समष्टि ग्रन्थकार
Corporate body समष्टि
Cross reference अन्तर्विषयी
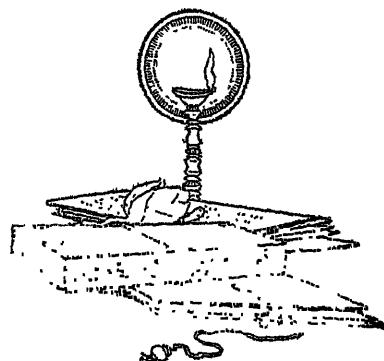
Cross reference entry अन्त-र्विषयी संलेख
Cross reference index entry नामान्तर-निर्देशी संलेख
Crown, president, king ruler, etc. राष्ट्रपति
Decimal classification दशमलव वर्गीकरण
Decimal fractions दशमलव
Decimal number दशमलव संख्या
Decreasing extension अप-विस्तारक्रम अथवा विस्तारह्रासक्रम
Denudation अन्तर्विच्छेद
Department विभाग
Derived composite terms यौगिक समासित पद
Descriptive वर्णक
Dictionary catalogue
Digit अङ्क
Directing देशक
Director निर्देशक
Discharging अवरोपण
Discharging tray अवरोपण पात्रक
Dissection विस्तार-विच्छेद
Diverse नाना
Division प्रभाग
Dressing रूपण
Earlier title पूर्वाख्या
Editing संपादन
Edition उद्भव
Editor संपादक
Entity सन्
Entry संलेख
Enunciate निरूपण
Epitomiser संक्षेपक
Evolutionary order विकास-क्रम
Extract भागोद्भूत
Extraction (process of) भागोद्भव
Process of making a portion of a book into a separate book by stitching भागोद्वह
Portion of a book made into a separate book by stitching भागोद्वहीन
Facet मुख
Facet formula मुखरीति
Factors of planning अङ्ग
Fascicule अवदान
Filiation ज्ञाति अथवा ज्ञातीयता
Filiatory ज्ञाति
Filiatory order ज्ञाति-क्रम

Finance अर्थ

First secondary phase प्रथम संश्लेष

First step उपक्रम

First vertical प्रथमोर्द्ध्व रेखा

Focus लक्ष्य

Form रूप

Formula रीति

Function धर्म

Fundamental मौलिक

Fundamental constituent term मौलिक घटक-पद

Furniture फर्निचर

Gang way guide अन्तर्मार्ग-दर्शक

Generalia class सर्ववर्ग

Generic title सामूहिकाख्या

Geographical facet प्रदेश मुख

Geographical order or spatial order प्रदेशक्रम

Gestalt theory स्वनिरूपक सिद्धान्त

Gestalt theory of alphabetisation वर्णक्रमण स्वनिरूपक सिद्धान्त

Government शासक

Group गण

Group समूह

Guide दर्शक

Guide card दर्शक पत्रक

Heading शीर्षक

Helpful order अनुकूल-क्रम

Horizontal line समरेखा

Immediate job सद्यःक्रिया

Impression अङ्कन

Imprint मुद्रणाङ्क

Inclusive notation समावेशाङ्कन

Increasing concreteness उपवास्तवक्रम

Index निर्देशी

Index entry निर्देशी संलेख

Initial नामाक्षर

Initionym अग्राक्षरनाम

Integer पूर्णाङ्क

Intermediate item द्वितीयानुच्छेदी

Isolated पृथक्कृत

Issue अवदान

Issue work आरोपण-कार्य

Job क्रिया

Joint author सहग्रन्थकार

Joint editor सहसंपादक

Lamination स्तरीकरण

Last अन्त्य

Later title पराख्या

Law (factual) सूत्र
Law (normative) तथ्य
Leading line अग्रा
Leading section अग्रानुच्छेद
Legislature धारासभा
Library ग्रन्थालय
Library hand ग्रन्थालय लिपि
Location स्थाननिर्धारण
Long-range reference service विलम्बित सेवा
Lower house प्रथम धारासभा
Magnitude महत्त्व, प्रमाण
Main class मुख्य वर्ग
Main entry मुख्य संलेख
Management व्यवस्था
Marking अङ्कन
Measurement मान
Minister मन्त्री
Ministry परिभाग
Multifocal नानामुख
Multivolumed बहुसंपुटक
Non-phased असंश्लिष्ट
Notation अङ्कन
Note टिप्पण
Number संख्या
Number (of periodicals) अवदान
Octave अष्टक
Octave principle अष्टकरीति
Off print उन्मुद्रण
Open access अनिरुद्ध योग
Open notation अपूरिताङ्कन
Ordinal number क्रमक संख्या
Ordinary composite book साधारण समासित ग्रन्थ
Organ अवयव
Organisation संघटन
Original universe प्रकृतिजगत्
Pamphlet पुस्तिका
Pamphlet sequence पुस्तिका-कक्षा
Parody अनुकार
Part भाग
Particular विशिष्ट
Penultimate उपान्त्य
Periodical सावदान
Periodical publication सामयिक
Personal author व्यष्टिग्रन्थकार
Phase संश्लेष
Phased संश्लिष्ट
Phrase शब्द-समूह अथवा वाक्यांश
Place-value स्थानतन्त्रमान
Planning आयोजन
Posterior classes प्रत्यग्वर्ग
Posterior position प्रत्यक्स्थान

Posteriorising phase प्रत्प्रकार संश्लेष
Pre-potent प्रमुख
Primary phase संश्लेषी अथवा संश्लेषग्राही
Principle न्याय
Problem facet प्रमेयमुख
Procedure रीति
Pseudonym कैतवनाम
Pseudo-series उपमाला
Quantum परममात्रा
Quotation उद्धरण
Rack ग्रन्थाधार
Ready reference service अविलम्बितलय सेवा
Receptacle आधार
Reference librarian लयकार
Reference service लयसेवा
Regulation नियम
Relative सापेक्ष
Reprint उन्मुद्रण
Reprinted पुनर्मुद्रित
Reserved sequence निहित कक्षा
Respective प्रातिस्विक
Return परावर्तन
Reviser संशोधक
Room शाला
Rule धारा
Scheme पद्धति
Second secondary phase द्वितीय संश्लेष
Second vertical द्वितीयोर्द्ध रेखा
Second step द्वितीयक्रम
Section अनुच्छेद
Section आभाग
Separate-उन्मुद्रण, पृथगतिरिक्त
Sequence कक्षा
Serial निरवदान
Series माला
Series note माला-टिप्पणी
Set संघात
Sharp व्याप्य
Schedule तालिका
Shelf फलक
Shelf arrangement ग्रन्थक्रमण
Shelf guide फलक दर्शक
Shelf register ग्रन्थक्रमपंजिका
Short title or half title लघ्वाख्या
Simple book साधारण ग्रन्थ
Single volumed एकसंपुटक
Special cross reference entry विशेषान्तर्विषयी संलेख
Species जाति
Specific विशिष्ट, प्रातिस्विक

Specificity वैशिष्ट्य
Stack संचयन
Staff कर्तृगण
Standard (as noun) निर्धारण
Standard (as adjective) निर्धारित
Standard card निर्धारित पत्रक
Standardisation निर्धारण
Subheading उपशीर्षक
Subject analytical विषय विश्लेषक संलेख
Subject matter प्रतिपाद्य
Subordinate परंपरित
Substance facet पदार्थ-मुख
Successive क्रमागत
Symbols प्रतिरूप
System प्रणाली
Tab पत्रकदर्शक
Table सारिणी
Tag guide ग्रन्थदर्शक
Temporary sequence अस्थायिकक्षा
Term पद
Theory सिद्धान्त
Three-phased द्विसंश्लिष्ट
Tier guide भूमिदर्शक
Title आख्या
Title page आख्या-पत्र मुख
Back of the title page आख्या-पत्रपृष्ठ

इसके बाद पढ़िये

पुस्तकालय-संचालन

(पुस्तकालय-संचालन पर विस्तृत ग्रन्थ)

लेखक—श्री० शि० रा० रंगनाथन एम० ए०, डी० एल० एस० सी०

—प्रकाशक—

पुस्तक-जगत्

पटना—३